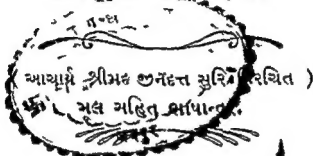


२ आ (१२) श्री जैन अथावली १६

विवेक विलास.



स रोधित करी तैयार करना
मगुभाई इतेहय द कारभारी.

पहेली आवृत्ति

प्रति १०००

(मय दक्ष रमाधिन)

श्री सुरत "जैन" प्रिन्टींग वर्कस लीमिटेडमा महुभाई
आपने अर्पण करी कृताय थाउ लु, ते स्वाकारा उपकृत
करशो.

श्री जैन पत्रनी ऑफिस
जैए घट १०, १० ६७
मुबई

आपनो
आवाकित,
मगुभाई फत्तेचंद कारभारी.

अर्पण पत्रिका.

पुण्यपाद् जैन रत्न न्याय सागर धर्मोपदेशक,
मुनिराज श्री श्री श्री १००८

लब्धीविजयजीनी पवित्र सेवामां.

अमृतसर-पञ्चाव.

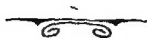
पुण्य श्री !

माणसा जेवा एक ज्ञाना गाममा जन्म लऽ आचार्य
श्रीमद् विजय कमलमूरि जेवा पासे अभ्यास करी, जैन
धर्मना एक मुनि तरीके पञ्चावमां रही जे दिग्विजय आप
करो छो, अनेक जीवोने बोध आपी आ संसार समुद्रमाधी
नारवा प्रयास करोछो अने नहानी बय उता साधु चारित्र्यने
शोभावी जैन समाजनी धर्मरक्षा करवा जे प्रयास आप
करो ओ तेना काह स्मरण दाखन आ विवेकविगम ग्रथ
आपने अर्पण करी कृतार्थ थाउ नु, ते स्वीकारी दण्डन
करसो.

श्री जैन पत्रिका भाफीस
जंए यद् १० १०६७
मुम्बई

आपनो
आज्ञांस्ति,
भगुभाइ फत्तेचंद कारभारी.

બે બોલ



વિવેક વિલાસ અથને પ્રસ્તાવનાની જરૂર નથી આ અથ શ્રાવક ધર્મ અને સસારી જીવન પાળનાર માટે એક લોભિયા જેવો છે વળી અગાઉ શ્રાદ્ધવિધિ અથ ખડાર પાડી આવા પુસ્તકોની આવશ્યકતા મેં બતાવી છે શ્રાદ્ધવિધિ અથમા જે કાંઈ નથી તે આ અથમા છે આ અથ સખધી એક હુલક પત્રમા ટિકા હતી પણ આચાર્ય જો કે સસારો પયોગી ઉપદેશ આપી શકે નહી પણ મસારી પુરૂષો સુખી અને દીર્ઘાયુગી કેમ થાય તે સખધી બોધ તો આપી શકે આ અથ તેવાજ પ્રકારનો છે વળી મુળાઇ યુનીવર્સિટીએ જેન સાહિત્યના અધ્યોમા આ અથને મુદ્રી બી એ ની પરિક્ષા માટે તો નિર્માણ કર્યો છે તો આ પ્રતીદ્વી સવેજાની થયેલી ગણાયે

આ અથ અગાઉ મારા મિત્ર બાલાભાઈ રાયચ હે છપાવ્યો હતો પણ હાલમા તે મળતો નથી તેમજ તેની કીંમત વિશેષ હોવાથી માત્ર બાર આનાની કીંમતે પ્રસીદ્ધ કરી જેન ગરતુ સાહિત્ય પુરૂષાડવામા મારાથી બૂનતો કાળો આપી દુર્તાર્થ થાઉં છું

મુગાઇ
'જેન' ઓપીસ
૧૯૬૪-૬૫



મેનક

ભગુભાઈ કતોહચંદ કારભારી

जैन रत्न न्यायसागर धर्मोपदेशक

श्री. मुनि श्री. लब्धीविजयजी महाराजका
जीवन चरित्र.

गुजरात देशमें भोयणीजी तिर्थसे करीबन (अंदाजन)
तीन कोसके फांसलेपर एक (१) बालसासन नामका छो-
टासा ग्राम है. जीस्में एक श्रेष्ठ पितावरदास नामके दशाश्री-
माली जैनि अपनी प्रतिव्रता भार्या मोतीबाइके साथ धर्म और
अर्घ्यपुत्रार्थ द्वयके साथ विरोध न पहुंच सके इसतरह
ससारीक शुश्रूषा भोगतेथे. इस ग्रामसे एक कोस दूर
राजपुरा नामका क्षेत्र है इसमें ठाकोर लोग रहते हैं. इनके
ताबमें राजपुरा, वामलोरी, डागरवा वगैरे कई एक गांव हैं.
पुर्वोक्तश्रीमान उन ठाकोर लोगोंके एक वजीर थें, लोगोमें
मोटीके नामसे मशहूर थें. ठाकोर लोगोके पास द्रव्यकी कमी
होनेपर कई वरत सैकड़ों रूपयेकी मददभी देनी पडतीथी.
इस तरहका लेण देणका व्यवहार भी उनके साथ करना
पडता था. उनके घरमें (विक्रम संवत् १९४०) में मेर तेरश
वाले टीन पोस सुदी तेरग (१३) को एक लालचंद नामके
पुत्र पैदा हुआ. इनमें छोटीसी उमरमेंही वक्तव्य शक्ति थे

सीधी कि शहरके छोटसे लेकर बड़े पर्यंत लालच नाम के बाल
 रत्नको अपनी अपनी गोदमें लेकर खेलाते थे, जब लालचंद
 उमर नौ (९) सालकी हुई तब उनके पीताजी स्वर्गलोक पधारे.
 लालचंदके अेक बड़े भाइ भी मौजूद थे, सीरफ दो पुत्र ही
 उक्त श्रीमानके हुये थे. इनमेंसें जेसी चपलता और धर्म
 प्रियता लालचंदमें थी वैसी उनके बड़े भाइमें नहि थी. पिताके
 काल व शहोजाने परराजपुरेके लोगोमें जो कुछ लेण देण
 था उसका व्यवहार बिल्कुल बंध हो गया. और बंद नियतसें
 उन लोगोनें अेक कौडी तकभी नाही दिइ. लालचंदकी तथा
 उनके बड़े भाइकी साल संभाल लेनेके लिये इनकी भुवा
 (फइ) शहर माणसासें वहीत दफा आया करंतीथी. और इन
 दोनोपर उसका अेसा ममत्व था कि अपने प्राणोंका विनाश
 होनेपर भी इनका विनाश नहि चाहतीथी. यानि इनके लिये
 अपने प्राणोकोभी कुरवान कर रखे थे. और घरकी तमाम
 चीजें की खबर या अधीकार रखना इस बाइ के स्वाधीन था.
 यह बाइ माणसा निवासी शैठ छगन हुंगर कि भोजाइ थी.
 और दोनो वक्त पडावश्यकमें निपुण और व्रत पचखाण
 करनेमें दत्त चित्ती. इसके सहवाससें लालचंदका भी धर्म
 में चित्त हमेश लगा रहता था. नौ (९) सालकी उमरमें पढ़ने
 के लिये लालचंद स्वयमेव गांमठी निशालमें दाखील हुये.
 उस वक्त इनके दिलमें यह ख्याल आया की हमारे बापने व

सबब मोहके हमे लोड लंढाकर पढानेकी कोशिश नेही कीई इस
 से उनोने ती अपना फर्ज अदा नाहे किया कयो कि पिताका
 फर्ज है कि अपने बालक को पढावे, जो लोग संतान कि मोह-
 बतमें पड़ेकर अपने लंडकोको नही पढाते है, देखिये उनके
 लिये नितिकार क्या फरमाते है.

॥ माता शत्रुः पिता वैरी बालो येन न पाठितः ॥

॥ न शोभते सभार्म्ये हंसमभ्यै वकोयथा १ ॥

भगर अब हम समंज शक्त है कि बिद्याका पढना बहोत
 अच्छा है. ओसा समजकर गामठी निशालमें पढना शुरू कीया.
 नौ (९) महीने तक इस निशालकि रथीती रही, याद में कैयेक
 कारणके वससे निशाल टुट गई थी. कयोकी गाम निशालो के
 टुटनेमें कोई देर नाहि लगती है. जब लालचंद को इस निशा-
 लमें बैठे दो तिन महीने हुए थे कि एक दिन भकोडेके ठाकोर
 ने सिपाइ नोकर चाकरोके साथ इस निशालमें आनकर देरा
 जमाया. बालसामण भि एक उनकी रियास्तता लेत्र हे
 इस लिये खुश होकर पढनेवाले लंडकोको इनाम बांटा. और
 तमाम लंडकोसे लालचंद पर ज्यादा खुश हुए, उनके साथ
 एक ज्योतिषी ब्राह्मण आया हुवा था. उसने लालचंद का
 हाथ देखा. ओर शीरको घुनाकर कहने लगे कि तुमारे
 बाबत सामुद्रिक लक्षणोका फल कल दुपहरे लिख दुंगा. दुसरे
 दिनके प्रातःकाल होतेहि ठाकोरको कुछ जररी काम था इस

लिये फोरन हि पंडितजीको आपने साथ लेकर चल पड़े, चल ने वक्त लालचंदकि वावत ज्योतिषीजीने कहाकी में कमबख्त होनेकि वजहसे इस वख्त लालचंद के लिये में कुछ लिख नहीं शक्ता लेकिन आप लोग इतना जरूर याद रखवे कि ओनिस (१९) सालकि उम्मेर में अनेक लोग दास बनकर इस लालचंद कि सेवा करेंगे, और लालचंद अनेक देशों में मशहूर होवेगा इस बातको सुनकर तमाम लोगों को आश्चर्य पैदा हुआ कि यह क्या बात है ऐसा होना बड़ा मुश्कील है इस तरहके वीचार कलोलों में उनका मन मग्न होने लगा क्यों कि उस वख्त लालचंद के पास इसे वावतका अनुमान करनेवाली संपत्त नहीं थी लेकिन चार ख्याल किसि के दिलमें नहीं आया कि लालचंद ओक दिक्षा साम्राज्य को धारणकर विप्रके वचनको सत्य कर दिखलायें गा. ओकादिन आचार्य - महाराज श्री विजय कमलसूरीश्वरजीने भोयणीजी जाते हुये बालसासणमें कयाम किया और नौ (९) सालके लालचंद को देखा और इनकी बातें सुनकर अती ब खुश हुये. और मैसाणाकी पाठशालामें पढाकर लालचंदको दिक्षा साम्राज्य देंवें ऐसी इच्छा किई. तब वेणीचंद सुरचंद के जरीये ओक आदमीद्वारा लालचंदको बुलायें लेकिन लालचंद इस बातसे इनोकारी रहें. क्योंकी उस वख्त वो परतंत्र थे. अपने आप कुछ कर नहि सकते थे. बादमें निशाल टूट गइ

तब उनका भ्राता (फइ) शहर माणसामे ले गड और बाह्यकी निशालमें दाखल करने के लिये लालचंद को मास्टर के पास भेजा. लालचंद हेडमास्टरके पास जाकर कहा कि ओष- मुजको शालामे दाखिल करे तब उनोंने कहा तुमाहारे पास सार्टीफिकेट किस धोरणका है लालचंदने जबाब दिया मैने नौ (९) महिने तक गामठी निशालामे अभ्यास किया है. इस लिये मेरे पास सार्टीफिकेट नहि है मेरी परिक्षा लेकर जिस धोरण के योग्य समझे उसी में दाखल करदेवें. लालचंद के इस वाक्यको सुनकर हेड मास्टर खुश हुअे और परीक्षा लेकर तीसरी कीताय के योग्य समझ कर तीसरी निशालमें दाखिल किये. इस शालाकी परीक्षा होने में चार महिने बाकी थे इस लिये बस चार महिनेमें तीसरी कीतायमें पहले नंबर (१) पास होकर चौथीमे दाखिल हुये. इसमें भी पास होकर पचमीमे दाखिल हुए. पचमीकी परीक्षा होने बालिही धी के श्री मुनि उग्रोत विजयजी महाराजका चतुर्मास शहर माणसामे हुवा और इनके पास लालचंदने जाना शुरु किया. उपदेश शिक्षाका मिलता रहा इस क्रिये लालचंदका चित्त पढाइसे उठ गया और उनके पास बैठना शुरु किया. अस्वीरमें चौमासा खतम हुआ तो लालचंद भाग-वर शहर लाहोरमें जा पीले और पीटिसें दो आदमी और एक इनको भ्राता (फउ) पाँजे दोहे और लालचंद को ८५८

लियायें. बाद लालचंद भागकर आगलौड जा पहुंचे तो ला-
 डोलका एक महात्मा जति और दो आदमी तथा एक इनकी
 भुआ (फड़) फिर मगर दौड़ें और लालचंद को पकड़ लिया-
 यें. अखिरमें तीसरी दफा भागकर लालचंद वडालीमें जाकर
 उनसे मीला और उनके घरके लोगोंको एक महिने तक पता
 नाही लगा. कइ दीनोके बाद उनको पता लग गया कि लाल-
 चंद महाराज साहेबके पास वडाली में है. इनकी भुआ देशी
 सीपाइ और एक आदमी और एक उटवाले को साथ लेकर
 वहां पहुंची और जौर देकर लालचंदको वापीस लियाइ.
 लालचंदके एक महिनेके वियोगसें उनकी भूआका (फड़)
 शरीर आधा हो गया था और पेट भरकर माहिनेमें पंद्रह दिनभी
 आहार नहीं कीया था. वस भूआकी (फड़) ऐसी हालत
 देखकर लालचंदके दिलमें यह ख्याल आया कि अब मेरा
 दिवाका लेंना उचित नहीं है क्योंकि शायद ऐसा ना होजावे
 कि पीछेसें भूआका मरण होजावे. ऐसा समझकर विलकूल
 ख्याल छोड दिया और विचार लिया कि भूआ के (फड़)
 जीन्दे यह काम करना ठीक नहीं मालूम देता है वस इस
 विचारसें इरादा मोकुफ करदिया गया और दो साल चुप
 चापीसें निकाल दिये गये बाद संवत् (१९५८) की सालमें
 आचार्य श्रीमद्विजयकमलसूरीश्वर महाराजका चौमासा हुआ.
 लालचंद इन महात्माओंकी पास १ व्याख्यानमें या श्यामको

प्रतिक्रमण करनेके लिये और प्रातःकाल दर्शन करनेके लिये दिनमें दो दफा जाया करते थे. आचार्य महाराजको मालूम हो गद कि वो यही लडका है जिसके लिये हमको बेणीचंद सूरचंद सुश्रावकद्वारा कौशीश करनी पड़ी थी. साडेतीन महीने चौमासेके व्यतीति हुए बादा तक. सूरेश्वरजीने कोई बात लालचंदको नहीं सुनाई थी. जब पंद्रह दिन चौमासेके बाकी रहते थे तब एकीलें लालचंदको बुलाकर समझाना शुरू किया कि यह क्या बात है तुम साधु बनते बनते, रह गये. सुना जाता है कि श्री मुनी उग्रोतविजयजीके पास तुम साधु बनने को गये थे अब क्यों नहीं बनते. लालचंद मेंरी चारीत्र लेनेकी भावना तो इसी तरह किहू मगर मैं निकल नहीं सकता. श्री सूरेश्वर जी तुमको निन्दने में क्या व्यक्त है और किस बातका खयाल है सो मगद करो. लालचंद मुझको दिक्षा लेनेमें भूआकी हरकत है क्यों कि उसका मेरेपर बोहत मोह है मेरी माता हालमा मौजुद है लेकिन उसकेपर मेरी मीती उतनी नहीं है जीतनी के भूआपर है और मेरे लिये भूआने जीतने उपसर्ग सहेहे उतने माताने भी नहीं सहे है इसलिये मैं खयाल करता हू कि शायद उसे देवगतिका मार्ग न लेना पड़े ॥ सूरेश्वरजी ॥ लालचंदजी यह तुमारा कहना दुर्गस्त है लेकिन तुमसे यह पुत्र जाता हैकि अगर तुमपर काल

राजा मोहित होकर तुम्हे लेजाना चाहें तो उस वस्तु तुम
 एवात पेश कर सकते हो कि मेरी भूआका मेरेपर बहुत प्रेम है
 मुझे आप छोड़ दें ॥ लालचंद नहीं स्वामीनाथ ऐसा मैं
 नहीं कह सकता हूँ मैं क्या बलके कोई भी काल राजाके
 सामने किसी बातको पेश नहीं कर सकता और नहीं इससे
 बच सकता है चाहें बालक हो चाहें वृद्ध हो चाहें युवावस्था चाहें
 नवपरिणीत हो चाहें कुंवारा हो यमराज कीसीको भी नहीं
 छोड़ता ॥ सूरेश्वरजी ॥ लालचंद अगर तुम ऐसा जानते हो
 तो अब तुमको विचार करना चाहिये कि जब काछली
 बली कीसीको नहीं छोड़ सकता है तो हमको भी नहीं
 छोड़ेगा इस लिये यदि तुम निश्चित रहना चाहते हो तो
 मोक्षकी प्राप्ति का उपाय करो जिससे जन्म जरा मरण रोग
 शोक वेगरा तमाम उपधियाँ छुट जाय और अनन्त ज्ञान,
 अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र्य और अनन्त वीर्य रूप अनन्त
 चतुष्टयकी प्राप्ति हो और तुमको य भ्रम है कि मेरे पश्चात्
 मेरी भूआका मरण होगा क्यों किसीके पीछे कोई न नहीं
 मरता है हमारे बाप पर उनका प्यार नहीं था उनके पीछे
 इनका मरण क्यों नहीं हुआ वस इसी तरह रुमझ लेना.
 “लालचंद” को फेर कुछ दिक्षाका ख्याल पैदा हुआ और
 इनके दिलमें नूतन लगे हुअें भाववृक्षको सूरिकमलमहा-
 राज जिनवाणीरूप प्राणी द्वारा पुनः पुनः सिंचन करते

रहे. अके दिन लालचंदने सूरेश्वरजी के पास जाकर कियाकि अगर आप मुझको आतेसार दिक्षा दे देवे तो मैं यहांसे चल्कर आपके पास किसी अन्य शहरमें आऊगा. सूरेश्वरजीने लालचंदसे यह कहाकि अगर हमने जल्दी दिक्षा देदी और पीछेसे स्वजनको उदास देखकर तुम्हारा दिल ढीला होजायगा तो हम क्या करेंगे क्योंकि तुम्हारे वापस चले जानेसे धर्मकी हानी होगी इस लिये हम जल्दी दिक्षा नहि दे सकते हैं तब लालचंदने जवाब दियाकी आप बिल्कुल फिकर न करे दीक्षित होनेपर किसी सुरत भी आपने निश्चयसे नहीं दुगा अगर आप गृहस्थीपणे कुछ दिन श्वक्कर दिक्षा देनी चाहेंतो मुशकिल है एक दिन भी मैं आप के पास नहीं रह सकुंगा क्योंकि अगर मे गृहस्थी हुआ तो वो अनेक प्रकारसे मुझे ले जा सकते हैं साधु पनकि हालतमें मुझे उतना तंग नहीं कर सकेंगे सूरेश्वरजीने यह बात मंजूर किड और चतुर्मासके उठनेपर निवोद्रा होकर शहर बोरुमे जा पहुँचे. संवत् (१९५०) उन्नीसे अँगणसाठके कार्तिक वदि ६ छठके रोज सुवाह (समारे) सात बजे लालचंद महाराज साहेब के पास जा पहुँचे. सामग्री तैयार दीथी दस बजे तक दिक्षा हो चुकी और इनका नाम मुनि लब्धि विज्यजी रखा. सूरेश्वरजी एक महात्मा पुष्प हैं और उनकी चिद्वतासे कोड विरलाही प्रमान होगा. इन महात्मामें जैसा नावाड विभूषित

अथर्व गुण है ऐसा गुण हर एक में होना मुश्किल है और
 बहोत लोगों को यह भी मालूम है कि इन कि जवान मुवा-
 रकसे जो बात निकलति है सो फोरन सिद्ध हो जाति है इस
 लिये इनका दीया हुआ लब्धिविजयजी नाम भी ऐसा गुण
 निष्पन्न हुआ है कि जिन गुणोंका ध्यान करने को या लिखने
 को जवान ओर कलम दोनोंही कासर है (अशक्त) सूरीश्वरजी
 महाराज जानतथे कि इनको लब्धि पावहोना है इसलिये लब्धि
 विजय हि नाम रखना जुनासीव है अखीर में यही बात सीगृ
 हुइ के बादकी लब्धी इन में अपार है कवित्व शक्ति भी अपार है
 और वक्तृत्व शक्ति से तो इनके सासन बृहस्पतिभी
 लाचार है जब मुनी महाराज लब्धीविजयजीकी दीक्षा काति-
 क बद छठ के रोज फजरका दस बजे दीक्षा हो चुकी
 तब माता भ्राता पित्रु भगिनी भूआ (फड़) बेगरे आन
 पहुंचे तब उस गाम के श्रावकोले मवानका दरबज्जा अंदरसे बंध
 कीया जीसमें मुनीलब्धीविजयजी तथा इनके गुरुजी आचा-
 र्य बीजय कमलसुरीजी बैठेथें उस बखत लब्धीविजयने
 श्रावकोको कहाकि आप लोगोंने दरबज्जा क्यों बंध कर
 रक्खो है दरबज्जा खोल देवे में उनको जवाब देनेके लीये
 तैयार हुं, उसी बखत दरबज्जा खोल दीया गया और सबकु
 अंदर आनेका हुक्म दीया गया मुनी लब्धीविजयजीने ऐसे
 शान्ती वाले वचन सुनाये जीनके श्रवण मात्रसे उनको परम

शानी पेदा हुट उस वखत पाटण के भाइ सूरिजी के दर्शन को आयेंथे उनोंनेभी शांतिवाले वचन सुनाये आखिरमें श्री मुनी लक्ष्मिविजयजीका दृढ निश्चयको देखकर वो लोग घरको बापीस चले गये दिक्षा के समये श्री मुनी लक्ष्मिविजयजी सिर्फ दो पडीकम्पणे जानते थे दिक्षा के दिनमें लगा कर दो महिने तरु ॥ श्रमण सूत्र ॥ पाक्षिक सूत्र वगेरा पांच प्रातिक्रमण वगेरा तमाम क्रिया समाप्त कर लिट ॥ साथहीं उंझामें योग उहन किया इनके योग उहन के समयपर उंझामें चत्तीस सायु उरुहे हुये जिस्में से ११ बडी दिक्षा लेने वाले मौजूद थे मुकाम उझासे बिहार कर मिर्जापुर वगैरे शहरोंमें हांतो हुये इडर जा पहुँचे और सत्रत (१९५९) चोमासा बहाही हुआ चोमास में काशीसे श्री मुनि लक्ष्मिविजयजीको पढाने के लिये सूरिजीने एक विद्वान को बोलायाथा उसका नाम धना-नदथा उसके पास सारस्वत पटलिगत एक माहिनेम करलिया गया तो पीछेसे जरूर आना शुरू हुआ जिससे दोतीन महिने वृथाही व्यतीत करने पडे वाः बाहोस बिहार कर कुमारीयाकी यात्रा करने के लिये शहर इडरके श्री संघके साथे जाना हुआ मगर उस वकत भी तपियत नरमथी चलनेके सब्रसे रस्ते की खुश नैवा हवासे दीन बदीन तपियत अच्छी होने लगी याद में सूरिजीने मुनीश्रीजीको प्रकरण कंडस्थ करनेकी आज्ञा दिई वस तयसे (जीवविचार) नय तत्त्व ॥ टंडक छोटी सघयणी बडी

संघयणी—इतने सूत्र विस्तृतार्थ पूर्वक कंठस्थ कर लिये गये वाद में कपडवंज वगैरे स्थलोंमें होते हुए संवत् १०६० का चोमासा बड़ादेमें किया इस चोमासेमें छी कर्म ग्रंथ—कंठस्थ किये और कर्म ग्रंथ के अर्थभी टीका द्वारा ननुनच पूर्वक (तर्क वितर्क) पूर्वक याद किये गये इस शहरमें चतुर्मासके अनंतरभी व सत्रव कौनफरन्स होने के कुछकाल ठहरना पडा था कौनफरन्स देखकर यहांसे विहार कर मीयागाम जधर्डीया वगैरे स्थालोंमें होते हुते शहर भरुच जापहुंचे वस बड़ादासे निकल कर रस्तमें जीतने शहर आये उन शहरोमें धर्मो पदेश श्री मुनि लब्धिविजयजी ही देते रहे जिस वक्त बड़ादामें थे उस वक्त विज्य कमल सूरीश्वरजीं कोयकीन नही था कि उठे चौमासे मुनि लब्धिविजयजी उपदेश दे सकेंगी लंकिन रस्तेंमें एक जगहपर रातको करीबन तीस ३० चालीस ४० आदमीके अंदाजन उपदेश सुनानेके लिये आये महाराज साहीव परीश्रमसे सो रहे थे उस वक्त मुनि लब्धिविजयजीने एक घंटा तक उनको बहोत असरकारक उपदेश सुनाया उस वक्त सूरीश्वरजीं सुप्त जाग्रदवस्थामें थे उनोंने मुनि लब्धिविजयजीके मुखसे जो वचन निकलें सब श्रवण किये और सब भाइ उपदेश सुनके चले गये तो पीछे से बहोत तारीफ किइ ओर कहाकि कइ एक मुनियोंने-दिक्षा लेकर उसी वखत भी देशनादि रहे लेकिन उन लोगोने मैसाणा पाठशालामें

पाच पाच सात सात साल विद्याभ्यास किया हुआ था इससे उनकी अधीकता नहि समजी जाती है. शहर भरुचमे जाकर जेठ अनोपचदभाइ से कर्म ग्रंथ संवधी खुब विचाराश होता रहा यहासे विहार कर मुकाम डभोड जा पहुंचे इस शहर में श्री व्याख्यान मुनि लब्धीवीजयजी देते रहे यहासे विहार कर देश मालवामें शहर रतलाम गये इस शहरमें मुनि लब्धि विजयजीने ज्ञान के बारेमे दोचार लंकचर (भाषण) दिये जाहेर भाषणका यह पहिला ही मौका मीलाथा इसलिये इस ब्रातकी देखकर सूरी कमल निहायत खुश हुए श्रोतृगण करी घन एक हजारके अदाजनथे यहासे विहार कर श्री संघके साथ माइबगढकी यात्रा किड और इन्दौर जा पहुंचे यहा परभी वर्मोपदेश दिया यहासे विहारकर उज्जयिनि नगरीमे होते हुए मगसीरजी पार्श्वनाथजीकी यात्रा किड रास्तेमें मसगो-पात जाहेर लंकचर (भाषण) तथा व्याख्यान होते रहे इस रास्तेमे क्षेत्र समास कंडस्थ किया गया ओर साथही ठीकाका विचारास होता रहा यहासे विहारकर संवत्-१९६१-का चातुर्मास देश मालवामें शहर महत्पुर हुआ इस शहरमें एक गोपालदास नामके नामी पंडीतजी ये इनके पास सारस्वत संपूर्ण और चांद्रिकाका अर्ध भाग दशगण तक कंडस्थ किया।। यहासे विहारकर मुकाम बडोदानिवासी संघपति जमनादास कोठारीके साथ सम्पेतागिस्वरजीकी यात्रा करनेके लिये देश

बंगालको खाना हार विद्यापुरी काशी नगरमें जा पहुँचे क्याम
 भिन्दपुरा हुआ एक दिन यशोविजय जैन पाठशालाके ल-
 डके परीक्षा देनेको आये, आचार्य विजयकमल सूरेश्वरजीने
 मुनी श्री लब्धिविजयजी को उनसे साथ धर्ता लाप करनेका
 हुक्म दिया करीबन तिन घंटे तक व्याकरण के बारेमें विचारां-
 श होता रहा तुल्यलालजी नामके विद्यार्थी इस पाठशालामें
 अच्छे लयक थे उन्होने उठकर मुनि लब्धिविजयजीकी तारीफ
 किइ और बोहत खुशी जाहिर की और कहाकि मुनि लब्धि
 विजयजी महाराजने—ए गंजाणे इसास दंजाणेइ—इस भीषालको
 सत्यकर दिग्गालाई है और इन्होंने विद्याभ्यास बड़े शौख से
 किया है एक मूल मात्र सूत्राक्षरोदा पठना कुछ और है चहो
 इसतरहसे धार हजार (१२०००) कौमुदीक्यों न पठ
 लेवे फायदा कुछ नहोना और एक एक सूत्रको ननु
 नच (तर्क नितर्क) पूर्वक पढ़ने वाला चाहे चांद्रिकी क्योंन
 नहो जरूर इजत पायना याहांसे निहार कर सम्भेत
 सिखरजीकी जात्रा करके संवत (१९६२) वासठका
 चतुर्मास शहर मुपिदावाद (अजीमगंज) में हुआ यहांपर एक
 मैथिली पंडितसे चंद्रिका समाप्त कि और एक दो काव्यग्रंथ भी
 देखे यहांके चतुर्मासमें रायबाहादुर वद्विदासजी सूरेश्वरजीके
 दर्शनार्थ आयेथे जीस वयन मुनि लब्धिविजयजीने जाहेर लैक-
 चर (भाषण) दीयाथा जीसको सुनकर वद्विदासजीने बहुत

तारीफ किंइ और अतिव खुश होकर सूरिश्चरजीसे प्रार्थना किइ के अगर आप ईनको लेकर शहर बलकत्ते प्यारे तो धर्मका ब्दोत लाभ होगा क्यार्कि जाहेर रैकचरं (भाषण) देनेमे ए अतिव निष्प्रण है ईसलिये ईनके उपदेशसे बड घगाली लोग मान-सरा-के त्यागी बनेंगे। फट एरु समय होनेकि वजहसे महाराज साहीबने जानसे इनकार किया घात बकसुदा बादसे राय बहादुर माहाराज' सिंगने श्री चपापुराजी की यात्रा कोलिये सय निराल्याश मगहुर राणी येना कुमारीजी भी साथगयीं इनक साथ बडे जलसे से चपाजी पहुचे और बामूप्रजयजी के प्रातिविम्य के दर्जन कर अतीव खुश हुए यहामे बिहार कर कांणी बगेरा स्थलों में होते हुए शहर लडकर जापहुचे और संवत् १०६३ ता चोमासा यहाई किया यहा पर एरु पंडित के पास न्याय गोभिनी पद छत्य और लबु गोभिनी टीका' त्रयसमेत तर्क सग्रह गणशा आर इठस्थ किया तर्क सग्रह कीतीनो टीका के फट करने से और बुद्धिकी चपकता होनेकी वजहसे श्री मुनि लालिप्रियजी नेयापिकाकी पानिये मुमाराकिये जाने लगे ईस चोमासेमें जमरकोनकी पटी दीक्षा देखी और पु-त्पत्तिके सार्व तपाय जमरकोन इठस्थ किया ईस जहगमे लालिप्रियजी फट तिनमें अनुष्टु पन्चाम श्लोक जाननेकी ताकत रखतेये ईनकी इस लालिजा देखकर विजयनाथ

सूरिश्वरजी ईनपर बड़ेही प्रसन्न रहतेंथें एक अमरसेन वीर-
 सेनका भाषामें चरित्र था उसको गद्यबंधमें करनेका आदेश
 दिया गुरुजीके आदेशको स्वीकारकर सात दिनके अंदर
 संस्कृतमें रचना किइ और तीनसो श्लोकके अंदाजन
 चरित्र तैयार किया और स्वोपल (अपने रचेल्हा) चरित्रको
 पंद्रह दिन तक व्याख्यान मेंभी बांचा. सूरेश्वरजीने ईस
 चरित्रको साधारण कागळ परसे शास्त्राकार लिखाथा सो
 अबभी भूनिश्री लब्धिविजयजीकी पास मौजूद हैं मुनि
 लब्धिविजयजीको ईस शहरमें दो महिने तक व्याख्यानभी
 करना पडाथा, यहांसे विहार कर आगरा देहली (दिल्ली)
 वगैरें क्षेत्रोंमां जाहेर भाषण देते हुए. शहर गुजरातवालामें
 जा पहुंचे. रस्तेमें श्री वादी देवसूरी निर्मित प्रमाणनय तत्व
 लोंका लंकार न्यायशास्त्रका एक चाला ग्रंथ है इस्को खूब
 शंका समाधान पूर्वक कंठस्थ किया और साथही में एक
 दिगंबर चार्य निर्मित न्यायादिपिका नामका ग्रंथ देखा और
 संवत् १९६४ (संवत् ओन्नीसो चोसठ) का चोमासा शहर
 गुजरातवालेमें हुआ यहांपर जंबुके पंडित वासदेवजीसे समझ-
 कर सिद्धांत मुक्तावलीको कंठस्थ कीइ इस्केपर राम गौड़ी
 नामकी टीका बड़े विस्तारसे है इस्केपरभी कुछ विचारांश
 होता रहा चोमासेके अंतमें मुक्तावलीकाभी अन्त किया
 और यहांसे विहारकर सनखतरे होकर नारोवाल गये

यहां पर एक महिने तक रहता हुआ सूरिजीने इस क्षेत्रमें
 व्याख्यान करनेका हुकम मुनि लब्धिविजयजीको दिया और
 अगर कोट आर्ग्यासाग्यावाद करनेको आताथाउससेभी वार्त्ता
 लाप मुनि लब्धिविजयजी करतेथे इनको अपूर्व याद शक्तिको
 देवकर सूरिजी मुनि लब्धिविजयको वादि घट मुदगरके
 नामसे बोलाते थे यहांपर दो साधुको अवस्यक सूत्रभी पढाते
 रहे मास कल्पके बाद कटएक शरणोसे मुनि लब्धिविजयजीको
 जीरेकी तरफ जाना पडा सूरिश्वरजीकी इच्छा नहींथी कि
 लब्धिविजयजी मेरेसे अलादा विचरे और ऐसे ही नाही
 मुनि लब्धिविजयकी मरजीथी कि मैं अलादा विचरु मगर
 श्रावक जगन्नाथजी प्रेमचंदजी वगेरेकी प्रार्थनाको मंजूर कर,
 लब्धिविजयको जीरे जानेकी आज्ञा दिट इस आज्ञाको वाचा
 याकर्य प्रमाण इस रीत्यनुसार स्वीकार कर अमृतसर
 पट्टि होते हुअे जीरे पहुचें इस गहेरके श्रोतृगण बडे निपुणथे
 और धारिक जैन फीलौसुफीको समजने वालेथे क्योंकि
 विज्यानद सूरिश्वरजीने भी इनको गणघर बाद सुनायाथा
 इस लिये मुनि लब्धिविजयजीनेभी इनको रथाद्वाद मजरी
 सुनाट, प्रिय पाठकजनो ऐसे धारिक ग्रथोको व्याख्यानमें
 पांचकर आनालमोपालको रुख करना हरएकका काम नहि
 हे जीनको बहुतसे स्थूल दृष्टात धारिक बातोंके समझानेके
 लिये आतेहो बोद्दी हरणकको ऐसे प्रथ समझा सकने हे, इस

शहरमें पंद्रह दिन रहनेका इरादा था लेकिन जीरेके भाइ शहर अमृतसरमें आचार्य महाराजके पास जाकर डेढ़ माहिने कीइ फरमायशलियायेथे इस लिये डेढ़ माहिने तक ठहरना पडा. एक दिन जीरेके भाइयोसे महा राजसाहिबने कियाकी आप लोग हमारे पास एक लैकचर (भाषण) दिलवावें इस बातको मुनकर प्रथम सोचमें पड गये कि अब क्या करना इस शहरमें कबीभी बाजारमें खडे होकर आज तक किसी मुनिराजने लैकचर (भाषण) नहि दीया वस विचार कर महाराजके पास भी यही बात पेश किइ तब महाराजने जवाब दिया कि जब कोइ मुनिराज लैकचर (भाषण) की बात कहेंगे तब आप यही जवाब दिया करेंगे कि यहां पर कोइ लैकचर नही हुआ है वस. फिरतो इस बातकि प्रवृत्ति चलनीही मुश्कील हो जावेगी क्या यह बात जरूरी है कि जो बात हुई हो सोही हो सके इस बातपर ख्याल देंगे तो आपको व खुबी मालूम हो जावेगा कि यह जवाब ठीक नहीं है देखिये एक साहुकार के लडके को बीस (२०) सालकी उमर तक उसका शिर भी कबी नही दुखा था जब उसके शरीरमें सखत रोग शुरु हुआ तो हकिमने आकर कहा इस्को फलानी, फलाना दवा देनी पडेगी तब दो चार आदमी बोल उठे हकीमजी साहेब आपका कहना तो ठीक है मगर इस्को कभी भी दवा नही पीलाइ गइ अब यह नया काम हम कैसे करेंगे इस बातको

सुनकर पास बैठे हुए अकलमंड लोग हसने लगे और समझाने लगे कि आप क्यों इस बीचारे के प्राणोंका नास करनाते हो वस अब आप इस बातपर ख्याल करें कि इन लोगोंका दवाका पीलाना नई बात समझकर इस्तमाल नहीं करना अच्छा है या इस्तमाल करना अच्छा है अब आपको कहना पड़ेगा कि बड़-जगहपर नयी बातका स्वीकार करनाभी श्रेयस्कर है, वस सत्र भाई फौरन समझ गये और लैकचर कि तइयारी किइ ओर बाजारमें इस्तीहार लगाये गये और विषय कितने हैं और जीवकों कीस तरह तखलीफ देते हैं और इससे हटने वाले कैसा सुख पाते हैं इस विषयमें लैकचर हुआथा अखबारमें सारांस यही नीकालाथा कि इन विषयोंका परित्याग जैसा जैनीयोंमें तथा इनके मुनीओमें पाया जाता है वैसा दीगर महजबके लोगोंमें या उनके धर्म गुरुओंमें नहि पाया जाता फकीरीके हकमें जैस जैन मुनियोंके पावन असुल है ऐसे दूसरे फकीरोंमें नहि देखे जाते इस बातका विस्तारपूर्वक स्वरूप ऐसा निरूपण किया था कि सत्रके सब एक मुखसे जैन धर्मकी तारीफ करने लगे और सत्र जैनी भाइ खुब खुश हुए और पीछेसे सत्र जैनी भाइ कहने लगे कि जिस तरह आप सार्हीबने जाहेर भाषणकी प्रथा फेलानी शुरू किइ है अगर हमारे तमाम मुनिराज इस बातपर इसी तरह कटीबद्ध हो जायें तो थोड़ेही बरतमें हमारे जैनीभाइ

अपना अभ्युदय देख्य जके यह एक निःशंक वान है इसके बाद विहार कर शहर पट्टी गये यहाँपर महागज साहीबके आनेसे कई दिन पेस्तर आचार्य वर्म श्री विजयकमल मृगीश्वर जी महाराज इस शहरमें पधारेंथे इस लिये गुरुजीके दर्शन कर अतिवखुश हुए और पट्टेपर बैठकर करीबन एक घंटे तक मंगलीक धर्मोपदेश सुनाया इस शहरमें पहिले कसूर के भाई मुरिजीके पास विनति वासेन आयेथे की आप हमारे शहरमें पधारें और धर्मोपदेश दें ताके हमारे शहरमें नया मंदिर बन जावे क्योंकि इस वक्त छोटसे मकानमें मुत्तियें विराजमान हैं सो जगहकी कमी होनेसे हमें तंग होना पडता है और यह काम आपसेही होगा क्योंकि पेस्तरभी इस कामके लिये कैड मुनिराज पधारेंथें मगर भायोंकि वेइत्फाकी (कुसंप) से काम सिरंजाम नहि हुआ इन लोगोंकी प्रार्थना को आप मंजुर नहि कर सके इस लिये मुनि लब्धिविजयजी महाराजको इजाजत दिइ गुरुजीकी आज्ञा पाकर मुनि लब्धिविजयजीने कसूरके तरफ विहार किया और दो चार दिन तक में कसूर जा पहुंचे जातेहीसार विविध रस भरपूर वचन सूना कर चंदा (टीप) करवाया तब मंदीरजीका काम शुरू हुआ और मुनिजीने यहांपर मास कल्प किया जब मास कल्प खतम होनेकी तयारीपर था तो यहांके भाइयोंने चोमासेकी विनति किइ और यहभी कहाकि अगर आप यहांपर

चोमासा नाही करोगे तो फिर मंदीरजीका काम समाप्त होना मुश्किल है महाराजने जवाब दिया मैं चोमासा करनेको तड़-यार हू अगर मेरे गुरुजीकी आज्ञा होगी तो मैं यहा पर ही चोमासा करूंगा उस उक्त कसूरके भाइ कट्टक सूरिजीके पास मुकाम बेरोवाल पहुँचे और आज्ञापत्रीका लीयाये तो संवत् १९६५ का चोमासा शहर कसूरमें करना मंजूर कर बुधीयाणा नामके गावमे गये और यहा धर्मोपदेश देते रहे न्यारयानमें=१००=आदमी अन्य मतावलंबी और २५ आदमी अपने जैनी भाइ १२५ आदमीयोके अंदाज आते रहै यहा पर अपन जैनी भाइयोके घर करीबन १० या बारा १२ है उस्मेभी आदमी बहोत थोड़े हैं एक दफा रानीको सात बजेसे लगा कर साडे नाँव रजे तक मास भक्षण करना हिन्दु और मुसलमान दोनोश धर्म नहीं हैं इस विषयमे लैकचर दिया गया इस लैकचर के असरसे तीनधीवर (भोड) लोगोने अपनी जाणी को जला कर तार्जीदगी मास भक्षणका नियम लिया और एक मुसलमाननेभी मास खाना छोड दिया इसी तरह तीन कुभारोने एक छीवने और दो चार-४ जाटो (कण्जी) ने सर्वथा हि मास खाना त्याग किया इस तरहका उपकार अनेक शहरो मे करते हए शहर कसूरमे लिये चोमासे के जा पहुँचे इस शहर के अलादा अलादा गारह (१२) कोट है आयादि (२६०००) किंतु लेकिन मुसलमानोका यहापर ज्यादा जोर है. १९६५ का

मंडीके दरम्यान एक कृष्ण द्वार नामका मकान बड़ा सुंदर तथा बहोत बड़ा है जिसमें चार हजार आदमी बड़ी खुशीसे बैठ सकते हैं आर्यों की समाज इमी मकानमें लगा करती है इसमें ताल्लुक भी आर्य लोगो काही है उस मकानमें जाकर जैन फिलमुफीका व्यान करते रहे यद्यपि यहां पर अपने घर सिर्फ पंद्रह (१५) हाथें तोभी महाराज साहिव किसी बातका खयाल नहीं करते थे बल्के (किन्तु) मुग्वसे यह कहा करते थे कि इन प्राणोंसे जितनी जैन धर्मकी हो जायगी उतनी ही इनकी सफलता है एक दिन जरूर प्राणोंने तो जबाब देनाही देनाहै अगर महावीरके सासना-नुरागीयांको बढानेकी कोशिश भेही प्राण जबाब देंगे तो बड़ी खुशीकी बात है जिस वकत वीरके तन्वोंका स्वरूप व्यान करते थे उस वकत यही भान होता था कि साक्षात् मिश्रा-यिका देवि अधिष्टाय कहो कर बोल रही हो अथवा आचार्य सूरि कपल मुनि लब्धिविजयको कुर्चाल सरस्वती कहा करते थे सो शायद् सद्गुरुओं के वचनको सिद्धकरने के लिये साक्षात् कुर्चाल सरस्वतीका स्वरूपही न धारा हो इस तरहसे महाराज साहिवकी मुर्ति शोभतीथी लेकचरके लिये दरीयें विच्छानीया शहरके लोगोंको खबर कर देनी यह सब काम अन्य मतावलंबी भाइ करतें थे बेंड वाजे के साथ तमाम शहरमें फिरकर एक क्षत्री भाइ गववर करते थे वो क्षत्री

कौन था और किस तरह रागी बना सो व्यान सुनलो यह क्षत्री
 तीन सो रूपेकी तनखाह (नोकरी) पाता है जो एक डौडी
 जैसे मामुली कामको महाराज साहिबपर अनुराग होनेसे स्वी-
 कारता था इनका नाम खेरातीराम है एक दिन महाराजजी
 साहिब उपाश्रयमें व्याख्यान दे रहे थे उस वक्त पूर्वोक्त भाइ
 अपने कामकाजके लिये नीचेसे जा रहे थे महाराज साहिब एक
 श्लोक बोल रहे थे उम श्लोकका अवाज उनके कानमें पडा
 तो वो खड़े हो गये और श्लोककी व्याख्या सुननेको उठर
 गये श्लोक आत्मीय विषयका था सुनकर उपर चले आये
 और बाकी रहा हुआ व्याख्यान सुना करीबन आधा घटे
 का वक्त मिला दुसरे दिन शुरुआतसेही आ गये इस तरहसे
 अति अति अनुराग खूब बढ़ गया अनुराग बढ़ गया इतना
 ही नहीं बल्के जैन धर्ममें श्रद्धालु भि यें चतुर्मासमें
 निरन्तर कथा श्रवण करते रहे पूर्वोक्त श्रीमान खेरातीराम
 बंद बाजेके साथ तमाम शहरेमे फिरकर भजनमें मजबून सुना-
 कर शहर के लोकोको भाषण सुननेके लिये उत्साही बनाते
 थे पेस्तर लिखा गया है (पुर्व में लिखा है) कि एक आर्या
 ने महाराज साहिबसे श्रुति संख्या प्रश्न किये थे बोही आर्या
 लेखकरके दूसरे दिन पाच सात आदमीयोंको लेकर महाराज
 साहिबकी पास पहुचा और गरजद मचानी शुरु किद्द महाराज
 साहिबने शाम्भार्थम् उसका पगान किया तब उसने कहा

संस्कृतसे मैं लंबी वाक्फणीयत नहीं रखता हूँ इसलिये मैं आपके साथ वादमें उत्तीर्ण नहीं हो सकता हूँ लेकिन मैं त्याहारसे अच्छे अच्छे आद्योंको तार देकर बोलाउंगा। तब महाराज साहिबने जवाब दिया बेशक आप तार देकर विद्वानोंको बुलावे हम बड़े खुश हैं वरा उसी वक्त उसने तार दे दिया कंड एक आर्य विद्वान दुसरे दिन उपस्थित हुए और प्रथम मुलाकात लेनेको आये। आकर संस्कृत बोलना शुरू किया महाराज साहिबने जानकर साधारण शब्दोंमें उत्तर दिया तब वो खूब तेजीसे कहने लगे कि आपने वेदकी श्रुतियोंसे जैनकी प्राचिनता सिद्ध किइधी सो बिलकुल गलत अर्थ किया है। अगर आप ताकत रखते है तो हमें सिद्ध कर दिखलावे महाराज साहिबने जवाब दिया अच्छा अगर आपकी मरजी होतो आप जांहर सभा भरें देखो उस वक्त जो फेसला होना होगा सो हो जायगा। इस बातको सुन कर आर्य लोक बहोत खुश हुअे क्योंकि महाराज साहिबने साधारण संस्कृत में त्रमसा उत्तर दियाथा। इस लिये इनोंने समझाकि हम अपने मनोरथ सिद्ध करेंगे वस उसी वक्त मुकरर हो गयाकि कल राज एक बजेसे चार बजे तक सभा कायम रहेगी। उसमें पूरी पक्ष उत्तर पक्ष वादी प्रतिवादी की तरफसे किया जायगा दुसरे दिन उक्त वक्त पर शहरके अच्छे अच्छे मध्यस्थ विद्वान आगये उनको मध्यस्थ रखकर वादविवाद करना शुरू किया।

पासमें एक बड़ी रबीया उसको थाण्डार देव रहाथा दश
 मिनट सवालके लिये और तीस मिनट जवाबके लिये वक्त
 मुकरर किया गयाथा इससे अधिक वक्त किसीके लिये न है
 मिलताथा मार्तालाप संस्कृतमें हुआ. उस दिन भानुदत्त=अभि-
 धान चिन्तामणि शब्द स्तोत्र महानिधि वगेरा ग्रंथोंसे अपने
 किये हुअे अर्थकी सिद्धिकर बड़े श्रुतियोंसे जैन मतकी प्राचिन-
 ताका पुन. समर्थन किया. अर्थ पढित अर्थ उठाने लगे थे
 मगर नहि उल्लास के इस तरह अलादा अलादा विषयमें
 तीन रोज जाहेर सभा किड गई-और इसी तरहसे पढित
 जीको लागवान कर्ते रहे. पढितजी-कई एक-आदमीओंके
 पास कइने लगे कि यह क्या बात हुई पेस्तर मुलाकात लेनेकी
 गोयेथे तो यह एक साधारणसे मालूम होतथे अतः शेरकी
 तरह गर्जते हैं अगर पढिलेसे ऐसा मालूम होजाता तौ हम
 कभी सभा नहीं करते उन पुरुषोंने जवाब दिया पढितजी
 जैसे आप छलजाती निग्रहस्थान गेरेको पढतेहो इस तरह
 इनोंनेभी येह तत्व देखे हैं मतलब अक्षपाद निर्मित त्रुततायले
 तत्व आपवत् इनोंनेभी देखे हैं. इस समामें जो मन्थस्थ
 पढित थे उनोंने सूरेश्वरजीका चोमासा मुकाम झंडीयालामें
 था उनकेपर पत्र पाया जिसमें श्री मुनि लब्धिविजयजीकी
 फने हुई ऐसा लिखाथा. मन्थस्थोंके हस्ताक्षरोंसे मुनि-लब्ध
 विजयजीकी तारीफ सूनकर सूरेश्वरजी बहोतही प्रसन्न हुए.

इस शहरमें एक दो ज्योतिष शास्त्रोंके अतिरीक्त किसी नवीन ग्रंथको मुनि लब्धिविजयजी कंठ नहीं कर शके थे यहांपर—आचारांग सूत्र—मुगडांग सूत्र—नेदी सूत्र—वगैरे जैन सूत्रोंकी विचारणाभी करते रहें. इस तरहकी धामधूमसे कसूरमें चोमासा समाप्त किया और यहांसे विहार कर जीरेमें आये सूरेश्वरजीभी कइ दीन पेस्तर यहां आये हुएथे पंद्रह १५ दिन एकठे रहे और पंडितोंके साथ जाहेर. सभामें पूर्व पक्ष स्थापा और उत्तर पक्ष क्या था उसका अक्षरसह विचार मुनिराज श्री लब्धिविजयजीने गुरुजीको सुनाया बादमें सूरिकमल महाराज साहिबने जीरासे विहार कर विकानेर जानेका इरादा किया मुनि लब्धिविजयजीभी इनके साथ तैयार हो गये तब महाराज साहिबके पास पंजाबी भाइआने बहोत विनति जोरशौरसे किइ की आप इन महात्माओंको छोड जाओ यह यहां पर रह जायगे तो हमारे लोगोंके लिये आप ही बैठे हैं आपने अपना अपूर्व वक्त व्यय करके इनको तैयार किया है, सो आप दो सालके लिये हको बभिस करें महाराज साहिब करुणा सागर है इसलिये इनकी विनती मान कर मुनि लब्धिविजयजीको दो सालके लिये फरमा गये बाद महाराज साहिब विकानेर गये और मुनि लब्धिविजयजी जीरेमें रहें. कुछ दिन के बाद यहांसे विहार कर शहर रायकोट जाना हुआ इस शहरमें अपने जैनीभाइयोंके

सिर्फ पाच घर हैं दुंदीयोंका जोर है लेकिन भक्तिके अंगमें उजरे
 बहोत अधिक है जीस दिन शहरमें प्रवेश होनेका था कि बहोत
 हि धामधूम हुअथी लुधिआने कोरे शहरोमें जाकर बहोत सा
 मग्री एकद्वी कि हुअथी पाच घर होने पर इस तरहकि धामधूम
 का करना स्तुति पात्र है यहांपर जीतने व्याख्यानमें अन्य
 मतीभाइ आते हैं इतने शायदही दुसरी जगह जाते होंगे यहांके
 प्रतिष्ठित लाला गुजरदल हमेशह व्याख्यानमें आया करते थे
 व्याख्यान शुनकर एक दिन पूछने लगे कि महाराज साहेब
 आपका व्याख्यान यह बतलाता है कि यह एक आला दर्जेके
 लेकचरर है सो आप क्या लेकचरर तो नहीं देते. महाराज
 साहेबने जवाब दीया हा कभी मौका मिलनेपर दे देते हैं तब उनाने
 जीव दया पर लेकचरर सनातन सभामें आकर
 देवे उरमें गौशालाकी वाचत लेकचरर देवेतो
 अच्छी बात है. महाराज साहेबने दिलमें सोच लिया कि
 हमारे वाम्ते सब जीव एक सार हैं मगर इन लोगोका
 गौरापर ज्यादा ख्याल है तो क्या हरकत है और नहींतो
 गौराही सही. ऐसा विचार कर यह बात मंजूर करली.
 इस शहरमें जाहिर खबर लगाइ और दुसरेदिन जत्रलेकचर
 देनेको जानाथा उस वक्त लिये पेशवाइके तीनसा सनातनी
 (बंणव) संप्रदायके लोग बाजे जुड़े निशान फुलवाढीये—आर

भजन मंडलीयोंके साथ महाराजको लेने के लिये आये।
 जैन=जैन मुनियोंके इस कंदर भक्ति भावसे
 बैष्णव लोग जयकारा बोलते हुए पेसवाइ
 में हाजर रहे शायद मैं भुलता नहुँतो यह
 प्रथमही मौका था ॥ महाराज साहिबने स्वदया और
 परदया इस विषयमें लेकचर दिया। गौशाला बड़े जोरशोरसे
 उसी दिन कायम कर दीं और महाराज साहिबके कहेनेसे
 और किसमके पशुओंकोभी हम दाखील करेंगे ऐसा मंजूर
 किया हे लेकचरमें करीबन-बारासो (१२००) आदमी-
 और सातसो (७००) बड़ये मौजुदथी और सरकारी लोक
 उसमतके पैरोकात ठाणेदार-कपतान-तसीलदार-नयाब
 तसीलदार वगैरा वगैरा एलकार लोग अच्छे अच्छे मौजुदथे।
 और पौलीसी इन्तजाम पुरापुरा था। इस तरहके आनंदसे
 आठ (८) दिन खतम हुए। वस लेकचर होनेके
 दुसरे दिन ही बिहार कर नगर कोठलेमे गये
 यहांपर बाइस (२२) दिन तक खुब धर्माकी रौनक बनी
 रही और आत्म कमल जैन पाठशाला स्थापन करवाइ
 जिस्मे कई एक अन्यमतिभी लाभ लेते हैं यहांसे बिहारकर
 महाराज साहेब शहर समाणे पधारये वहांपरभी रायकोट
 कि तरह अन्यमतावलंबीयोकी तरफसे मान अछा

मीला था यहापरभी लेकचरको विषय बोदी था सिर्फ फर्क
 इतनाही था कि वो बाजारके मध्यमें अकेल बना हुआ बड़ा
 भारी खुबसूरत मकान था और समानामें खास बाजारमें
 एका ओटला उपर खड़े होकर दो घंटो (२) तक लेकचर
 दिया था बाकीकी बातें रायकोटकी तरह समझ लेवें बाद
 यहासे बिहारकर शहर नाभमें गये यहापर अच्छे अच्छे महा-
 राज हीरासींगके रीयासी पंडीतांसे मुलाखात हुई महाराज
 साहिबका संस्कृतमें न्याययुक्त वार्त्तालाप सुनकर पंडित लोग
 बड़े खुश हुए बाहासे बिहारकर हुशियारपुर गेरा शहरमें
 घुमते हुए संवत् १९६६ का चतुर्मास शहर लुधियानमें किया
 इस चोमासमें शक्राष्टम व्याकरण कंडस्थ किया और इसके
 मतलबको खूब 'शक्रा समाधानपर्वक' एक साक्षर पंडित कर्म-
 चंदजीसे समझते रहे और गदाधरी निष्कर्ष कल्पित बोटी
 नामका पुस्तक जो कि एक नवीन न्याय मिश्रीत है इसको
 पंडा नवीन न्याय शास्त्रोम गदाधरी के उपर और कोई
 पुस्तक नहीं है और एक अंग्रेजी के गी ए पास लडकेको
 कामुद्री पढ़ाते रहे तैसे ही एक मुंसलमान बड़े अछे रयालात
 वाला हुआ या उसको नवकार मन संवाकर संस्कृतमें सार-
 स्वंत तक पढ़ाया कुछ एक दिन चतुर्मासगे बैठने नाकी था
 कि तब महाराज साहिबकि मशहुरी सुनकर श्री रामनाथके
 एमेपास और संस्कृतके अछे आदमी महाराजको मीलनगे

लिये आये सिर्फ एक घंटा महाराज साहिबके साथ गुफत-
 ग्रह किइ ऐसा जैन मतानुरागी हुआ कि जैनीसेभी बढ़ गयाथा
 वस उस रोजसे लगाकर हमेशह व्याख्यान सुनते रहे ऐसे ऐसे
 विद्वान जब व्याख्यान में आने लगे तब महाराज साहिबने
 व्याख्यानमे नंदी सूत्रकी पठिका वांचनी शुरू किइ जीसको
 अच्छा नैयायिक लगा सकता है इस फिलॉसुफीको सुन-
 कर एमेश्री राम तथा धीए पास जो कि हमारी पास कौ
 मुदी पढ़ते थे यह दो जने खूब खुश होते थे वाकिके
 साधारण आदमीयों को भी स्थल द्रष्टांत देकर समझाते थे
 एक दिन शास्त्रीजी पंडित धनीरामजी के साथ वहीत
 काल तक वेद इश्वरोक्त है इस विषय में चर्चा वार्ता होती
 रही यहां पर हुशीयारपुर से श्री मुनी लब्धिविजयजी महा-
 राज साहिबके दर्शन करने को संघ निकलाथा वडे आडंबर के
 साथ श्री संघके आनेसे श्री मुनि लब्धिविजयजी कि मशहुरी
 ओरभी बढ़ गई ओर वहीतसे मतमतांतर वालोंने इनसे मुल्त-
 खात लिइ और प्रबल युक्तिको सुनकर अपने अपने स्थानको
 चले गये थे वाडि रौनकसे चोमासा समाप्त किया यहांसे
 बिहारकर चार महिनेमें रोपड वगेरे स्थलो मे-फिरकर जो वाम
 किथे है सो जैन अक्वारमें नारोवालके प्रवेशत कहालात
 छपचुके है इसके पीछे नारोवालमे जाहेर भाषण वगेरा दिये
 गये है सोभी जैन अक्वारमें छप गये है बाद जंढुमे जो उप-

कार हुआ सो बाबु पाणे. कचंदर्जाके लेखसे हर एकको मालूम
 होगया है शहर जम्मूसे बिहारकर सनखतरमे आये उस
 शहरमें-हस्तिना ताडय मानोपि नगच्छेज्जैन
 मंदिरं-एसे वाक्यके बोलनेवाले दुन्निचद जैसे कठिन
 हृदयवाले क्षत्रियोको बहोत अनुरागी बनाये है प्रिय पाठक
 जनो संवत् (१९६७) का वैशाख एदि पूर्णिमा तकका
 मुकसर हाल लिखा गया है-नोट जीवनसार.

पंजाब देशमें जैन धर्मकी रेशनी बरन्नेके लिये उर्दुमें
 किताबे बनाकर छपवानेका काम इनही महात्माने शुरु किया
 अेक दयानंद कुतर्क तिमिर नामका पुस्तक इनकी तरफसे
 छपकर बहार पडा है अेक सत्तत्व दिग्दर्शन किताब लिखी
 गइ है छापनेकी तैयारीपर है ओर मूर्ति मडन रसाला ना-
 मका पुस्तक हालमें लिख रहे है पंजाब देशके लोगोको उर्दुमें
 छपे हुए ग्रंथ बडे उपकारी हाते है पंजाब देशमें जाहेर
 भाषण की प्रथाभी इनोंनेही निवाली है-इति समाप्त

॥ लेखक मुनि-गर्भीर-विजय ॥

॥ पंजाब-मुकाम-नारोनाल ॥

॥-जीला स्यालकोट-॥

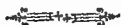
॥ ॐ शांतिः ! शांतिः ! शांतिः ! ॥





અર્હમ્.

અન્યકાર શ્રી જિનદત્તસૂરિ.



અણહિલપુર પાટણ પામે વાયુદેવતાધિષ્ઠિત વાયટનામે
એક મહાધ્યાન છે તેજ વાયટ સ્વાન ઉપરથી 'વાયટ'
અથવા 'વાયડ' ગઝ ઉત્પન્ન થયેલો છે વાયડગઝમા
મૂળ પુરૂષ કોણ હોતો તે જાણી શકાતું નથી, પણ શ્રી
જિનદેવસૂરિ હોય એમ અનુમાન કરી ગકાય છે, કેમકે
તે પૂર્વેનો જોઈએ તેવો ઇતિહાસ અભ્યાસ થઈ શકતો
નથી વાયડગઝની ઉત્પત્તિ અને મૂળ પુરૂષ આ મુજબ
જાણ્યા બાદજી શ્રી જિનદત્તસૂરિ માટે જાણવું તે વધારે
યોગ્યજ લેખાશે

અન્યાતે જાણાવેલ શ્રી રાજિલ્લસૂરીન્દ્ર અને શ્રીજીવ-
દેવસૂરિ મમારી પણામા એજ વાયટમા મહીધર અને
મહીપાલ નામે શ્રેષ્ઠી પુત્ર હતા મહીપાલે રમતગમતમા
અમય ગુમાવી જરા પણ અભ્યાસ કરેલો ન હોવાથી તેના
પિતા ધર્મદેવે કાઢી મુકવાથી રાજગૃહમા દિગમ્બર મતા-
વલ્લખી શ્રુતકીર્તિગુરુ પામે દીક્ષા લઈ મુવર્ણકીર્તિઆચર્ય
થયો, અને ગુરૂ પામે 'પગકાયપ્રવેગ તથા ચક્રેશ્વરી વિદ્યા
ગિચ્યો મહીધર પણ તેના પિતાના અવસાન અમય બાદ
આજ વાયટગઝના શ્રીજિનદેવસૂરિના મતાનમ શ્રી રાશિ-
લ્લસૂરિ થયો ગજગૃહીથી ગાવન લોકાને મોકલેથી અવર્ણ-

ક્રીતિનો વૃત્તાન્ત સાંભળી તેની માતા ત્યાં ગઈ, અને બન્ને ભાઈઓને એકજ ધર્મ અંગીકાર કરવા સમજાવી ‘વાયટ’માં લાવી ત્યાર પછી રસવતી પ્રયોગથી બન્ને ભાઈઓની પરીક્ષા કરી તેમાં વિશેષ શુદ્ધતા રવેતામ્બરોની દેખાવાથી દિગ્મ્બરને કહ્યું કે “રવેતામ્બરો શુદ્ધ છે, તું કર્મચિન્તા કરતો નથી, તે લોકો કહે છે તેજ પ્રમાણે પાળે છે, માટે તું એમને મંલી સુખદુઃખના અંતની ઇચ્છા કર, વિગેરે.” માતાનું વચન અંગીકાર કરી સુવર્ણક્રીતિએ રવેતામ્બર દીક્ષા લઈ પાંચસો શિષ્યનાં સમૂહવાળો શ્રી જીવદેવસૂરિ થયો, કે જેના કુળમાં ‘ગન્ધકાર શ્રી જિનદત્તસૂરિ આચાર્ય વર્ગમાં ગ્યાતિ ધરાવનાર છે.’

શ્રી જિનદત્તસૂરિ એકસપણે કયા વખતમાં હતાં તે જાણવું દુર્લભ છે. કારણ કે તેઓશ્રી અંતમાં તે બાળ-તોનો જરા માત્ર પણ ઇન્સારો સૂચવતાં નથી, એટલુંજ નહીં પણ આ ‘વિવેક-વિલાસ’ શિવાય તેઓની કૃતિનો બીજો કોઈ ગ્રંથ પણ આપણને સાંપડી શક્યો નથી, અને લોકવાયકા પણ એવીજ છે કે, તેઓનો કરેલો આ એકજ ગ્રંથ છે. છતાં પણ એટલું તો અનુમાન ઉપરથી આપણે મેળવી શકીશું કે તેઓ વિક્રમના તેરમાં સૈકાના કેટલાંક વર્ષો ત્રિતાબાદ હોવાતી ધરાવતા હતા.

આ અનુમાન ઉપર આવવાનું સાધન માત્ર એટલુંજ છે કે તેઓના શિષ્ય ‘વેણી કૃપાણ અમર’ અથવા અમર-અદ કેવિ નામે “કાવ્ય કલ્પલતા, છન્દો રત્નાવળી, સૂકતા-વળી, કલાકલાપ, અને બાળભારતાદિ” વિગેરેના પ્રત્તા હતા.

તે અમરચંદ કવિ, ગૂર્જરના રાજા વીરજીદેવની કચેરીમાં
 તેના તેડાવવાથી ધોળકે આવ્યા હતા. વીરજીદેવે ગૂર્જરાત
 પર અણુહિલવાડમાં રહીને મવત્ ૧૩૦૦થી ૧૩૧૭ સુધી
 ગત્ય કર્યું તે પહેલાં તે મ ૧૦૯૫ માં ધોળકાની ગાદી
 ઉપર આવ્યો હતો. આ ઉપરથી આપણે જોઈ, શકીશું કે
 વીરજીદેવના વખતમાં શ્રી અમરચંદ ધોળકે આવ્યા હતા,
 અને શ્રી નિનદત્તસૂરિ તેઓના ગુરુ થતા હતા.
 તે ઉપરથી જ તેમના મૈકાતુ અનુમાન આપણે શ્રીજીનદત્તસૂરિ
 માટે કાઢીશું તો જોઈ જણાશે નહીં. આથી વિદ્રેષ
 ખાત્રી કરી શકાય તેવું કંઈ માધન આપણને જોવા-
 મા આવતું નથી.

વાયડગંજ હાલમાં તો ગૂર્જરાતમાં હયાતી ધરાવતો
 હોય તેવું જણાતું નથી, પછી ભલે કદાચ મારવાડ વિગેરેમાં
 કંઈ શ્રીપૂજે અને ગોવંદજી હયાત હોય. મરિ મારે
 આજેના દુકોન હેવાલ જણાવ્યા બાદ અત્રેથી જ વિરામ
 પામશું.

પ્રસિદ્ધકર્તા



વિષયાનુક્રમ.



ઉક્તિસ-પહેલો

પ્રથમ પહેલાર સુધીનો આવકાધિકાર.

વિષય.

પ્રત્યેક

પૃષ્ઠ

મગ્ગાયરણુ	૧-૩	૧
આદિ અક્ષરથી શુકનામ	૩	૨
પ્રત્યાનના	૮-૧૦	૨
નિર્ગ સાગ સમય	૧૩	૪
અમ પ્રગર	૧૪-૧૫	૪
સ્વ વિચાર	૨૩-૨૩	૮
મગ્ગનો ઉપાય	૨૪	૧૩
પ્રાત મા જળનો ઉપયોગ	૨૪-૨૫	૧૩
પ્રાત અને મળમન શુદ્ધિ	૨૫-૨૬	૧૪
વ્યાયામ અથવા કસરત	૨૬-૨૭	૧૭
મનન કવનો ગિધિ	૨૭-૨૮	૧૭
વાન શુદ્ધિ	૩૪	૨૧
પૂજન ગિધિ	૩૪-૩૫	૨૧
જપ વિધિ	૩૫	૨૧
પ્રમ તથા નાટી વિગ્ગા	૧૦૦-૧૧૧	૨૮
તપ વિગેરે	૧૧૨-૧૧૪	૩૧
ન્યાય સભા વિગેરે	૧૧૫-૧૧૮	૩૨
જ્યોતિષ, સામુદ્રિક વિગેરે	૧૧૯-૧૨૦	૩૩
જુખ્યા પેટે સુ વર્ગ	૧૨૧	૩૩
સારા કાર્યો, દેવ મન્ત્ર, ઉપાયપ વિગે	૧૨૨-૧૨૩	૩૪

વિષય.	પ્રલોક	પૃષ્ઠ.
પ્રતિમા-અધિકાર	૧૨૮-૧૫૯	૩૫
ભૂમિ પરીક્ષા	૧૬૦-૧૭૩	૪૩
મન્દિરાધિકાર	૧૭૪-૧૮૮	૪૭
ગુરુ સમ્બન્ધી	૧૮૯-૨૯૫	૫૧

ઉદ્ધાસ-ખીન્ને.

ખીન્ન તથા ત્રીજા અર્થા પ્રહરનો વિચાર.

રનાત ક્રિયા	૧-૧૪	૫૩
દોર ક્રમે	૧૫-૨૦	૫૭
વચ્ચ-ભૂમણાધિકાર	૨૧-૩૨	૫૯
નામબ્રુજ વિચાર	૩૩-૩૯	૬૧
દુષ્ટોપાર્ગનાધિકાર	૮૦-૫૦	૬૩
હસ્તસેના	૫૧-૫૮	૬૬
આનુ કેમ આપવું	૫૯	૬૭
વ્યવહાર કાણી સાથે રાખવો	૬૦-૬૨	૬૮
વ્યાપાર કાણો અને કેવો કરવો	૬૩-૬૫	૬૮
કાણે નહીં ફગવ!	૬૬	૬૯
ઓગન્દ લેવા આખન	૬૭-૬૮	૬૯
આત્મ નિન્દા વિગેરે	૬૯-૭૦	૭૦
ધન વાગ્ગા વિગેરે	૭૧-૭૩	૭૦
રાગ આદિકનો આશ્રય	૭૪-૭૫	૭૧
માલીક કેવો જોઈએ	૭૬-૭૯	૭૧
મન્ત્રી કેવો કરવો	૮૦-૮૪	૭૨
સેનાપતિ અને સેવક કેવાં જોઈએ	૮૫-૮૬	૭૩
માલીક પ્રત્યે કેવી રીતે વર્તવું	૮૭-૧૦૧	૭૪
સ્વામી લક્ષણ	૧૦૨-૧૦૩	૭૮

વિષય	પાનાંક	પૃષ્ઠ
નોકર સાગ નહીં કરના જામન	૧૦૪	૭૮
ઉલમથી ૬૧ પ્રાપ્તિ રિગેરે	૧૦૫-૧૧૫	૭૮

ઉત્સાસ ત્રીજો.

સૂર્યોદયથી ચોથા અર્ધ પહેર સુધી.

મહાગ્રથ મગમની જાણના લાચક જાખતો	૧-૮	૮૧
અતિથિ પ્રવેશી પતાયુક	૯-૧૮	૮૩
જાળન કયાં કરે, કંતુ કરે, અને જો તેમ		
ન થાય તો કેવું અર્થથી ચતુ રિગેરે	૧૯-૫૦	૮૫
અ ૧ ખાતા કેવો ગાદ આવે તો શ થાય	૫૧	૮૩
જાળન પછી પાણી કેમ પીતુ	૫૨-૫૩	૮૪
જાળન પછી દાથ કયા રૂગા	૫૪-૫૫	૮૪
જાળ ૧ કરના કોણે લા ન જાતું	૫૬-૫૯	૮૫
જાળ ૧ ક્યાં પછી શું કરે	૬૦-૬૨	૮૫
ચર્મી ધન્ય	૬૩-૬૮	૮૬
જાળનમા વિપત્તિ પરીણા	૬૯-૭૩	૮૭

ઉત્સાસ-ચોથો.

સૂર્યોદયથી બપોર સુધીના બે, તથા પછીના બે મહી

ચાર અર્ધ પહેરોનું કૃત્ય

આરક જાવડો વિચાર	૧-૨	૧૦૪
વાગુનો સમય	૩-૪	૧૦૪
મન્યપાણે રૂ રૂ જાગ કરે	૫-૭	૧૦૪
સન્ધ્યાની જોગખાણ	૮	૧૦૫
૫ મુગ્ધ	૯-૧૦	૧૦૫

ઉલ્લાસ-પાંચમો.

સૂર્યાસ્તથી રાત્રીનાં સાત ચોથડિયાં સુધીનું કૃત્ય.

વિષય.	શ્લોક.	પૃષ્ઠ.
લાઠી કહેવી રાખવી	૧-૪	૧૦૭
રાત્રીએ ગું તાગવું	૫	૧૦૭
કેવાં ખાટલા ઉપર સુવું	૬-૭	૧૦૮
કેવી રીતે નહી સુવું	૮-૧૧	૧૦૮
વર લક્ષણ જમાઈ કેવો શોધવો	૧૨-૧૩	૧૦૯
પુરૂષનાં લક્ષણો	૧૪-૩૧	૧૧૦
હાથ, આંગળી, ચિન્હ, અને રેખાઓનાં લક્ષણો	૩૨-૮૩	૧૧૪
નખનાં લક્ષણો	૮૪-૮૬	૧૨૭

વધૂ લક્ષણ.

સ્ત્રી કેવી પરણવી	૯૦-૯૧	૧૨૬
ખીજનં જાણવા લાયક લક્ષણો	૯૨-૧૨૩	૧૨૬
વિષ કન્યાની પરીક્ષા	૧૨૪-૧૨૬	૧૩૬
કેવી સ્ત્રીઓનો ભાગ કરવો	૧૩૦-૧૩૫	૧૩૭
વર-વધૂ સમ્યક્	૧૩૬-૧૩૭	૧૩૯
સ્ત્રીઓની પ્રસન્નતા અને વય	૧૩૮-૧૪૦	૧૪૦
સ્ત્રીને અનુકૂળ રાખવા બાબત	૧૪૧	૧૪૦
ગંધ અને કેશથી સ્ત્રી પરીક્ષા	૧૪૨-૧૪૪	૧૪૦
સ્ત્રી વશ કેવી રીતે રહે	૧૪૫	૧૪૧
સ્ત્રીપર પ્રીતિનું પ્રયોજન	૧૪૬	૧૪૧
સ્ત્રી કેવી હોય ત્યારે સમ્ભોગ ન કરવો.	૧૪૭	૧૪૧
મર્યાદા સમાન મન	૧૪૮	૧૪૨
કામાતુરનાં લક્ષણ	૧૪૯	૧૪૩

વિષય	શ્લોક	પૃષ્ઠ
સમ્બોગ પછી શુ સલામત તો મરણ થાય	૧૫૦	૧૪૭
શ્રી મમ્બોગ ક્યારે કરવો	૧૫૧-૧૫૨	૧૪૩
કામ પ્રિય શ્રીઓ સાથે શુ ન કરવું	૧૫૩-૧૫૬	૧૪૩
શ્રીનો પ્રેમ ક્યારે વૃદ્ધિ	૧૫૭	૧૮૪
નામ વિનાની શ્રીના લક્ષણ	૧૫૮-૧૬૦	૧૪૫
શ્રી પામે દુઃખ શ ન કરવી	૧૬૧	૧૪૫
શ્રીની શ્રીઓએ શુ શુ કરવું અને ન કરવું	૧૬૩-૧૬૭	૧૮૫
પતિ પરદેશ હોય ત્યારે મ વસતુ	૧૭૮-૧૮૧	૧૮૮
દશરથના દાઈમમા શુ વર્ણવું	૧૮૨-૧૮૫	૧૫૦
ગર્ભોધાન ક્યારે કરવું	૧૮૬-૧૮૬	૧૫૧
શ્રીઓ મૈથુનને ભવિષ્ય ક્યારે થાય	૧૮૭	૧૫૪
શ્રી અને પુત્રો કયા સુધી મૈથુન સેવું	૧૮૮	૧૫૪
કેના વખતમા ગર્ભોધાન થયું હોય તો પત્ની	મૂળ માપ	૧૫૪
ઉદરમા ગર્ભ કેવી રીતે ઉતરે છે	૨૧૨-૨૧૩	૧૫૮
ગર્ભ કયા રહે છે	૨૧૪	૧૨
જન્મ વખતે કેંઈ કયા નહાયો હોય તો	૨૧૫-૨૩૫	૧૨
સતતિની ઓળખ	૨૩૬-૨૩૭	૧૩
દાતનો સમય અને લક્ષણ	૨૩૮-૨૪૩	૧૪
નિદ્રા ક્યારે અને કેવી રીતે લેવી	૨૪૪-૨૫૬	૧૫

ઉક્ષામ-છટ્ટો

ક્યો ઉત્તુનાં વિચાર.

વિષય.	શ્લોક.	પૃષ્ઠ.
મી-મ	૭-૧૩	૧૭૧
વર્ષા	૧૮-૧૮	૧૭૩
શરદ્	૧૯-૨૩	૧૭૪
દેવન	૨૪-૨૮	૧૭૬
શિશિર	૨૯-૩૦	૧૭૭

ઉદ્દાસ-સાતમો.

પ્રતિવર્ષનાં કાર્યો.

વર્ષચર્યા	૧	૧૭૮
રાત્રી સુખ	૨	૧૭૮
ચોમાસાતું સુખ	૩	૧૭૮
વૃદ્ધાવસ્થામાં સુખ	૪	૧૭૯
પરભવ સુખ	૫	૧૭૯
ધર્માચાર્યની પૂજા	૬	૧૭૯
વૃદ્ધ, અને તીર્થયાત્રા	૭	૧૭૯
પ્રાયશ્ચિત્ત	૮	૧૭૯
શ્રાદ્ધ	૯-૧૦	૧૮૦

ઉદ્દાસ-આઠમો.

છંદગીમાં પગે પગે કરવા પડતાં કાર્યો.

જેવા રાજ્ય તથા દેશમાં રહેવું	૧-૫	૧૮૦
નિમિત્તક્રમ અથવા દેશ નાશનાં ચિન્હો	૬-૫૫	૧૮૨
વાસ્તુ, અને શુદ્ધ ગૃહક્રમ	૫૬-૯૫	૧૮૪
ગૃહ લક્ષ્મી વૃદ્ધિક્રમ	૯૬-૧૦૦	૨૦૬.
શત્રુ ઘેર આવે તો શું કરવું	૧૦૧	૨૦૭

વિષય	શ્લોક	પૃષ્ઠ
૩૫ લેખાની પામે ન રહેતુ	૧૦૨-૧૦૪	૨૦૭
૧૫૫ જાડે જોય તો નુ થાય	૧૦૫-૧૦૮	૨૦૮
ગિર્યાનભોધક્રમ, અથવા કનાચાચે, ગિર્યે,		
ગુફા-દે, અને માતરોએ ની રીતે નહિ		
તથા કેના દિવસોએ સિલસલ લેતુ અને ન		
લેતુ મિતેરે	૧૦૯-૧૧૫	૨૦૯
ઝેર, ઝેરી પ્રાણિઓનો ડખ, તેના ઉપાયો, કયે દિવસે મળે		
ઠવા વાગ-તિથિએ કડકયા હોય તો નુ થાય તથા		
તેના ઉત્તાગનારા અને વૈષ્ણો સમજાન્ધી		
નિય નિચાડ	૧૧૬-૧૧૮	૨૧૦
વાન "	૧૧૭	૨૧૦
તિથિ "	૧૧૭	૨૧૦
સાગિ "	૧૧૮-૧૧૯	૨૧૦
૧૧૮ "	૧૧૯	૨૧૦
લિખા ,	૧૧૭	૨૧૧
ડખ ,	૧૧૮-૧૧૯	૨૧૧
માનનિક આદિ ફત નિચાડ	૧૧૯-૧૨૦	૨૧૨
મર્મ-કથરયાકે "	૧૨૦-૧૨૧	૨૧૨
ગ્રંથી પીપ્પરાગાઓના લક્ષણ	૧૨૧-૧૨૨	૨૧૩
જખ નામકાના ન્યાયના "	૧૨૨-૧૨૩	૨૧૩
ગર્ભ નિ નિચાડ	૧૨૩-૧૨૪	૨૧૪
લિખી મર્મી	૨૦૪-૨૦૫	૨૩૦
વિ. ૧૨૫	૨૦૬	૨૩૧
૫૫૫ ઉપાયા	૨૩૨-૨૩૪	૨૩૨

છચો દર્શનોનો વિચાર.

વિષય.	પ્રલોક.	પુષ્.
પદ્ધર્શન વિચાર	૨૪૫	૨૪૨
જૈન મન ,,	૨૪૬-૨૫૭	૨૪૨
મીમાંસક :, ,,	૨૫૮-૨૬૪	૨૪૬
જૈન ,, ,,	૨૬૫-૨૭૫	૨૪૭
સાંખ્ય ,, ,,	૨૭૬-૨૮૪	૨૫૦
શૈવ ,, ,,	૨૮૫-૩૦૩	૨૫૨
નાસ્તિક ,, ,,	૩૦૪-૩૩૨	૨૫૬
જોવા અને ન જોવા લાયક વસ્તુઓ	૩૩૩-૩૩૬	૨૬૪
દષ્ટિ વિચાર	૩૩૭-૩૪૦	૨૬૫
નેત્ર સ્વરૂપ	૩૪૧-૩૫૪	૨૬૬
પરદેશ, રંગ, તથા બહાર જવા આવવાના નિયમો.	૩૫૫-૩૭૭	૨૬૮

વિશેષોપદેશક્રમ.

મસલન કાણી સાથે કરવી	૩૭૮-૩૮૧	૨૮૪
આક્રમ્બર	૩૮૨-૩૮૪	૨૭૫
વિશ્વાસ કાણો નહીં કરવો	૩૮૫-૩૮૮	૨૭૬
શું વિષયનો હમેશાં વિચાર કરવો	૩૮૯-૩૯૨	૨૭૭
અસિદ્ધિ, કલેશ, મનોરથ, અને કરપણું	૩૯૩-૩૯૬	૨૭૮
સોજન, સેવા, દરબજો, ઉપદ્રવ	૩૯૭-૪૦૩	૨૭૯
સંમતિ, આગેવાની, મત્સર, આંખમીચામણી	૪૦૪-૪૦૭	૨૮૧
જાનિ કલ્પ, દગિદિ અવસ્થા, વિગેરે	૪૦૮-૪૧૧	૨૮૧
ધર્મ, કપલાસ, પસ્તાવો, અને નાશ વિ	૪૧૨-૪૨૦	૨૮૨
વર્ણાશ્રમ, અલંકાર, મંદબુદ્ધિ, વિગેરે	૪૨૧-૪૩૪	૨૮૫
પરચુગ્લ, પુરુષ બુદ્ધિ	૪૩૫-૪૪૪	૨૮૯

ઉલ્લાસ-નવમો.

વિષય	શ્લોક	પૃષ્ઠ
સર્વ પ્રભાવનુ પાપ કાગળુ અને તેથી મનનુ અશુભ ફળ	૧-૧૬	૨૮૨

ઉલ્લાસ-દશમો.

દુઃખ ધર્મોપદેશ, અને તેનું ફળ	૧-૮૫	૨૮૬
------------------------------	------	-----

ઉલ્લાસ-અગીઆરમો.

ધ્યાન વિષય.

જી. ૧ જી. ૧ નિષ્કામસાગર ઉપદેશ	૧-૭	૩૦૧
માપુરોડુ દુઃખ	૮	૩૮
ગોળી ધર, અને અમાધિ સ્થાન	૯-૧૦	૩૦૮
સાન્ને પુરુષ કોડુ	૧૧	૩૦૮
ધ્યાની પુરોહિતા બનલુ નિઃ	૧૨-૨૫	૩૦૯
નમ્રચારી મેલુ કહેવાય	૨૬	૩૧૨
આત્મા-૧૫, ધ્યાન, તત્ત્વ અોસ્વભાવ લગલુ ૨૭-૮		૫૧૨
૮ ભીનપાત્ર ગ્રીકાગુ, મુખિ દ્વારે થાય,		
તથા ધમસ્વગ્ધ ૬૮-૭૩		૩૨૨
૭૧-૭૫ મા સજ્જી આસાકમતની રહ્યા		
અો ઉત્તર ૭૪-૮૩		૩૨૩
૭૫-૭૬ મા સમ્મનધી સમાધાન	૮૧-૮૮	૩૨૬
૭૭-૮૦, વિન નાનિમ્પણો		
૮૧ મા વિગે ૮-૮૧		૩૨૮

શિલ્પસાસ-ખાસ-મો.

વિષય.

શ્લોક.

પૃષ્ઠ.

અન્ત સમય, દેવત્યાગ, સમાધિમરણ

૧-૧૨

૩૩૦

અન્ય પ્રશસ્તિ.

નાયક ગરુડ

૧-૪

૩૩૩

નાયક વંશ

૫-૮

૩૩૪

દેવતાનું પ્રયાગ્ન નિર્ગર

૯-૧૦

૩૩૫



નમઃ શ્રીમર્ત્યે



વિવેકવિલાસ.

ગૂર્જરભાષાસહિત



આશ્વત્થામનંદરૂપાય, તમમ્નોર્મકભામ્યતે ॥

સર્વગ્રામ્ય નમસ્તર્મ્ય, કર્મ ચિન્ત્યમામ્યતે ॥૧॥

(પ્રથમ શ્રી જિનદત્તમુનિ પ્રથમ પ્રગલ્ભગણ સં ૩)

અર્થ — અવિનાશી આનંદ રૂપ, અજાનંદ રૂપ અવકાશ
નો નાશ કરવાને અધ્યાત્મમુદ્યતમાન, લોકાલોકમ રહેલી
સર્વ વસ્તુના જાણ, પાર્થિવી જેવું વર્ણન કરી શકાય નહીં,
જેવા અજાદિકે યગ્યમાનને મારો નનન્દ થાયો (૧)

સોમ મયમુર યુદ્ધ, નગ્નલિંગ ગુપ્ત ॥

મામ્બન્ન શકર શ્રીદ, પ્રણામિ પ્રગ્નો જિનમ્ ॥૨॥

અર્થ — જે આત્મા પાત્ક કરનાર અને આ વ્યવસ્થાની
હોવાથી નાશના અર્થમાં કહેવાય છે કે જિન ઉપદેશ મુજબ
પોતાની મેળે જ જોમ પામેલા વસ્તુ જે નાશ પામે (પ્રથમ)
કહેવાય છે કેવળના પોતાની યુદ્ધ મેળે થાય છે નહીં

કર્મપ્રકૃતિની સાથે નરકગતિનો પણ નાશ કરનારા માટે જે નરકનામા દેત્યને મારી નાખનાર સાક્ષાત્ :વિષ્ણુ કહેવાય છે. અલોકિક બુદ્ધિશાળી હોવાથી જે બૃહસ્પતિ કહેવાય છે. દેવળજ્ઞાનથી લોકાલોકને પ્રકાશિત કરનાર હોવાથી જે સૂર્ય કહેવાય છે. આસન્ન લબ્યને સુક્તિબુખના દાતાર હોવાથી જે શંકર કહેવાય છે. સ્વર્ગની તથા મોક્ષની લક્ષ્મી આપે છે તેથી જે કુબેર કહેવાય છે. એવા શ્રીજિન મહારાજની હું મનવચન કાચાચે પવિત્ર ધર્મને સ્તુતિ કરું છું. (૨)

जीवत्प्रतिभा यस्य, वचो मधुरिमाश्रितम् ॥

देहं गेहं श्रियस्तं स्वं, वन्दे मुखिरं गुरुम् ॥ ૩ ॥

(ગુરુનામ.)

—જમની બુદ્ધિ બૃહસ્પતિસમાન, વચન અમૃત સમાન, અને શરીર તો બાણે સાક્ષાત્ લક્ષ્મીનું નિવાસ-સ્થાનજ હોયની ! એવા મારા ગુરુમહારાજ શ્રીજીવદેવસૂરિને હું વંદના કરું છું. આ શ્લોકમાં આરે ચરણના શરૂઆતના અક્ષરથી જીવદેવ એવું ગુરુનું નામ સૂચવ્યું. (૩)

ईप्सितार्थप्रदः सर्व-व्यापत्तापघनार्थनः ॥

अयं जागर्तु विश्वस्य, हर्दि श्रीधरणक्रमः ॥ ૪ ॥

અર્થ.—જેનાથી વાંછિત વસ્તુ પ્રાપ્ત થાય છે, જે સર્વ આપદાઓનો તાપ દૂર કરવાને વરસતા મેઘસમાન છે અને જે લક્ષ્મી પ્રાપ્ત કરવામાં સાધનભૂત છે, એવો આ ગ્રંથ (વિવેકવિલાસ) સર્વ લોકોના હૃદયમાં બાંધી રહ્યો. (૪)

ચન્નલ્લલ્લકલ્લુ યે, ત્રિયો દદતિ દુઃખિયઃ ॥

તે મુગ્ધાઃ સ્વ ન જાનન્તિ, નિવિવેકમપુણ્યકમ્ ॥૫॥

અર્થ — જે હુર્ણુદિ જનો લક્ષ્મી ઉપર ચચલપણાતું કલક મૂકે છે, તે લોખા લોખે પોતાના વિવેકસૂન્યપણાને અને પુણ્યહીનપણાને જાણતા નથી (૫)

લક્ષ્મીકલ્પલનાયૈ યૈ, વક્ષ્યમાણોક્તિદોષદમ્ ॥

ચન્નન્તિ સુખિયોઽસ્ય, તેષામેષા ફલેગ્રહિઃ ॥૬॥

અર્થ — જે બુદ્ધિગાળી પુરુષો લક્ષ્મીરૂપી કલ્પવેલીને આ શ્રદ્ધા કહેલા વચનરૂપી દોહદ (દોહણો, ખાત) આપે છે, અર્થાત્ જે લોકો આ શ્રદ્ધા કહેલી સુક્તિથી ધન ઉપાર્જવાનો પ્રયત્ન કરે છે, તે લોકોને અવશ્ય આ કલ્પવેલી (લક્ષ્મી) ફળદાયક વાચ છે (૬)

કાર્યઃ સદ્વિસ્તતોઽવશ્ય-મસ્યૈ તદ્દાતુમુદ્યમઃ ॥

યદ્દાને જાયતે દાતુ-ર્મુક્તિર્મુક્તિશ્ચ નિશ્ચલા ॥૭॥

અર્થ — માટે, સત્પુરુષોએ અવશ્ય લક્ષ્મીરૂપ કલ્પવેલીને આ શ્રદ્ધા કહેલા વચનરૂપ દોહદ દેવાનો ઉદ્યમ કરવો કેમકે, તેથી સ્વર્ગાદિ સુખની તથા અતે શાશ્વત સુક્તિની પ્રાપ્તિ વાચ છે (૭)

અત્રીમિ સર્વશાસ્ત્રેભ્યઃ સારમુદ્ઘૃત્ય કિંચન ॥

પુણ્યમસવકૃત્સ્વર્ગા-પર્ગાફલપેશલમ્ ॥ ૮ ॥

અર્થ:—પૂર્વાચાર્યોએ રચેલા સર્વ શાસ્ત્રોમાંથી આર કા-
ઠીને જેથી પુણ્યની ઉત્પત્તિ અને સ્વર્ગની તથા મોક્ષનીપ્રાપ્તિ
થાય, એવું કિંચિત્ માત્ર વચન હું કહું છું. (૮)

સ્વસ્યાન્યસ્યાપિ પુણ્યાય, કુપ્રવૃત્તિનિવૃત્તયે ॥

શ્રીવિવેકવિલાસાચાર્યો ગ્રન્થઃ પ્રારમ્ભ્યતે મિતઃ॥૯॥

અર્થ:—પોતાને તથા બીજા પઠનાર વાંચનાર વિગેરે
લોકોને સુદૃઢની પ્રાપ્તિ થવાને અર્થે આ વિવેકવિલાસ
નામનો ગ્રંથ સંક્ષેપ માત્ર હું આરંભું છું. (૧૦)

પ્રવૃત્તાવત્ર યો યત્નઃ, ક્વચિન્કશ્ચિન્પ્રદર્શિતઃ॥

વિવેકિનાદૃતઃ સોઽપિ, નિવૃત્તૌ પર્યવસ્યતિ ॥૧૦॥

અર્થ:—આ ગ્રંથમાં કોઈ ઠેકાણે જે કંઈ પ્રવૃત્તિમાર્ગ
(વ્યવહારમાર્ગ) કહેવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે, તેનો વિવેકી
પુરૂષ આદર કરે તો અતે તે માર્ગ નિવૃત્તિમાર્ગનેજ (પર-
માર્થમાર્ગનેજ) જઈ મળશે. (૧૦)

અગદઃ પાવકઃ શ્રીદો, જગન્નિઃ સનાતનઃ ॥

एतैरन्वर्थतां यातु, ग्रन्थोऽयं पाठकैः सह ॥११॥

અર્થ:—આ ગ્રંથ કર્મરૂપ રોગને ઓષધ સમાન, પઠન.
તથા શ્રવણ કરનારાઓને પવિત્ર કરનારો, લક્ષ્મીનો આપનારો,
અજ્ઞાનરૂપ અંધકારનો નાશ કરવાને સૂર્યસમાન એવો થઈ
આ જગત્માં ચિરકાલ રહ્યો. તથા આ ગ્રંથના પઠન કર-
નારા લોકો પણ રોગરહિત, પવિત્ર, કુબેર સરખા ધનવાંત,
સૂર્યસમાન તેજસ્વી, અને પૂર્ણ આયુષ્યના લોગવનારા
થાઓ. (૧૧)

આલોકેક ઇવ સૂર્યસ્ય, સ્વજનમ્યોપકારવત્ ॥

ગ્રન્થોઽય સર્વસામાન્યો, માન્યો ભવતુ ધીમતામ્ ૧૦

અર્થ — જેમ સૂર્યનો પ્રકાશ આપપરલાવ ન રાખતા
અર્થ વસ્તુઓને પ્રકાશિત કરે છે, તથા જેમ મત્પુરુષો પક્ષ-
માંત ન કરતા અર્થ લોકો ઉપર એક મરજી ઉપકાર કરે
છે, તેમ આ મારો ગ્રંથ જ્ઞાતિ ભતિનો અથવા ખીલે દોષ
પણ ભેદ ન રાખતા મનુષ્યમાત્રના ઉપયોગમાં આવે, અને
વિદ્વન્મનોને માન્ય વાઓ (૧૦)

(હતિ પ્રસ્તાવના)

ધર્માર્થકામમોક્ષાણા, સિદ્ધયૈ વાન્વેદેવતામ્ ॥

ભાગેઽષ્ટમે ત્રિયામાયા, હત્તિષ્ટેદુગ્ધતઃ પુમાન્ ॥૧૩॥

અર્થ — ઉગ્રમવત પુરુષે ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ
આ આદે પુરુષાર્થની પ્રાપ્તિ થવા માટે ઇષ્ટ દેવતાનું ધ્યાન
કરી રાત્રિનો આઠમો ભાગ (લગભગ માડાચાર) બાકી રહે
ત્યારે બિહાનામાંથી ઉદ્ધુ (૧૩)

સુમ્યમ મેત્ય ન સ્વપ્ય, કથ્યમહિ ચ સદુરોઃ ॥

દુઃસ્વપ્નં પુનર્ગર્ભક્ય, કાર્યઃ પ્રોક્તવિપર્યયઃ ॥૧૪॥

અર્થ — સુખ સ્વપ્ન લેવા પછી કરીથી સુષ્ઠ રહેવું
નહિ સૂચેદ્ય થયા પછી તે સુતની ભેગવાઇના અભાવે
ભગવાન મન્મુખ અગર ગાયના કાનમાં કહેવું ભે મદ્સુતની
ભેગવાઇ મળે તો સદ્સુત આગળ કહેવું, અને અશુભ સ્વપ્ન
આવે તો પાશુ સુષ્ઠ રહેવું, તથા તે સ્વપ્ન કોઇ આગળ
પણ કહેવું નહિ (૧૪)

સમવાતોઃ પ્રશાન્તસ્ય, ધાર્મિકસ્યાંપિ નીરુજઃ ॥

સ્યાતાં પુંસો જિતાક્ષસ્ય, સ્વપ્નો સત્યો શુભાશુભૌ ॥૧૬॥

અર્થઃ—જેના શરીરમાં કંઈ, વાત્ પિત્તનો પ્રકોપ નહિ થયો હોય, જેને કોઈપણ બાતનો રોગ ન હોય, તથા જેણે પોતાની સર્વ ઈન્દ્રિયો વશ રાખી હોય, એવો શાંત અને ધાર્મિક જે પુરૂષ હોય, તેનેજ આવેલાં શુભ અથવા અશુભ સ્વપ્નો સોચાં પડે છે. (૧૫)

અનુભૂતઃ શ્રુતો દૃષ્ટઃ, પ્રકૃતેશ્ચ વિકારજઃ ॥

સ્વભાવતઃસમુદ્ભૂત-ચિન્તાસંતતિસંભવઃ ॥૧૬॥

દેવતાદ્યુપદેશોત્યો, ધર્મકર્મપ્રભાવજઃ ॥

પાપોદ્રેકસમુત્થશ્ચ, સ્વપ્નઃ સ્યાન્નવદ્યા નૃણામ્ ॥૧૭॥

અર્થઃ—૧ કંઈ અનુભવેલી વાત મનમાં રહેવાથી, ૨ કંઈ સાંભળેલી વાતથી, ૩ પ્રત્યક્ષ દીઠામાં આવેલી વાત-ચિત્તમાં રહેવાથી, ૪ અણુર્ણાદિ વિકારથી, ૫ સ્વભાવથી, ૬ એક સરખી ચિંતાથી, ૮ દેવતાદિના ઉપદેશથી, ૮ ધર્મ-કૃત્યના પ્રભાવથી, ૯ અને પાપકર્મની અતિશય વૃદ્ધિ થવાથી એવાં નવ કારણોથી નવ પ્રકારનાં સ્વપ્ન મનુષ્યને આવે છે. (૧૬-૧૭)

પ્રકારૈરાદિમૈઃ પાંક્તિ-રશુભશ્ચ શુભોઽપિ ચ ॥

દંટ્યો નિર્થકઃ સ્વપ્નઃ, સત્યશ્ચ ત્રિભિરુત્તરૈઃ ॥૧૮॥

અર્થઃ—ઉપર કહેલા પ્રકારમાંથી પડેલા છ કારણોથી દીઠેલું શુભ અથવા અશુભ સ્વપ્ન નિર્થક છે. અર્થાત શુભ હોય તો તેનું શુભ ફળ નહિ, અને અશુભ હોય તો તેનું

અશુભ ફળ પણ નહિ પણ છેલ્લા ત્રણ કાગ્જોથી અર્થાત્ દેવતાના ઉપદેશથી, ધર્મકૃત્યના પ્રભાવથી અને પાપની વૃદ્ધિથી આવેલુ ગુણ અથવા અશુભ સ્વપ્ન મત્ય રોય છે અર્થાત્ તે શુભાશુભ ફળ દે છે (૧૮)

રાત્રેન્નતુર્નુ યામેષુ, દૃષ્ટઃ સ્વપ્નઃ ફલપદઃ ॥

માસેર્દ્વાદશાભિઃ પાઙ્ક્તિભિર્ગ્ગેન ચ ક્રમાત્ ॥૧૯॥

નિશાન્ત્યપરિકાચુર્ગ્મે, દશાઘાત્ફલતિ ધ્રુવમ્ ॥

દૃષ્ટઃ સૂર્યોદયે સ્વપ્નઃ, સપ્તઃ ફલતિ નિશ્ચિતમ્ ॥૨૦॥

અર્થ—ગત્રિના પહેલા પહોરે દીઠેલુ સ્વપ્ન એક વર્ષે, બીજે પહોરે દીઠેલુ છ માસે, ત્રીજે પહોરે દીઠેલુ ત્રણ માસે, ચોથે પહોરે દીઠેલુ એક માસે, ગત્રિની છેલ્લી બે ઘડીએ દીઠેલુ દશ ઘડાડે અને સૂર્યોદયને મમયે દીઠેલુ તુલ્ય ફળ આપે છે (૧૮-૨૦)

માલાસ્વપ્નોઽન્તિ દૃષ્ટશ્ચ, તથાધિવ્યાપિસમયઃ ॥

મલમૂત્રાદિપીડાન્ત્યઃ, સ્વપ્નઃ સર્વો નિર્થકઃ ॥૨૧॥

અર્થ—એક ઉપર એક આવેલુ, દીવને દીઠેલુ, મનની ચિંતાથી તથા શરીરની વ્યાધિથી આવેલુ અને મળ તથા મૂત્રના ડોઢાવાને લીધે થએલી પીડાથી આવેલુ આ સર્વે સ્વપ્ન નિષ્ફળ (ફાગટ) છે. (૨૧)

અશુભઃ પ્રાક્ શુભઃ પશ્ચાત્, શુભો વા પ્રાગથાશુભઃ ॥

પાશ્ચાત્યઃ ફલદઃ સર્વો, દુઃસ્વપ્ને જ્ઞાન્તિમિપ્યતે ॥૨૨॥

અર્થ—પહેલા અશુભ તથા પછી શુભ અથવા પહેલા શુભ અને પછી અશુભ આવે તે તેમા પાછાની આવેલુ

સ્વપ્ન શુભ અથવા અશુભ ફળ આપે છે. કદાચિત્ દુઃસ્વપ્ન આવે તો જપ પૂજા વિગેરે શાન્તિકર્મ કરવું જોઈએ. (૨૨)

(અથ સ્વરવિચારઃ)

પ્રવિશન્યવનાપૂર્ણ-નાસિકાપક્ષમાશ્રિતમ્ ॥

પાદં શય્યાસ્થિતો દ્વયાત્, પ્રથમં પૃથિવીતલે ॥૨૩॥

અર્થ:—નાસિકાના જમણા અથવા ડાબા જે ભાગમાં પવન પેસતો હોય તે ભાગનો પગ ખીછાનામાંથી ઉઠી જતાં પ્રથમ ભૂમિપર મૂકવો. (૨૩)

અન્મોઽમૃતત્ત્વયોનિદ્રા-વિચ્છેદઃ શુભહેતવે ॥

ઘ્રોમવાચ્યગ્નિતત્ત્વેષુ, સ પુનર્દુઃસ્વદાયકઃ ॥૨૪॥

અર્થ:—પૃથ્વી, આપ [પાણી], તેજ, વાયુ, અને આકાશ એવાં પાંચ તત્ત્વો શ્વાસોચ્છ્વાસની અંદર આવે છે. તેમાં પૃથ્વી અથવા આપ તત્ત્વ શ્વાસોચ્છ્વાસમાં વહેતું હોય ત્યારે જાગ્રત થવું એ શુભ જાણવું, અને ખીજાં તેજ, વાયુ અને આકાશ આ તત્ત્વો વહેતાં હોય ત્યારે જાગ્રત થવું અશુભ સમજવું. (૨૪)

શુક્લપ્રતિપદો વાયુ-અન્દ્રેઽથાર્કે ત્ર્યહં ત્ર્યહમ્ ॥

વહન્ શસ્તોઽન્યા રીત્યા, વિપર્યાસે તુ દુઃસ્વદઃ ॥૨૫॥

અર્થ:—શુક્લપ્રતિપદાથી (અબુવાળા પડવાથી) માંડી પહેલા ત્રણ દિવસ અંદ્રનાડીમાં વાયુતત્ત્વ, પછી ખીજા ત્રણ દિવસ સૂર્યનાડીમાં વાયુતત્ત્વ એમ પખવાડીયું પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી ચાલે તો શુભ સમજવું, પણ એથી ઉલટું

એટલે પહેલા ત્રણ દિવસ સૂર્યનાડીમા વાયુતત્ત્વ અને પછીના
ત્રણ દિવસ ચંદ્રનાડીમા વાયુતત્ત્વ એમ હોય તો અશુભ
જાણવું (૨૫)

સાર્થ ઘટીદ્વય નાડિ-રેકકાર્કોદયાદ્દેત્ ॥

અરઘટ્ટપટ્ટીશ્રાન્તિ-ન્યાયાન્નાહ્યઃ પુનઃ પુનઃ ॥૨૬॥

અર્થ — જેમ રહેટના ઘડાઓ એક પછી એક અનુક્રમે
પાછીવી ભરાય છે, અને ખાલી થાય છે, તેમ મુર્યોદ-
યથી માડીને ચંદ્રનાડી અને સૂર્યનાડી અઢી અઢી ઘડી
સુધી વહે છે (૨૬)

ગ્રતાનિ તત્ર જાયન્તે, નિશ્વામોન્મુશસયોર્નિવ ॥

૨૧૬૦૦

સ્વ-સ્વ-પદ-કુ-ર્ત્ત્વં સત્ત્વા-દારાને સકલે પુનઃ ॥૨૭॥

અર્થ — ને અઢી ઘડીની અદર નવનો શ્વાનોરૂપીસ
ધાય છે તેમજ અપૂર્ણ અહોરાત્રમા (માઠ ઘડીમા) એકવીસ
હજાર હનો (૨૧૬૦૦) શ્વાનોરૂપીસ ધાય છે (૨૭)

પદ્મિગ્રહસ્વર્ણના યા વેગ મળતે ભ્રમેત્ ॥

સા વેગ મસ્તોનાહ્યા, નાહ્યા સચરતો ભ્રમેત્ ॥૨૮॥

અર્થ — હરીમ શુર અશ્વરનો ઉચ્ચાર કરતા જેટલો
વખત લાગે તેટલો વખત પવનને એક નાડી સુધી ખીજી
નાડીમા જતા લાગે છે (૨૮)

મત્યંક પચ તસ્વાનિ, નાહ્યોશ્ચ વદમાનયોઃ ॥

વદન્ત્યર્હનર્શં તાનિ, ગ્રાતયાનિ જિતાત્માયિઃ ॥૨૯॥

અર્થ — વહેતી નદી તથા ચંદ્રનાડીમા પાંચ તરવો

અહોરાત્ર વહે છે, તે બુદ્ધિમંત પુરુષોએ એવી રીતે
જાણ્યો. (૨૯)

ऊर्ध्वं वह्निरथो वारि, तिरश्चीनः समीरणः ॥

भूमिर्मध्यपुटे व्योम, सर्वगं वहते पुनः ॥ ३० ॥

અર્થ:—અગ્નિ ઉપર વહે છે, જળ નીચે વહે છે, વાયુ
વાંકે વહે છે, ભૂમિ નાગિદાના મધ્યમાંજ વહે છે, અને
આકાશ સર્વત્ર વહે છે. (૩૦)

वायोविह्वरपां पृथ्व्या, व्योन्नस्तत्त्वं क्रमाद्वहेत् ॥

वहन्त्योरुभयोर्નાड્યો-ર્જાતવ્યોઽયં ક્રમઃ સદા ॥૩૧॥

અર્થ:—જાને નાડીમાં પ્રથમ વાયુ પછી અગ્નિ, જળ,
પૃથ્વી અને આકાશ આ તત્ત્વો અનુક્રમે વહે છે. એ અનુ-
ક્રમ સદાનો સમજવો. (૩૧)

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाश-च्चत्वारिंशत्तयाम्भसः ॥

अग्नेस्त्रિंशत्પુનર્વાયો-વિંશતિર્નભસો દશ ॥૩૨॥

અર્થ:—પૃથ્વી તત્ત્વ પચાશ પળ, જળ તત્ત્વ ત્રાણીશ
પળ, અગ્નિ તત્ત્વ ત્રીશ પળ, વાયુ તત્ત્વ વીસ પળ તથા
આકાશ તત્ત્વ દશ પળ વહે છે. (૩૨)

प्रवाहकालसंख्येयं, हेतुर्वह्न्ययोरथ ॥

पृथ्वी पञ्चगुणा तोयं, चतुर्गुणमथानलः ॥૩૩॥

त्रिगुणो द्विगुणो वायु-विंशदेकगुणं भवेत् ॥

गुणं प्रति दश पला-न्युर्व्याः पञ्चाशदित्यतः ॥૩૪॥

एकैकहानिस्तोयादे-स्ते च पञ्चगुणाः क्षितौ ॥

गन्यो रसश्च रूपं च, स्पर्शः शब्दः क्रमादमी ॥૩૫॥

અર્થ — પાચે તત્ત્વો દેટલા વખત સૂધી વહે છે તે કહ્યું હવે પાચે તત્ત્વોની સ્થિતિ ઓછી વધારે છે તેનું કારણ કહે છે પૃથ્વી તત્ત્વના ગન્ધ, રસ, રૂપ, સ્પર્શ અને શબ્દ એ પાચ ગુણ છે જળ તત્ત્વના રસ, રૂપ, સ્પર્શ, અને શબ્દ એ ચાર ગુણ છે અગ્નિ તત્ત્વના રૂપ, સ્પર્શ અને શબ્દ એ ત્રણ ગુણ છે વાયુ તત્ત્વના સ્પર્શ અને શબ્દ એ બે ગુણ છે, અને આકાશ તત્ત્વનો શબ્દ એ એક જ ગુણ છે પ્રત્યેક ગુણની દસ પળ સ્થિતિ છે, તેથી પૃથ્વી તત્ત્વની સ્થિતિ પચાસ પળ છે બીજા તત્ત્વોમા અનુક્રમે એકેક ગુણ ઓછો હોવાથી દસ પળ ઓછી ગણિયે તો, જળ તત્ત્વની ચાલીશ, અગ્નિ તત્ત્વની ત્રીશ, વાયુ તત્ત્વની વીશ અને આકાશ તત્ત્વની દસ પળ સ્થિતિ થાય (૩૩) (૩૪) (૩૫)

તત્ત્વાભ્યા મૃજલાભ્યા સ્યા-ચ્છાન્તે કાર્યે ફલોન્નતિ:

દીપ્તાસ્થિરાદિકે કૃત્યે, તેજોવાચસ્વરૈઃ શુભમ્ ॥ ૩૬ ॥

અર્થ — કેઈ સૌમ્ય કાર્ય કરવું હોય તો પૃથ્વી તત્ત્વ અથવા જળ તત્ત્વ લેવું, તેથી સારા ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે અને ઉચ્ચ અસ્થિર એવું કાર્ય કરવું હોય તો અગ્નિ, વાયુ અથવા આકાશ તત્ત્વ લીધાથી શુભ ફળ થાય છે (૩૬)

પૃથ્વ્યમેજોમરુગ્રીમ-તત્ત્વાના ચિદ્દમુચ્યતે ॥

આગ્રે સ્વર્ગે સ્વાચિત્તમ્ય, શૈત્યકામોદ્ભવૌ પરે ॥ ૩૭ ॥

તૃતીયે કોપમંતાપૌ, તુર્યેજ્ય ચચ્ચલાન્મતા ॥

પચ્ચમે શન્યતૈવ સ્યા-દયત્રા ધર્મત્રાસના ॥ ૩૮ ॥

અર્થ — હવે પૃથ્વી આદિ પાચે તત્ત્વોમા કયું તત્ત્વ શરીરમા છે તે બાણવા માટે પાચેના લક્ષણ કહે છે

પૃથ્વી તત્ત્વ શરીરમાં હોય તો ચિત્તની સ્થિરતા રહે છે જળ તત્ત્વ હોય તો શીતળતા તથા ક્રાન્ધવિકારની ઉત્પત્તિ થાય છે. અગ્નિ તત્ત્વ હોય તો ક્રોધ અને સંતાપ થાય છે. વાયુ તત્ત્વ હોય તો ચિત્ત અચળ થાય છે. અને આકાશ તત્ત્વ હોય તો મનમાં શૂન્યપાત્ર રહે છે, અથવા ધર્મ કરવાની વાસના થાય છે. (૩૭) (૩૮):

શ્રુત્યોર્ગુપ્તકૌ મધ્યા-હુલ્યૌ નાસાપુટદ્વયે ॥

સક્રિણોઃ પ્રાન્ત્યકોપાન્ત્યા-હુન્ત્રી શેષે દૃગન્તયોઃ ॥૩૯॥

ન્યસ્યાન્તર્ધુ પૃથિવ્યાદિ-તત્ત્વજ્ઞાનં ભવેત્ત્રમાત્ ॥

પીતશ્વેતારુણચામૈ-વિન્દુભિનિરૂપાયિ સ્વમ્ ॥૪૦॥

અર્થ:—કાનનાં બે અંશુહા, નાકના બે છિદ્રમાં હાથની વચલી આંગળી, આંખપર અંશુહા પાસેની બે હાથની આંગળી અને હોઠની બે બાલુચે બંને હાથોની છેદત્રી અને તેની પાસેની એવી બે આંગળીઓ સખી બુકુટીની અંદર જોવાથી પાંચે તત્ત્વોનું જ્ઞાન થાય છે. તે આવી રીતે:—પીતુ ણિંદુ દેખાય તો પૃથ્વી તત્ત્વ, સફેદ દેખાય તો જળ તત્ત્વ લાલ દેખાય તો અગ્નિ તત્ત્વ, કાળું દેખાય તો વાયુ તત્ત્વ અને કંઈ ન દેખાય તો આકાશ તત્ત્વ જાણવું. (૩૯)(૪૦)

પીતઃ કાર્યસ્ય સંસિદ્ધિઃ, વિન્દુઃ શ્વેતઃ સુખં પુનઃ ॥

મયં સંચારુણો વ્રૂતે, હાનિં મૃદ્ધસમચુતિઃ ॥૪૧॥

અર્થ:—ઉપર કહેલી રીતે જોતાં પીતુ ણિંદુ દેખાય તો કાર્યની સિદ્ધિ, ઘોળુ દેખાય તો સુખ, રાતુ દેખાય

તો ભયની ઉત્પત્તિ અને ભ્રમર સરખું જ્યામવર્ણ દેખાય
તો હાનિ વાય છે (૪૧)

જીવિતજ્યે જયે લાભે, સસ્યોત્પત્તો ચ વર્ષણે ॥

પુત્રાર્થે યુદ્ધપૃચ્છાર્થાં, ગમનાગમને તથા ॥૪૨॥

પૃચ્છ્યત્તત્તે શુભે મ્યાતા, વૈદેવાર્તાં ચ નો શુભૌ ॥

અર્થસિદ્ધિઃ સ્થિરોર્જ્યા તુ, ગોપમમ્મસિ નિર્દિશેન્ ॥૪૩॥

અર્થ — આશુરિકા, જમ, લાભ, ધાન્યની ઉત્પત્તિ, વૃદ્ધિ [વૃદ્ધિ], પુત્રની પ્રાપ્તિ, સગામની પૃચ્છા, ગમન [ગમન] તથા આગમન [આગમન] એટલા કાર્યોમા પૃથ્વી તત્વ અને જળ તત્વ ગુણ લાભુના, પથુ અગ્નિ તત્વ અને વાયુતત્વ ઉપર કહેલા કાર્યોમા ગુણ કૃણ દેનાગ નથી, પૃથ્વી તત્વ ધીરે ધીરે શુભ ફલ આપે છે, અને જલ તત્વ તુરત આપે છે (૪૨) (૪૩)

(ધર્મ સ્થરચિન્તા.)

નિષ્ઠીવનેન દદુવાદે- મ્નતઃ કુર્પાન્નિર્ગર્ષણમ્ ॥

મદ્મન્મદ્યયિ પાણિભ્યા, રઞ્જોક્ષ્ણમાચંગેન્ ॥૪૪॥

અર્થ — પત્રી દાદુ, ખમ રિંગે વડ દોષ તે તે ઉપર ગુણ ધનુ, અને શરીરની તૃદનાને અર્થ બે હાથે શરીર મમ્મણુ. (૪૪)

વૈદનામકમાવૈન્ન, પાત્યપયગા પય. ॥

અઠમસઃ મમ્મનીગૃહા. પેથા. કેચિદ્ગન્નપાપિ ॥૪૫॥

અર્થ — પ્રાપ્ત કરના જળ બહુ બધા દેનાર ઉ તેથી

તે વજ્ર નામથી કહેવાય છે. માટે 'વજ્ર' એ નામે ઓળખાતું જળ કંઠ સૂધી એટલે ખુબ ધરાઈને પીવું. ટેટલાક તો આઠ પસલી પાણી પીવું એમ પણ કહે છે. (૪૫)

ન સ્વપ્નાન્નાન્યમાયાસં, કુર્યાત્પીત્વા જલં મુધીઃ ॥

આસીનો હૃદિ શાસ્ત્રાર્થાન, ડિનકૃત્યાનિ ચ સ્મરેત્ ॥૪૬॥

અર્થ:—જલપાન કરીને પાણું સુવું નહીં, તથા આયાસ ઉપજાવે એવું કંઈ કામ પણ કરવું નહીં. પણ સ્વસ્થ બેસી શાસ્ત્રમાં કહેલી વાતોનો મનમાં વિચાર કરવો અથવા દિવસે જે શુભ કૃત્ય કરવા ધાર્યું હોય તે ચિંતવવું. (૪૬)

પ્રાતઃ પ્રથમેવાથ, સ્વપાણિં દક્ષિણં પુમાન્ ॥

પ્રણયેદ્વામં ચ વામાધી, નિજપુણ્યપ્રકાશકમ્ ॥૪૭॥

અર્થ:—પુરૂષે પોતાના પુણ્યનો પ્રકાશ કરનારો જન્મભ્રુ હાથ સવારમાં પ્રથમજ નેવો, અને સ્ત્રીએ પોતાનો કાબો હાથ નેવો. (૪૭)

મૌની વસ્ત્રાવૃતઃ કુર્યા-દિને સંધ્યાદ્વયેઽપિ ચ ॥

ઉદઙ્મુસઃ શકુન્મૂત્રે, રાત્રૌ યામ્યાનનઃ પુનઃ ॥૪૮॥

અર્થ:—પછી વસ્ત્ર પહેરી, મૌન રહી મલમૂત્રનો ઉત્સર્ગ [આડો અને પેશાળ] કરવો. તે કરતી વખતે દિવસ અથવા સવાર સાંજ હોય તો ઉત્તર દિશાએ અને રાત્રિ હોય તો દક્ષિણ દિશાએ મુખ કરીને બેસવું. (૪૮)

નક્ષત્રેષુ સમસ્તેષુ, અષ્ટતેજસુ ભાસ્વતઃ ॥

યાવદર્થોદયસ્તાવ-ત્પ્રાતઃસંધ્યાભિર્યાયતે ॥૪૯॥

અર્થ — ત્યાંદે મને નમેત્રો નિન્તે- જોડલે નજરે દેખાતા
બાધ પડી જાય છે, અને સૂર્યના ણિબનો અર્ધો ઉદય
થએલો દેખવામા આવે છે, ત્યાં પ્રાત સધ્યાનો સમય થયો
એમ કહેવાય છે (૪૮)

भयमंगमयगोस्थान-चर्माकशकृदादिभू ॥

उत्तमद्रुमसप्तार्चि-मार्गनीगश्रयादि च ॥५०॥

स्थान चित्तादिनिकृत, तथा कूलंकपातटम् ॥

वर्जनीय प्रयत्नेन, प्रेगाभावेऽन्यथा नतु ॥ ५१ ॥

અર્થ — ગળા અથવા છાતી ન્યા પડ્યું હોય, ન્યા ગાયો
ફગ્ની ફગ્ની અથવા બધાલી હોય, ન્યા વસ્ત્રીક [રાફટો],
પિપ્પા પિપ્પે મલિન વસ્ત્ર, ઉત્તમ વૃમ અથવા અગ્નિ હોય,
જે આવવા નવાનો માર્ગ, પાણીનુ સ્થાનક અથવા વિમાનો
દેવાની ન્યા હોય, અને રમવાન અથવા નહીનો કાઠો હોય,
અને ઠેકાણે બહુ ઉનાવળ ન હોય તો મલમૂલાત્મર્ગ [ઝાટો
અને પેશાબ] કરવો નહિ અને ઉનાવળ હોય તો કંઈ ફગ્નત
નથી (૫૦-૫૧)

पेग.क पाण्यंशान—विष्मन्तृक्षुनसृषाम् ॥

निद्रासामभ्रमभ्रम—जृण्वाभ्रच्छर्दिरेनसाय ॥८२॥

અર્થ — અધોવાન, વિપ્લા, મૃત, નૃપા, હીક, દેહી, નિદ્રા
 ૧૩૧, મહેનન કશ્વતી વરિદો શ્વાતોર્ધામ, ષમાગુ, આશુ,
 દાન તથા પીત્રે એ નિશ્ચયથી મના તથા નો નેની રિતિ નિદ્ર-
 કાવળી નિ (૫૦),

ગન્ધવાહપ્રવાહસ્ય, નિજં પૃષ્ઠમનર્પયન્ ॥

સ્ત્રીપૂજ્યાગોચરે લોઘ—દ્વયન્યસ્તપદઃ સુધી ॥

મન્દં મન્દં તતઃ કૃત્વા, નિરોધસ્ય વિમોચનમ્ ॥

નિઃશલ્યાદુષ્ટમૃત્પિષ્ઠે—નોન્મૃજ્યં ચ ગુદાન્તરમ્ ॥૬૪॥

અર્થઃ—ખુદ્ધિશાલી પુરૂષે મલમૂત્ર કરવા બેસતી વખતે પવનનો પ્રવાહ જે બાબુથી આવતો હોય તે બાબુએ પોતાની પૂઠ ન કરવી, સ્ત્રીઓની અથવા પોતાને પૂજવા લાયક પુરૂષોની દૃષ્ટિ વર્જવી. અને પથર ઉપર બે પગ મૂકવા, એવી રીતે બેસી ધીરે ધીરે મલમૂત્રનો ત્યાગ કરી જેમાં કાંટો કાંકરો ન હોય એવી માટી લઈ મલદ્વારની શુદ્ધિ કરવી. (૫૩) (૫૪)

ક્ષુતશુક્રશક્રન્મૂત્રં, જાયતે યુગપચ્ચાદે ॥

તત્ર માસે દિને તત્ર, વત્સરાન્તે મૃતિર્ભવેત્ ॥૬૫॥

અર્થઃ—જે છીંક, ધાતુ, મલ અને મૂત્ર એ ચારે સાથે થાય, તો એક વર્ષને છેડે તેજ મહીનામાં અને તેજ દિવસે તે મનુષ્યનું મરણ થાય. (૫૫)

વિમુચ્યાન્યાઃ ક્રિયાઃ સર્વા, જલશૌચપરાયણઃ ॥

ગુદં લિઙ્ગં ચ પાણી ચ, પૂતયા શોષયેન્મૃદા ॥૬૬॥

અર્થઃ—જળશુદ્ધિ તરફ લક્ષ આપનારા પુરૂષોએ બીજાં સર્વ કામ સુધી દર્શ શુદ્ધ (મલદ્વાર), પુરૂષચિન્હ અને હાથ શુદ્ધ માટીથી સાફ કરવા. (૫૬)

‘હેત્યાદિવેન વર્ત્યો, વ્યાયામસ્તદિનાદવ’ ॥

જ્વાલિતે જાઠરેણૌ ચ, ન કયા દિનદિનતા ॥૬૯॥

અર્થ — જોના શરીરમાં કદ વધારે હોય, તેણે કદ નાશને અર્થે વ્યાયામ (ક-વુ અથવા દોપિણુ બાલની કસ રત) કરવો પણ પેટમાં જઠરાગ્નિ પ્રદીપ્ત થયે હોય તો અર્થાત્ ઘણી બધી લાગી હોય તો બિલકુલ વ્યાયામ કરવો નથી (૫૭)

ગતિશક્ત્યર્થમેવાર્મા, ત્રિયમાણઃ સુખાદયઃ ॥

ગાત્રાવેદાદિકરત્ર, સોડ્યનાદિવ નોદિતઃ ॥૬૮॥

અર્થ — સાલગાની બેટલી ગદિત હોય તે ક-તા અર્થે વ્યાયામ કરવો, તેજ સુખમગ્ની છે પણ હૃદયનાત ગરીર ઉપર પચીને વળે એવો ઘોરાની પેઠે વ્યાયામ કરવો ઉચિત નથી (૫૮)

ગજાઈર્વોદનંદરત, વ્યાયામો દિસેદયે ॥

અમૃતોપમ एनासा, મરેશુસ્તે ન તિસ્તિ ॥૬૯॥

અર્થ — સૂર્યોદયની વેળાએ પાણી, દોડા વિગેરે વાહન ઉપર બેઠીને વ્યાયામ કરવો તે અમૃતમગ્ન સુખદાયી છે વળી તેથી પાણી દોડા વિગેરે વાહનને પણ સાલગાની સારી સિખા મળે છે (૫૯)

(અથ દનપાત્રનિર્મિત ॥)

તત્કાલર્પાય તર્જન્યા, વર્ત્યેદનદીદિક ॥

માત્રાત્. દર તુર્ગ — દર, દર, દર, ત ॥૬૯॥

અર્થ:—દાંત મળખૂત કરવાને અર્થે પ્રથમ ટચલી આંગળીથી દાંતનાં પેટિયાં ઘસવાં, અને પછી સાચવીને દાંતણુ કરવું. (૬૦)

યચાચવાઃરિગણ્ડપા—દ્વિન્દુરેકઃ પ્રધાવતિ ॥

કળે તદા નરેજેયં, શીઘ્રં ભોજનમુત્તમમ્ ॥૬૧॥

અર્થ:—જો દાંતણુ કરતાં પહેલાં ડોંગળાનો એક બિંદુ ગળામાં ઉતરી જાય તો મનુષ્યોએ જાણવું કે, આજે શીઘ્ર અને આરૂં ભોજન મળશે. (૬૧)

અવકાશનિસત્કૂર્ચે, સૂક્ષ્માયં દ્વાદશાઙ્ગુલમ્ ॥

કત્તિપ્રાણસમસ્થાત્યં, જ્ઞાતવૃક્ષં સુખમિજમ્ ॥૬૨॥

કાનિષ્ઠિકાનામિકર્યો—રન્તરે દ્વન્તધાવનમ્ ॥

આદાય દક્ષિણાં દંપ્ટ્રાં, વાયાં વા સંસ્પૃગ્મસ્તલે ॥૬૩॥

તલીનમાનસઃ સ્વસ્થો, દન્તમાંસમપીડયન્ ॥

ઉત્તરાભિમુખઃ પ્રાચી—મુખો વા નિશ્ચલાસનઃ ॥૬૪॥

દ્વન્તાન્મૌનપરસ્તન, ઘર્ષયેદર્જયેત્પુનઃ ॥

દુર્ગન્ધં શુપિરં શુષ્કં, સ્વાદ્મલ્લં લઘુણં ચ તત્ ॥૬૫॥

અર્થ:—ગ્રીધુ (વાંકુ નહીં એવું), ગાંઠ વિનાનું, જેનો સારો કૃત્યો થાય એવું, જેનો અગ્રભાગ (ટુંક) ફેમળ છે એવું આર આંગળ લાંબુ, ટચલી આંગળી જેટલું જાડું, જાણીતા વૃક્ષનું નથા સારી ભૂમિમાં થયેલા વૃક્ષનું એવું દંતકાષ્ઠ (દાંતણુ) ટચલી આંગળી અને તેની જોડેની આંગળી એ દેની વચ્ચે પકડીને જમણી અથવા ડાબી દાઢે પ્રથમ ઘસવું

દાત ઘસતી વખતે સ્વરથ થઇ ઘમવામાજ ખરાખર ચિત્ત
ગખણુ દાતની આજીબાજીના મામને પીકા ન થાય એમ
ઘસણુ ઉત્તર ગયવા પુર્વ દિગા તરફ મુખ કરી નિશ્ચય એસણુ
અને મોન પછે રહેણુ હુર્જીધવાણુ, અદરવી પોણુ, સૂક,
મીઠું, ખાટું અને આઠ એણુ દતકાઇ (દાતણુ) વર્જણુ.
(૬૦) (૬૧) (૬૨) (૬૩)

વ્યતીપાતે રવેર્વારે, સક્રાન્તો ગ્રહણે ન તુ ॥

દન્તકાષ્ઠ નવાષ્ટૈક-ભૂતપક્ષાન્તપદ્મુ ॥૬૬॥

અર્થ—વ્યતિપાતનો દિવસ, ગવિવાર, મટાતિનો દિવસ,
ગ્રહણનો દિવસ, નવમી, અષ્ટમી, પ્રતિપદા, ચતુર્દશી, પૂર્ણિમા
અમાવાસ્યા અને પાંદી એટલા દિવસે દતકાઈ (દાતણુ)
ઠરણુ નહી (૬૬)

અમાવે દન્તકાષ્ઠસ્ય, મુખશુદ્ધિવિધિઃ પુનઃ ॥

કાર્યો દ્વાદશગણ્ઢૈ—જિદ્ગોદ્ગેસ્તુ સર્વદા ॥૬૭॥

અર્થ—દતકાઈ (દાતણુ) મળી શકે નહી તો ખાર દોગળા
કરી મુખશુદ્ધિ ઠરવી પણ છાત્ર ઉપરનો મેલ તો હમેશા
ધમીને ઉતારવો (૬૭)

વિલિખ્ય રસના જિદ્ગા—નિલેલિન્યા ગર્જનઃ ગર્જનઃ ॥

શુચિપ્રદેશે પ્રસાલ્ય, દન્તકાષ્ઠ પુનમ્યજેત ॥૬૮॥

અર્થ—પછી દાતણુ ફાડી તેના ડડાથી ખીર ધીરે
જીભ ઉભરનો મળ ઉતારો, અને દાતણુ ધોઈ આગળ મુઠ્ઠા
મૂંઠિ ઉપર નાખી દેણુ (૬૮)

સંમુખં પતિતં સ્વસ્ય, ગાન્તાનાં કકુમાં ચ યત્ ॥

ઝઘ્ઘસ્થં મુગ્ધદં તન્ન્યા-દન્યથા દુઃખેત્તેવ ॥ ૬૯ ॥

અર્થ:—તે દંતકાષ્ઠ બે આપણી સામું પડે, શાંત દિશામાં પડે, અથવા ઉંઘુ પડે તો તે સુખકારી સમજવું. અને એથી ઉલટી રીતે પડે તો દુઃખનું કારણ બનવું. (૬૯)

ઝઘ્ઘં રિત્ત્વા લપં પશ્ચાન્નતત્ત્વેવ યદા દુનઃ ॥

મિષ્ટાહારસ્તદાદિષ્ટ-મ્તદિને શાસ્ત્રકેવિદેઃ ॥ ૭૦ ॥

અર્થ:—થોડીવાર ઉંચુ રહીને બે પાછું જમીન ઉપર પડે, તો તે દિવસે મિષ્ટાન્નની પ્રાપ્તિ થાય એમ શાસ્ત્રના બાણ પુરૂષો કહે છે. (૭૦)

કાસશ્વાસજ્વરાજીર્ણ-શોકતૃષ્ણાસ્યપ્કટુક ॥

નચ કુર્યાચ્છિરોનેત્ર-હૃત્કર્ણમિયવાનાપિ ॥ ૭૧ ॥

અર્થ:—ખાંસી, શ્વાસ, જ્વર, અજીર્ણ, સોજો, તૃષ્ણા, સુખ પાક (મોઢું આવવું) માથાનો, નેત્રનો, હૃદયનો તથા કાનનો દુખાવો એટલામાં ગમે તે રોગ જેને હોય તે રોગિયે દાતાણુ કરવું નહીં. (૭૧)

પ્રાતઃ શનૈઃ શનૈર્નસ્યો, રોગહૃચ્છુદ્ધવારિણા ॥

મૃત્કતો નાસયા તોયૈર્ગજા મર્જન્તિ નૌરજઃ ॥ ૭૨ ॥

અર્થ:—સવારમાં ધીરે ધીરે નાક વાટે ચોખ્ખું પાણી પીવું. તેથી રોગનો નાશ થાય છે. હાર્થીઓ નાક વાટે પાણી પિએ છે તેથી નિરોગી થઈ ગર્ભરવ કરે છે. (૭૨)

ઉત્તંચા સુગન્ધવદનાઃ રિનઘનિસ્વના વિમલેન્દ્રિયાઃ ॥

નિર્વલીપલિતવ્યજ્ઞા, જાયન્તે નસ્યશીલિનઃ ॥ ૭૩ ॥

અર્થ — વેદનાજામા કહ્યું છે કે, “ જે પુત્રો હમેશા નરય (નાક વાટે સામ્રોક્ત વસ્તુનું નેવન કંચુ) કરે છે તેમના મુખે મુગધિ રહે છે, ગ્વર સ્ત્રિય રહે છે, ઇન્દ્રિયો નિર્ભય રહે છે, અને ગરીબ ઉપર કૃપાથી વિશેરે પડતી નથી.” (૭૩)

આસ્પર્શાપારસ્પોટ-સ્વરમદ્ગનિવૃત્તયે ॥

પારસ્પદન્તર્ગિત્તયેન્નેત્તગણ્ડપમુદ્ગેન્ ॥૭૪॥

અર્થ — મુખમા શ્રોત્ર પડતો હોય, હોઠ ફાટી ગયા હોય, આંધ બેગી બેગો હોય, આમડી બગ્દટ થઈ હોય, ફાતમા દુખારો થતો હોય, તો તેને મટાડવા નાટે ધીનો અથવા તેલનો મેગણો કરવો (૭૪)

કેશમમાદન નિમ્પ, વાયેન્દ્ર નિશ્ચય ॥

ચામ્યા શુગપત્તુર્યા ન્ત્રોત્તમાદે સ્વય જ તન્ ॥૭૫॥

અર્થ — પછી ગિર બેગી હોઈ પાને પોતાના માથાના વાગ માફ ફગવના પોતાના માથાના વાગ પોતાને જ માફ કરવા દોય તો તે સધાતે બે હાથથી નાફ કરવા નર્હી (૭૫)

નિત્ત્વ દ્રુપ્તમાદર્શ, મદ્ગ્નાય ચ રીક્ષયે ॥

દ્રુપ્તે દ્રેન્ ગિર્ગેદ્નિ. મૃત્યુ પશ્ચદ્ગેદ્નિ ॥૭૬॥

અર્થ — નિતકરેવા વાટે અથવા મગલીકરે અથ આગિ-નામા નેત્રુ દગિત્ત લે માયા વાગ એકત્ર પોતાનું પડજ દેખાય તો તે નિવળી પડ-ને દિવને પોતાનું મરણ નાપ્યુ (૭૬)

માત્રમભતિદ્ધાના, નપ્ત્ત્વ ચગેતિ ચ ॥

ત્રીર્ગાચાપ્ત નપ્ત, ત્રીર્ગાચાપ્ત ટિનેટિને ॥૭૭॥

અર્થ:—મા, બાપ વિગેરે વૃદ્ધ પુરૂષોને જે નમસ્કાર કરે છે, તેને તીર્થયાત્રાનું ફળ મળે છે. માટે દરેકજ તેમને નમસ્કાર કરવો. (૭૭)

उक्तं च ॥मातापित्रोरभक्तः, क्रियामुद्दिश्य याचकः ॥

मृतशय्याप्रतिग्राही, न भूयः पुरुषो भवेत् ॥७८॥

અર્થ:—કહ્યું છે કે, “ જે મનુષ્ય પોતાના માબાપનું ભરણ પોષણ ન કરે, કંઈ ધર્મક્રિયા ઉદ્દેશીને એટલે ફલાણું ધર્મકૃત્ય કરવું છે, એમ કહીને ચાચના કરે, અને મરી ગયા મનુષ્યનું શય્યાદાન લે, તેને ફરીથી મનુષ્ય ભવ મળવો હુલ્લ છે. (૭૮)

वृद्धौ च मातापितरौ, साध्वी भार्या मुतः शिशुः ॥

अप्यकार्यशतं कृत्वा, भर्तव्या मंरुરव્રवीत् ॥७९॥

અર્થ:—આપણાં વૃદ્ધ થયેલાં માબાપ, શીલવતી સ્ત્રી અને અજ્ઞાત પુત્ર એમનું પોષણ સેંકડોં અકાર્યો કરીને પણ કરવું, એમ મનુ ઋષિ કહે છે. (૭૯)

अनुपासितवृद्धानां-मसौवेतमहीभुजाम् ॥

अवारमुख्यामुहदां, द्वैर धर्मार्थतुष्टयः ॥८०॥

અર્થ:—જે લોકો સ્થવિરની સેવા કરતા નથી તેમના થી ધર્મ વેગળો રહે છે, જે રાજાઓની સેવા કરતા નથી તેમનાથી દ્રવ્ય વેગળું રહે છે, અને જે ગણિકાની મૈત્રી રાખતા નથી તેમનાથી વિષયસંતોષ વેગળો રહે છે. (૮૦)

૧ ગણિકાના દોષ દેખીને વૈરાગ્ય થવાથી વિષય ઉપર સંતોષ થાય છે. એ ભાવાર્થ સમજવો.

તતઃ સ્નાત્વા શિરઃકણ્ઠા-વયવેષુ યથોચિત્મ્ ॥

પવિત્રાયિતુમાત્માન, જર્લ્દન્ત્રમ્પ્રમેણ યા ॥૮૧॥

વચ્ચશ્ચાદ્ધિમનઃશુદ્ધિ, કૃત્વા ત્યજત્વા ચ દ્વરતઃ ॥

નામ્તિકાદીનાઃ સ્પિષ્વા, પુષ્પ પ્રજાગૃહાન્તરે ॥૮૨॥

આશ્રયન્દ્રવિણા શારા-મર્ચયન્નથ દેહલીપ્ ॥

તામસ્પૃશન્પ્રવેશ્યાન્ત-દૈક્ષિણેનાદ્વિણા તતઃ ॥ ૮૩ ॥

મુગન્પ્રમયુર્દ્ધૈર્ચ, માઘુસ્તો વાપ્તુદક્ષુઃ

વામનાઢ્યા મ્મૃત્તાયા, મૌનવા દેવમર્ચયેત્ ॥ ૮૪ ॥

અર્થ — પછી દેહ, કાળ તથા આપણી પ્રકૃતિને (ચિત્ત લાગે તેમ બાહ્ય શુદ્ધિને અર્થ શિ-સ્નાન (માથા ઉપ-થી પગ), કંઠ સ્નાન (કંઠ સુધી ન્હાવું), અવયવસ્નાન (હાથ, પગ વિગેરે ધોવા) કરવું જોઈ કરીને સ્નાન કરવું એવો નિયમ છે. પણ તમ કરવાને હરકત હોય તો મત્ર વડે સ્નાન કરવું પડી શુદ્ધ વસ્ત્ર પહેરી, મન શુદ્ધ કરી તવ નારિતક, વ્યસની વિગેરે લોકોની દ્રષ્ટિથી વેગળા રહી પૂજા ગૃહની અદર કૂલ વિગેરે સામગ્રી બનાવતો ૧૫મી ઠાંની જમણી બાજુએ દલા રહી ઘ-ના ઉબગતુ પૂજન કરવું પડી, ઉબગને પગે સ્પર્શ ન કરના નમો પગ આગળ મૂકીને અદર જવું અને ચક્રનાટી (રાત્રી નામિકા) વહેતા ચક્રા પૂર્વ અથવા ઉત્તર દિશા તરફ મુખ કરીને સુધી તથા મધુર વાનુથી, મૌન રીતે, દેવની પૂજા કરવી (૮૧) (૮૨) (૮૩) (૮૪)

ગૃહે પ્રતિગતા વામભાગે, મુસ્થાનસંસ્થિતમ્ ॥

દેવતાયતનં કુર્યા-ત્સાર્લહસ્તોર્ધ્વભૂમિષુ ॥૮૫॥

અર્થ:—ઘરમાં પ્રવેશ કરતાં ડાબા હાથપર દેવમંદિર કરવું, તેની રચના સારી હોવી જોઈએ, અને ઘરની ભૂમિથી મંદિરની ભૂમિ દોડ હાથ ઉંચી જોઈએ. (૮૫)

નીચૈર્ભૂમિસ્થિતં કુર્યા-દેવતાવસથં યદિ ॥

નીચૈર્નીચૈસ્તતોજ્વલ્યં, સંતત્યાદિ તદા ભવેત્ ॥૮૬॥

અર્થ:—જો નીચી ભૂમિ ઉપર દેવ મંદિર કરે, તો તે પુરૂષની સંતતિ વિગેરે અવશ્ય નીચ અવસ્થામાં રહે. (૮૬)

દૂત્તમઃ સ્યાદધો પૂર્વ-મુખો વાણુત્તરામુખઃ ॥

દક્ષિણાદિદિગો વર્જ્યા, વિદિગ્વર્જનમેવ ચ ॥ ૮૭ ॥

અર્થ:—પૂજા કરનારા પુરૂષે પૂર્વ અથવા ઉત્તર દિશા તરફ મુખ કરીને બેસવું. દક્ષિણ, પશ્ચિમ, અગ્નિ, નૈઋત્ય વાયવ્ય અને ઈશાન્ય એ છ દિશા પૂજામાં અવશ્ય વર્જવી. (૮૭)

પશ્ચિમાધિમુખઃ પૂજાં, જિનમૂતં: કરોતિ ચેત્ ॥

ચતુર્થસંતતિચ્છેદો, દક્ષિણસ્યામસંતતિઃ ॥૮૮॥

અર્થ:—જો કોઈ પશ્ચિમ દિશા તરફ મુખ કરીને જિન પ્રતિમાની પૂજા કરે, તો તેની સંતતિનો ચોથી પેઢીએ વિચ્છેદ થાય. અને દક્ષિણ દિશા તરફ મુખ રાખે તો સંતતિ વધેજ નહીં. (૮૮)

આગ્રેયા ચ યદા પૂજા ધનદાનેદિને દિને ॥

વાયવ્યા સતતિનૈવ, નૈઋત્યા ચ કુલસયઃ ॥૮૯॥

અર્થ — આગ્રેયા દિશામાં મુખ કરીને પૂજા કરે તો દિવસે દિવસે ધનની હાનિ થતી જાય, વાયવ્ય દિશામાં મુખ કરે તો સતતિ ન વાય અને નેઋત્ય દિશામાં મુખ કરે તો કુળનો ધન થાય (૮૯)

ઈશાન્યા કુર્વતાં પ્રજા, સમિધિતિનોપજાયતે ॥

અગ્નિજાતુકગાસેષુ, સન્નિ પૂજા યથાત્રયમ્ ॥૯૦॥

અર્થ — ઈશાન દિશામાં મુખ કરીને એસે તો પૂજા કરનારની સિધ્ધિ નાશી રહેતી નથી પણ કરનારે પ્રથમ બે પગોએ પછી અનુક્રમે બે જાતુએ, બે હાથે, બે ખભાએ અને મગતરે પૂજા ચલાવવી (૯૦)

શ્રીચંદ્રન મિના પ્રજા, નૈઋત્યાર્યા જિનોશ્રિતુઃ ॥

માતે કષ્ઠે હૃદયમોતે, ઉદરે તિલક ત્રયાત્ ॥૯૧॥

અર્થ — ચંદ્ર ચંદ્રન વગર જનપ્રતિમાની પૂજા કોઈ કાળેપણ કરવી નહીં કપાળ, કંઠ, હૃદય, ઉદર વિગેરે નવ સ્થાનમાં ૮૫૦ અનુક્રમે તિલક કરવું (૯૧)

નરમોસ્તિર્ગ્ગ પૂજા, કર્ણાયા નિરન્નરમ્ ॥

પ્રમાતે પ્રથમ ગાસ-પૂજા કાર્યા મિચિમર્ગે ॥૯૨॥

અર્થ — હમેશા નવ તિલક કરીને જિન પ્રતિમાની પૂજા કરવી વિધિના જાણ પુરુષોએ પ્રભાત કાળમાં પ્રથમ પાનપૂજા કરવી (૯૨)

મધ્યાહ્ને કુમુદેઃ પૂજા, સંધ્યાયાં ધૂપદીપતઃ ॥

અર્હતો દક્ષિણે ભાગે, દીપસ્યાથ નિવેશનમ્ ॥૧૩॥

અર્થ:—ખપોરે સુગંધી કુલોથી જિન પ્રતિમાની પૂજા કરવી. અને સંધ્યાકાળે ધૂપદીપથી પુજા કરવી. જિન પ્રતિમાની દક્ષિણે ખાલુએ દીવો રાખવાનું રથાનક કરવું. (૯૩)

વામાંશે ધૂપદહન—મઘે કૂરં તુ સંમુદ્દમ ॥

ધ્યાનં તુ દક્ષિણે ભાગે, ચૈત્યાનાં વન્દનં તથા ॥૧૪॥

અર્થ:—લગવાનની ડાળી ખાલુએ ધૂપધાણું મૂકવું. આગળ નૈવેદ્ય રાખવું, સામું ખેસી ધ્યાન કરવું, તથા ચૈત્યવંદન દક્ષિણે ભાગે કરવું. (૯૪)

ગન્ધધૂપાક્ષતૈઃ સદ્ધિઃ, પ્રદીપૈર્વાલિવાસિભિઃ ॥

શાન્તૌ શ્વેતં તથા પીતં, લાભે ધ્યાનં પરાભવે ॥૧૫॥

મદ્ગ્ધલાયે તથા રક્તં, પશ્ચવર્ણે તુ સિદ્ધયે ॥

પશ્ચામૃતે તથા શાન્તૌ, દીપઃ સ્યાન્ન ગુર્ઢૈર્ઘૃતૈઃ ॥૧૬॥

અર્થ:—સતપુરૂષોએ ચંદન, અક્ષત, ધૂપ, દીપ, બલિ અને જળ આ વસ્તુથી લગવાનની પૂજા કરવી. શ્વેત પુષ્પ (ધોણું ફૂલ) શાંતિકારક છે, પીતપુષ્પ (પીણું ફૂલ) લાભકારક છે, શ્યામપુષ્પ (કાણું ફૂલ) પરાભવ કરનારું છે, રક્તપુષ્પ (રાતું ફૂલ) મંગલિક છે, અને પંચવર્ણી ફૂલ સિદ્ધિદાયક છે. પંચામૃત પુજા અથવા શાંતિ હોય તો ગોળનો અને ઘીનો દીવો કરવો. (૯૫) (૯૬)

પદ્માસનસમાસીનો, નાસાગ્રન્યસ્તલોચનઃ ॥

મોની વસ્ત્રાવૃતાસ્યોઽય, પૂજા કુર્યાન્નિનેઞિતુઃ ॥૦૭॥

અર્થ —સત્પુરુષે પદ્માસને બેસી નામિકાના અગ્રભાગ ઉપર દષ્ટિ રાખી, મોન -હી, અને શુદ્ધ વસ્ત્રથી સુખઢોશ બાધી જિનેશ્વર મહારાજની પુજા કરવી (૬૭)

સ્નાન પૂર્વમુર્ચીભૂય, પ્રતીચ્યા ઢન્તધાવનમ ॥

ઉદીચ્યા શ્વેતવાસાસિ, પૂજા પૂર્વોત્તરામુર્યી ॥૧૮॥

અર્થ —પૂર્વ દિશાએ સુખ ડગીને સ્નાન કરવું, પશ્ચિમ દિશાએ સુખ કરીને દાતપુ કરવું, ઉત્તર દિશાએ સુખ કરીને શુદ્ધ વસ્ત્ર પહેરવા, અને પૂર્વ અથવા ઉત્તર દિશા તરફ સુખ કરીને દેવપુજા કરવી (૬૮)

(દંતિ પૂજાનિધિ.)

(અથ જપનિયઃ ।)

સકુળાદ્વિજને મલ્યઃ, સગ્રહ્યાન્મૌનરાઙ્ગુભઃ ॥

મૌનજાન્માનસઃ શ્રેષ્ઠો, જપઃ શ્લેષ ય. પર' પરઃ ॥૧૯॥

અર્થ —માણસના સમૂહમાં જપ કરવા કરતા એકા તમા કરવો પ્રગત છે જપના અક્ષર લોકોથી સલગાય એવા બોલવા તે કરતા મૌન રાખી ગણવા એ સારૂ તથા મૌન રાખી અક્ષર ગણવા તે કરતા મનમાજ મત્રાક્ષરની પંક્તિનુ અર્થમહિત ચિતવન કરવું એ ઉત્તમ છે ઉપર કહેલા ત્રણ પ્રકારના જપમાં પહેલા કરતા બીજો શ્રેષ્ઠ અને બીજા કરતા ત્રીજો શ્રેષ્ઠ બાપુવો (૬૯)

(અથ પ્રશ્નવિચારઃ)

પૂજાદ્રઞ્ચર્જિતોદ્ગ્રાહે, દુર્ગાદિસરિદાક્રમે ॥

ગમાગમે જીવિતે ચ, ગૃહક્ષેત્રાદિસંગ્રહે ॥૧૦૦॥

ક્રયવિક્રયણે વૃષ્ટૌ, સેવાક્રાપિવિષે જયે ॥

વિદ્યાપટ્ટાભિષેકાર્દો, શુભેર્ઘ્યં ચ શુભઃ શર્શો ॥૧૦૧॥

અર્થઃ—પૂજા કરવી, દ્રવ્ય કમાવું, વિવાહ કરવો, કિલ્લા ઉપર ચઢવું, નદી ઉતરવી, જવું, આવવું, જીવવું, ઘર, ક્ષેત્ર વિગેરે લેવું, કોઈ વસ્તુની ખરીદી અથવા વેચાણ કરવું, વૃષ્ટિ થવા માટે કોઈ પણ નતનો પ્રયત્ન કરવો, સેવા કરવી, ખેતી કરવી, વિવના સંબંધમાં કંઈ કામ કરવું, કોઈને જીતવું, વિદ્યાનો આરંભ કરવો, રાત્રિકેને પટ્ટાભિષેક કરવો, ઇત્યાદિ કાર્યમાં તથા કોઈપણ શુભ કાર્યમાં ચંદ્રનાડી શુભ નાણુવી. (૧૦૦) (૧૦૧)

અગ્રસ્થો વામ્નગો વાપિ, જ્ઞેયઃ સોમદિશિ સ્થિતઃ ॥

પૃષ્ઠસ્થો દક્ષિણસ્થશ્ચ, વિજ્ઞેયઃ સૂર્યભાગભાક્ ॥૧૦૨॥

અર્થઃ—આગળ અથવા ડાબે પડખે ઉભેલો માણસ ચંદ્ર દિશામાં નાણુવો, અને પછવાડે અથવા જમણી બાજુએ ઉભેલો સૂર્ય દિશામાં નાણુવો. (૧૦૨)

પ્રશ્ને પ્રારમ્ભણે વાપિ, કાર્યાણાં વામનાસિકા ॥

પૂર્ણા વાયોઃ પ્રવેશશ્ચે—તદા સિદ્ધિરસંશયમ્ ॥૧૦૩॥

અર્થઃ—કોઈ કાર્યનો પ્રશ્ન અથવા આરંભ કરતી વખતે ડાબી નાસીકામાં ને પૂર્ણ વાયુ ભરાય અર્થાત્ ને

નામદત્તં દ્વયોઃ પ્રશ્ને, જયઃજયવિદ્યો વદેત ॥

પુર્વોક્તસ્ય જયઃ પુર્ણે, પક્ષે ઠિક્તે પરસ્ય ચ ॥૧૦૭॥

અર્થઃ—સામસામા પદ્મવાળા એ મનુષ્યોનાં નામ લઇને તેમના જયપરાજયનો ઠોઠ પ્રશ્ન કરે તો પ્રશ્ન કરનાર માણસ જે બાબતુએ હિલો હોય, તે બાબતુનો આપણો સ્વર વહેતો હોય તો પહેલા જેનું નામ લીધું હોય તેનો જય કહેવો, અને તે બાબતુ ખાલી હોય તો પછવાડેથી જેનું નામ લીધું હોય તેનો જય કહેવો. (૧૦૭)

રોગિપ્રશ્ને ચ ગૃહ્ણિયા—ત્પૂર્વ જ્ઞાન્યભિધાં યદિ ॥

પશ્ચાદ્વ્યાધિમતો નામ, તર્જીવતિ સ નાન્યથા ॥૧૦૮॥

અર્થઃ—ઠોઠ રોગીના સંબંધમાં પ્રશ્ન કરે, અને તેમાં જે પ્રથમ જેને પ્રશ્ન કરવો હોય તે નિમિત્તીનું નામ લે, અને પછી રોગીનું નામ લે, તો રોગી જીવે, નહીં તો નહીં. (૧૦૮)

વદ્ધાનાં રોગિતાનાં ચ, પ્રશ્નપ્રશ્નનાં નિજાત્પદાત્ ॥

પ્રશ્ને શુદ્ધવિદ્યો વૈરિ-સંગમે સદ્સા મયે ॥૧૦૯॥

સ્નાને પાનેઽશ્ને નષ્ટા-ન્વેપે પુત્રાર્થમૈશ્વરે ॥

વિવાહે દારુણેઽર્થે ચ, સૂર્યનાહી પ્રશસ્યતે ॥ ૧૧૦ ॥

અર્થઃ—બંદીબાને પડેલા, રોગથી પીડાયેલા અને પોતાના અધિકારથી હ્રાપ્ત થયેલા એ ત્રણેમાં ગમે તેના સંબંધમાં પ્રશ્ન કરવો હોય, સંગ્રામ કરવો હોય, શત્રુની મુલાકાત લેવી હોય, અચાનક લય આવી પડ્યો હોય, નહાવું, બાવું, પીવું, જોએલી વસ્તુની શોધખોળ કરવી, પુત્ર પ્રાપ્તિને અર્થ

શ્રીમત કવો, વિવાહ કરવો અને ઠાપણ કરકર્મ કરવું
હોય તો સૂર્યનાડી મારી સમજવી (૧૦૯)

નાસાયા દક્ષિણાયા તુ, પૂર્ણાયામપિ વાયુના ॥

પ્રશ્નાઃ શુભસ્ય કાર્યમ્ય, નિષ્ફલાઃ સકલા અપિ ॥૧૧૧॥

અર્થ — જો પુછનારની દક્ષિણ નામિકા પુર્ણ વહેતી હોય
તો તે વળતે કહેલા શુભ કાર્યના સર્વ પ્રશ્નો નિષ્ફળ
જાણવા (૧૧૧)

[ઇતિ પ્રશ્નોપયોગી સ્વરનિચાર]

યથા શક્તિ તતશ્ચિન્ત્ય, તપો નિત્યં તદગ્રતઃ ॥

યસ્ય પ્રભાવતઃ સર્વાઃ, સંભવન્તિ વિભૂતયઃ ॥૧૧૨॥

અર્થ — પૂજા કરી રહ્યા પછી પોતાની શક્તિ માફક
કંઈ તપસ્યા કરવી હોય તો તેનો જિનપ્રતિમા આગળ વિચાર
કરવો કારણ, તપસ્યાના પ્રભાવથી સર્વ સપદાઓની પ્રાપ્તિ
થાય છે (૧૧૨)

ધર્મશોકમયાદાર-નિદ્રાકામકલ્પક્રુધઃ ॥

યાગન્માત્રા વિગાયન્તે, તાવન્માત્રા ભવન્ત્યમી ॥૧૧૩॥

અર્થ — ધર્મ, શોક, લય, આહાર, નિદ્રા, કામ કલહ
અને ક્રોધ એ આઠે વસ્તુ જેટલી વધારીએ તેટલી વધે છે,
અને જેટલી ઓછી કરીએ તેટલી ઓછી થાય છે (૧૧૩)

અપત્યોત્પાદને સ્વામિ-સેવાયા પોષ્યપોષણે ॥

ધર્મકૃત્યે ચ નો કર્તુ, યુજ્યન્તે પ્રતિહસ્તકાઃ ॥૧૧૪॥

અર્થ — આપણી શ્રીને વિષે પુત્ર ઉત્પન્ન કરવો, આપ

છા ધણીની સેવા કરવી, માળાપ બઠરાં છોકરાં વિગેરેનું પોપણ કરવું, ધર્મકૃત્ય કરવું, આ આર કાર્યોમાં પ્રતિહસ્તક (મુખત્યાર આલે નહીં). એ તો પોતેજ કરવાં યોગ્ય છે. (૧૧૪)

સંવૃતાઙ્ગઃ સમઙ્ગાયાં, પ્રાયઃ પૂર્વોત્તરાનનઃ ॥

સ્થિરાસને સમાસીત, સંવૃત્ય ચતુરોઽન્વળન ॥૧૧૫॥

અર્થઃ—ન્યાય સભામાં બેસવું હોય તો સારાં વસ્ત્ર પહેરવાં, અને સભામાં જઈ સ્થિર આસન ઉપર પ્રાયઃ પુર્વ તથા ઉત્તર દિશા તરફ મુખ કરી તથા વસ્ત્રનાં આરે છેડાં સમેટી બેસવું. (૧૧૫)

અશ્રમર્ણારિચૌરાદ્યા, વિપ્રદોષ્યાતિનોઽપિ ચ ॥

મૂન્યાઙ્ગે સ્વસ્ય કર્તવ્યાઃ, મુખલાભજયાર્થેભિઃ ॥૧૧૬॥

અર્થઃ—મુખ, લાલ તથા જયન્તા અર્થી પુરૂષોએ ન્યાય સભામાં પોતાના લેણદારને, શત્રુને, ચોરને, પોતાની ઉપર તોહમત મૂકનારને તથા ખીજા પણ એવા પુરૂષોને પોતાની શૂન્ય બાબતોએ એટલે જે -લાગની નાસિકા વહેતી ન હોય, બંધ પહેલી હોય તે ભાગે રાખવા. (૧૧૬)

સ્વજનસ્વામિગુર્વદ્યા, યે ચાન્યે હિતચિન્તકાઃ ॥

જીવાઙ્ગે તે શ્રુતં કાર્યા, વૌઙ્મ્યતાર્થે વિધિસ્તુભિઃ ॥૧૧૭॥

અર્થઃ—વાંછિત કાર્ય કરવા ધારનારા પુરૂષોએ પોતાના સ્વજનોને, સ્વામીને. ગુરૂને તથા ખીજા પણ જે આપણું હિત વાંછતા હોય તે -વે મનુષ્યોને આપણી જે તરફની નાસિકા પૂર્ણ વહેતી હોય, તે તરફ રાખવા. (૧૧૭)

આચાર્યાણા યતીના ચ, પण्डिताना कलामृताम् ॥

સમુત્પાદ્યઃ સદાનન્દઃ, કુલંજેન યયાયયમ્ ॥૧૧૮॥

અર્થ — કુલીન મનુષ્યે આચાર્યોને, આધુજોને, પંડિતોને તથા કલાવાન પુરોહોને યોગ્યતા પ્રમાણે આદરમાન આવી શકે શક્યતા [૧૧૮]

विशेषज्ञानमनुना, रुम्किाश्वशादृतम् ॥

નિત્યમેવ તનત્રિન્ત્યં, વુર્ધ્વશ્ચન્દ્રચ્છાદિકમ્ ॥૧૧૯॥

અર્થ — ભવિષ્યનું જે વિશેષ જ્ઞાન પુર્વે હતું તે હમણા કળિકાગના ભેરવી જતું જતું છે માટે કાશ્ચ પુરોહોએ ચંદ્રગત, તામ્રગત વિગેરેનો અસ્ત્ય હમેશા નિચાર કરવો ૧૧૯

न निमित्तद्विषा क्षेम, भापुंरग्रविदिषाम् ॥

ન ત્રીર્નીર્નિદિષામેક-મપિ વર્મદિષાં નહિ ॥૧૨૦॥

અર્થ — જ્યોતિષ, આશુદ્ધિક વિગેરે આઠ પ્રકારના નિમિત્તમાંથી જે દેવ કરે છે, તેનું કન્યાણુ થતું નથી, વેદિક જ્ઞાત્રનો દેવ કરે તે દીર્ઘ આયુષ્ય પામતો નથી, નીતિગ્રાત્રનો દેવ કરે તે લક્ષ્મી પામતો નથી, અને ધર્મનો દેવ કરે તે તો કન્યાણુ, દીર્ઘ આયુષ્ય અને લક્ષ્મી એ ત્રણેમાંથી એકે વસ્તુ પામતો નથી [૧૨૦]

निर्ममं गुर्न निद्रा, सारिषानार्जमंस्तम् ॥

જ્ઞાતાનિ શિષુન્યાનિ, ર્જનીશાનિ યન્તાઃ ॥૧૨૧॥

અર્થ — ખાસ વિના ખાલી પેટ દેખ્ય ત્યાં મનુષ્યોએ ઓળખ, નિદ્રા, યજ્ઞપાઠ અને લશ્કરનું મેળન એટલા વાનગી વર્જના શક્ય છે તેને વખતે જો નાખ્યા હ (૧૨૧)

મુક્રતાય ન તૃપ્નન્તિ, સન્તઃ સંતતમપ્યદો ॥

વિસ્મર્તવ્યા ન ધર્મસ્ય, સમુપાસ્તિસ્તતઃ કચિન્ ॥૧૨૨॥

અર્થઃ—સત્પુરૂષો હમેશાં સુદૃઢતાનાં કામો કરે તોપણ તે કામો કરવામાં ધરાના નથી. માટે ધર્મની સેવા કરવામાં કોઈ કાળે પણ ભૂલણું ન જોઈએ. [૧૨૨]

ધર્મસ્થાને તતો ગમ્યં, શ્રીમદ્भिः કૃતભૂषणः ॥

પ્રાક્પુણ્યં દર્શયતેऽન્યેષાં, સ્વયં નવ્યં હ્યુપાર્જયતે ॥૧૨૩॥

અર્થઃ—માટે સુખી પુરૂષોએ પણ સારાં વસ્ત્ર તથા આભૂષણ પહેરીને મંદિર, ઉપાશ્રય વિગેરે ધર્મને સ્થાનકે જવું. એમ કરવાથી પોતાનું પૂર્વલવણું પુણ્ય લક્ષ્મીના દર્શન થી ખીન્ન લોકોની નજરે આવે છે, અને પોતે નવું પુણ્ય પણ ઉપાર્જન કરે છે. (૧૨૩)

નિત્યં દેવગુરુસ્થાને, ગન્તવ્યં પૂર્ણપાણિभिः ॥

વિધેયસ્તત્ર ચાપૂર્વ-જ્ઞાનાભ્યાસો વિવેકિभिઃ ॥૧૨૪॥

અર્થઃ—હાથમાં ફળ, પુલ, ચોખ્ખા વિગેરે કંઈપણ વસ્તુ લઈને હમેશાં મંદિરે અને ઉપાશ્રયે જવું. ઉપાશ્રયમાં શુદ્ધ પાણે જે જ્ઞાન આવડતું ન હોય તે જ્ઞાનનો વિવેકી પુરૂષોએ અભ્યાસ કરવો. (૧૨૪)

આજન્મ ગુરુદેવાના-મર્ચનં યુજ્યતે સતામ્ ॥

રોગાદિભિઃ પુનર્ન સ્યા-ચદિ તન્નૈવ દોષકૃત્ ॥૧૨૫॥

અર્થઃ—આ મનુષ્યલવ છે ત્યાં સુધી સત્પુરૂષોને દેવ પૂજા અને શુદ્ધલક્ષિ હમેશાં કરવી ઉચિત છે. પણ રોગાદિ શરણોથી તેમ ન અને તો કંઈ દોષ નથી. (૧૨૫)

કુપવૃત્તિ ત્રિયા ત્યક્ત્વા, દત્ત્વા તિસ્રઃ પ્રદક્ષિણાઃ ॥

દેવસ્યાર્ચા ત્રિયા કૃત્વા, ત યાયેત્સિદ્ધિદં સુત્રીઃ ॥૧૨૬॥

અર્થ — ભગવાનને મનથી, વચનથી તથા કાયાથી કુપવૃત્તિનો ત્યાગ કરી જિનપ્રતિમાને ત્રણ પ્રદક્ષિણા દેવી અને પછી જિનપ્રતિમાની મનવચનકાયાથી પૂજા કરવી અને નિદ્ધિધાયક અરિહંત ભગવાનનું ધ્યાન કરવું (૧૨૬)

મિવ્યાટ્ટપ્તિભિરગ્રાપ્તો, વિશ્વાતિગયમાસુરઃ ॥

નિઃસસાગવિકારશ્ચ, યો દેવઃ સ સતા મતઃ ॥૧૨૭॥

અર્થ — નાગ્નિક લોકોને જેનું જ્ઞાન થાય નહીં, તે અર્થ અતિગ્રથેથી વિરાજમાન છે અને સમારૂપ મગ જેને મીઠાકુલ છે નહિ, એવા દેવ મત્પુરુષોને માન્ય છે (૧૨૭)

(અથ પ્રતિમાધિકાર.)

ઉપરિષ્ઠમ્ય દેવમ્યો-ર્સ્ય વા પ્રતિમા મયેત્ ॥

દ્વિવિધાપિ શુભામ્યા, પર્યટ્કાસનગાદિમા ॥૧૨૮॥

અર્થ — ભગવાનની બેઠી અથવા ઉભી બને પ્રકારની પ્રતિમા યોગ્ય અનુદયામાન હોવી જોઈએ તેમા પહેલી (બેઠી) પ્રતિમા પર્યટકાસનવાળી હોવી જોઈએ (૧૨૮)

વામો દક્ષિણજઘ્નોર્થો-સ્પર્યદ્ધિ કતોઽપિ ચ ॥

દક્ષિણો રામજઘ્નોર્થો-ન્નસ્પર્યદ્ધામન મત્મ્ ॥૧૨૯॥

અર્થ — પ્રાથમ જમણી જાણ અને જમણા આવળ ઉપર ડાબો પાડવો અને ડાબો ડાબા ધ્યાપન કરવો, પછી ડાબી

જાંધ અને રાખા સાથળ ઉપર જમણો પગ અને જમણે-
હાથ મૂકવો. એને જાણુ પુરૂષો પર્યંકાસન કહે છે. (૧૨૯)

देवस्योर्ध्वस्य चार्चा स्या—उज्जानुन्म्विभुजद्वया ॥

श्रीवत्सोष्णीपयुक्ते द्वे, छत्रादिपरिवारिते ॥? ૩૦॥

અર્થ:—ભગવાનની પ્રતિમા ઉભી હોય તો તેના બે
ભુજ હીંચણ સુધી લાંબા બેઠએ. જાંને પ્રતિમાઓ શ્રીવત્સ,
ઉપશીપ, ત્રણ છત્ર ઇત્યાદિ પરિવાર, યુક્ત બેઠએ. (૧૩૦)

छत्रत्रयं च नामग्रांतारि सर्वोत्तमं भवेत् ॥

नासामालान्तयोर्मध्ये, कपोलवेधकृत्पुनः ॥? ૩૧॥

અર્થ:—નામિકાના અથ્રભાગ ઉપર ત્રણ છત્રના અથ્ર
ભાગની સમરેખા આવે તો તે ત્રણ છત્ર સર્વોત્તમ જાણવાં.
તેમજ નામિકા અને કપાળ એના મધ્યભાગમાં આડી રેખા
થી કપોલનો વેધ થવો બેઠએ. (૧૩૧)

राक्षितव्यः परीक्षारे, दृष्टदां वर्णसंकरः ॥

न समाङ्गुलसंख्येष्टा, प्रतिमा मानकर्मणि ॥? ૩૨॥

અર્થ:—પ્રતિમાના પરિવારમાં પત્થરનો વર્ણસંકર થાય
તેની સંભાળ રાખવી. તેમજ પ્રતિમાનું પ્રમાણ પણ બે,
ચાર, છ, આઠ ઇત્યાદિ સમસંખ્યામાં હોય તો તે ઇષ્ટ ન
જાણવું. (૧૩૨)

अन्योन्यजानुरकन्धान्त—रितर्यवसूत्रनिपातनात् ॥

केशान्ताञ्चलयोद्यान्तः, सूत्रैक्याच्चतुरस्रता ॥? ૩૩॥

અર્થ — એકથી બીજા દીગણ સુધી આડું એક સૂત્ર,
જમણા દીગણથી ડાબા બધ સુધી બીજું સૂત્ર, ડાબા
દીગણથી જમણા બધ સુધી ત્રીજું સૂત્ર અને નીચેથી
મસ્તક સુધી ચોથું સૂત્ર એ ચારે સૂત્રોનું પ્રમાણ ચરણ
આવે તે પ્રતિમા મમચતુરસ કહેવાય (૧૩૩)

સૂત્ર જાનુદ્વયે તિર્ણ, દયાનામૌ ચ કમ્બિકામ્ ॥

પ્રતિપાયાઃ પ્રતિસરો, ભવેદષ્ટાદશાદુલઃ ॥૧૩૪॥

અર્થ — બે દીગણની વચ્ચે આડું મૂત્ર હેવું, અને સૂત્ર-
વી નાલિ સુધી એક કળિત રાખવી એ રીતે કરતા નાલિથી
મૂત્ર સુધી અઢાર આગળનું પ્રમાણ જોઈએ (૧૩૪)

નવતાલ ભેદપ, તાલચ દ્વાદશાદુલઃ ॥

અદુલ્લાનિ ન કમ્પાયા, કિં તુ રૂપસ્ય તસ્ય હિ ॥૧૩૫॥

અર્થ — પ્રતિમાનું ઊંચાઈનું પ્રમાણ નવતાલ જણવું.
બાર આગળનો એક તાલ ધાવ છે અહીં આગળના કળાના
ન લેતા પ્રતિમાના લેવા (૧૩૫)

ઋગ્વિષ્ણુપ્રતિમામાન-મર્ષાત્તરજતાગતઃ ॥

આસીનપ્રતિમામાન, પદ્મચ્ચાસદ્વિભાગતઃ ॥૧૩૬॥

અર્થ — ઉભી પ્રતિમાનું પ્રમાણ એકનો આઠ અંશનું
અને બેઠી પ્રતિમાનું હપ્પન અંશનું જણવું (૧૩૬)

માલ્લાસાહનુગ્રીવા-લક્ષ્મીગુરમુર્ત્કૌ ॥

જાનુનદ્વાધિ ચેત્યેકા-દગ્રાહસ્થાનકાનિ તુ ॥૧૩૭॥

અર્થ:—૧ કપાળ, ૨ નાસિકા, ૩ હૃડયચી, ૪ ગળું, ૫ હૃદય, ૬ નાભી, ૭ ગુહ્ય, ૮ સાથળ, ૯ ઠીંચણ, ૧૦ લંઘ (પેઠાં) અને ૧૧ પગ એ અંશનાં અગ્યાર સ્થાનક લાણવાં. (૧૩૭)

ચતુઃપદ્મચતુર્વદ્ધિ—મૂર્યાર્કાર્કજિનાવ્યયઃ ॥

જિનાવ્યયથ માનાઙ્ગા, ઝર્વા ઝર્વસ્વરૂપકે ॥૧૩૮॥

અર્થ:—કપાળે ચાર અંશ, નાસિકાએ પાંચ અંશ, હૃડયચીએ ચાર, ઢોટે ત્રણ, હૃદયે બાર, નાભીએ બાર, ગુહ્યને વિષે બાર, સાથળે ચોવીશ, ઠીંચણે ચાર, લંઘને વિષે ચોવીશ અને પગે ચાર. એવા ઉભી પ્રતિમાનાં એકસો આઠ અંશ ઊંચાઈના લાણવાં. (૧૩૮)

માલનાસાહનુગ્રીવા—હૃન્નાર્મીગુહ્યજાનુચ ॥

અપ્તાવાસીનવિમ્વસ્યા—ઙ્ગાનાં સ્થાનાનિ પૂર્વવત્ ॥૧૩૯॥

અર્થ:—કપાળે ચાર, નાસિકાએ પાંચ, હૃડયચીએ ચાર, ઢોટે ત્રણ, હૃદયે બાર, નાભીએ બાર, ગુહ્યને વિષે બાર અને ઠીંચણે ચાર. એવાં બેઠી મૂર્તિનાં આઠ સ્થાનક અને છપ્પન અંશ છે. (૧૩૯)

અતીતાન્દશતં યત્સ્યા—ચચ સ્થાપિતમુત્તમૈઃ ॥

તદ્વચ્છમપિ પૂજ્યં સ્યા—દ્વિમ્વં, તન્નિઃફલં ન હિ ॥૧૪૦॥

અર્થ:—જેની પ્રતિષ્ઠા સો વર્ષ પહેલાં થઈ હોય, અથવા જે ઢોઠ ઉત્તમ આચાર્યે સ્થાપિત હોય, તે જિનપ્રતિમા વ્યંગ હોય તો પણ પૂજા કરવા યોગ્ય છેજ. કારણ કે, તેની પૂજા નિઃફલ થાય નહિ. (૧૪૦)

ધાતુલેપાદિજં વિમ્બં, વ્યક્ત સંસ્કારમર્હતિ ॥

કાષ્ટપાપાણનિપ્પન્ન, સંસ્કારાર્હ પુનર્નદિ ॥૧૮૧॥

અર્થ — ધાતુની, લેપની અથવા ણીજી એવી પ્રતિમા કદાચિત્ ખડિત થાય તો તે પાછી સમરાવી શકાય છે, પણ કાષ્ટની અથવા પાપાણની પ્રતિમા હોય તો તે સમરા વધા લાયક નથી (૧૪૧)

નસ્વાદ્ગુલીનાદનાસા-ગ્રીણા મદ્ગેષ્વનુન્નમાત્ ॥

શતુર્મીર્દેશમદ્ગશ્ચ, વન્નઃ કુલચનક્ષયઃ ॥૧૮૨॥

અર્થ — પ્રતિમાના નખ ખડિત થાય તો ગતુથી લય, આગળી ખડિત થાય તો દેશલગ, ગાદુ ખડિત થાય તો ષધન, નામિકા ખડિત થાય તો કુળક્ષય અને પગ ખડિત થાય તો ધનહાનિ એવા અનુક્રમે કુળ બાણુવા (૧૪૨)

પીઠગનપર્ગાર-ચંસે સતિ યથાક્રમમ્ ॥

સ્તાનચાહનમૃત્યાના, નાગો ભવતિ નિશ્ચિતમ્ ॥૧૮૩॥

અર્થ — પ્રતિમાનુ બિહામન ખડિત થાય તો સ્થાનનો નાગ, એમવાના વાહન ખડિત થાય તો (હાથી, ઘોડા વિગેરે) વાહનનો નાગ અને પ્રતિમાનો પરિવાર ખડિત થાય તો આઠનો નાગ બાણુવો (૧૪૩)

આરમ્ભ્યકાદ્ગુલ્હિમ્વા-ચામ્દેકાદગાદ્ગુલ્હમ્ ॥

ગૃહેષુ પૂજયોદ્દિમ્વ-મ્ ચ પ્રાસાદગં પુનઃ ॥૧૮૪॥

અર્થ — એક આગળથી અગ્યા આગળ સુધી ઉંચી પ્રતિમા ઘરમા પૂજવી પણ તે કરતાં ફેરી હોય તો તે મહિરમા ગાળીનેજ પૂજવી લેધયે (૧૮૪)

પ્રતિમા કાષ્ટલેપાદ્ય-દન્તચિત્રાયસાં ગૃહે ॥

માનાધિકા પરીવાર-રહિતા નૈવ પૂજ્યતે ॥૧૪૬॥

અર્થ:—કાષ્ટની, લેપની, પત્થરની, દાંતની, ચિત્રામણુની અથવા લોહાની પ્રતિમા અથવા અગ્યાર આંગણ કરતાં વધારે હોય, કિંવા પરીવારરહિત હોય તો તે પણ ધરમાં પુજાય નહીં. (૧૪૫)

રાંદ્રા નિહન્તિ કર્તાર—માધિકાઙ્ગા તુ શિલ્પિનમ્ ॥

કૃશા દ્રવ્યવિનાશાય, દુર્મિલ્લાય શશોદરા ॥૧૪૬॥

વક્રનાસાંતિદુઃસ્વાય, દુસ્સાઙ્ગા ક્ષયકારિણી ॥

અનેત્રા નેત્રનાશાય, સ્વલ્પાસ્યા ભોગવર્જિતા ॥૧૪૭॥

જાયતે પ્રતિમા દીનકટિ-રાચરિયાતિની ॥

જઙ્ગાદીના ભવેદ્રાતૃ-પુત્રમિત્રવિનાશિની ॥૧૪૮॥

પાણિપાદવિહીના તુ, ધનક્ષયવિનાશિની ॥

ચિરપર્યુષિતા યા તુ, નાદર્શવ્યા યતસ્તતઃ ॥૧૪૯॥

અર્થ:—જિન પ્રતિમા ઉઘ હોય તો તે પોતાના કરાવનારનો નાશ કરે છે, અધિક અંગવાળી હોય તો કારિગરનો નાશ કરે છે, કૃશ હોય તો દ્રવ્યનો નાશ થાય છે, અને સસલા જેવા ઉદરની હોય તો દુર્લિક્ષ્ણે ઉત્પન્ન કરનારી થાય છે. વાંકા નાકની હોય તો ઘણું દુઃખ ઉપજાવે છે, ટુંકા અવયવની હોય તો ક્ષય કરનારી થાય છે, ચક્ર વિનાની હોય તો ચક્રનો નાશ કરે છે, સાંકડા મુખની હોય તો ભોગવર્જિત હોય છે, નાની કેડની કે કેડ વિનાની હોય તો આચાર્યનો નાશ કરે છે, નાની જાંઘની અથવા જંઘાર-

હિત હોય તો લાઈ, પુત્ર અને મિત્ર એમનો નાશ કરે છે,
દુઃખ હોય પગની અથવા હાથ પગ વિનાની હોય તો
ધનનો શય કરે છે, પૂજા વગર ઘણો જાળ એમને એમ
પટેલી પ્રતિમા ત્યા ત્યાથી ગ્રહણ કરવી નહીં (૧૪૬)
(૧૪૭) (૧૪૮) (૧૪૯)

અર્થહત્તમતિમોક્તાના, ચિન્તાદેતુર્યોમુર્ખી ॥

આધિપદા તિરસ્વીના, નીચોચસ્યા ત્રિદેશદા ॥ ૧૫૦ ॥

અર્થ — પ્રતિમા ચત્તી હોય તો દ્રવ્યનો નાશ કરનારી
વાય છે, નીચા મુખની હોય તો ચિત્તા ઉત્પન્ન કરાવનારી
તલજીવી, વાકી હોય તો મનમા દુઃખાદિ ઉપજાવે અને નીચી
ઉંચી હોય તો પગદેશ મોકલનારી ચમત્કવી (૧૫૦)

અન્યાયદ્રવ્યનિષ્પન્ના, પન્નામ્નુદભેદ્યા ॥

દીનામિતાદ્ધી પ્રતિમા, સ્વર્ગોન્નતિનાશિની ॥ ૧૫૧ ॥

અર્થ — પ્રતિમા એ અન્યાયથી ઉપાર્જેલુ દ્રવ્ય વાપરી
કરેલી હોય, ખીન્ત હોઈએ વગ્દાર આપેલા પત્થરની
બનાવેલી હોય, અથવા ચોખ્ખા કિંવા અધિક અવયવની હોય
તો તે (પ્રતિમા), પૂનરુદ્ધિથી ધનારી પોતાની ઉન્નતિનો અને
પ્રતિષ્ઠા કરનાર ધારીને ઇષ્ટ વસ્તુની પ્રાપ્તિથી ધનારી ઉન્નતિ-
નો પણ નાશ કરે છે (૧૫૧)

પ્રામાદર્તુયભાગમ્પ, સમાના પ્રતિમા મત્તા ॥

દનપાપકૃતે સા તુ. કાર્યવૈનાધિદાહુત્ત ॥ ૧૫૨ ॥

અર્થ — પ્રામાદના ચોધા બાગ જેટલી પ્રતિમા કંપી.
પણ ઉત્તમ લાલ પ્રાપ્તિને અર્થે તે ચોધા બાનમા એક
આતુર ચોધી અથવા વધારે ઠંડી. (૧૫૨)

અથવા સ્વદર્શન, હૃદયસ્થાપ્યધિકસ્ય વા ॥

કાર્યા પ્રાસાદપાદસ્ય, ગિલ્પિભિઃ પ્રતિમા સમા ॥ ૧૫૩ ॥

અર્થ:—અથવા પ્રાસાદના ચોથા લાગનાં દશ લાગ કરવાં, અને તે દશિયો એક લાગ પ્રાસાદના ચોથા લાગમાં જોડો કરી અથવા તેમાં એક દશિયો લાગ હમેરી તેટલા પ્રમાણની પ્રતિમા કારિગરોએ કરવી. (૧૫૩)

સર્વેષામપિ ધાતૂનાં, રત્નસ્ફટિકયોરપિ ॥

પ્રવાલસ્ય ચ વિશ્વેષુ, ચૈત્યમાનં ચદ્વચ્છયા ॥ ૧૫૪ ॥

અર્થ:—સર્વે ધાતુઓની, રત્નની, સ્ફટિકની અથવા પ્રવાલની પ્રતિમા હોય તે ત્યાં પ્રતિમાના પ્રમાણ ઉપર પ્રાસાદનું પ્રમાણ ન લેતાં ઇચ્છા માફક લેવું. (૧૫૪)

પ્રાસાદગર્ભગેહાદે, મિત્તિતઃ પશ્ચથા કૃતે ॥

ચક્ષાત્રાઃ પ્રથમે ભાગે, દેવ્યઃ સર્વા દ્વિતીયકે ॥ ૧૫૫ ॥

જિનાર્કસ્કન્દકૃષ્ણાનાં, પ્રતિમાઃ સ્યુસ્તૃતીયકે ॥

બ્રહ્મા તુ તુર્યભાગે સ્યા-હિઙ્ગમીશસ્ય પશ્ચમે ॥ ૧૫૬ ॥

અર્થ:—ગણારાના અર્ધલાગના પાંચ લાગ ભિત્તિથી કરવાં. તેમાં પ્રથમ લાગમાં ચક્ષાદિકની સ્થાપના કરવી, બીજા લાગમાં સર્વે દેવીઓની સ્થાપના કરવી, ત્રીજા લાગમાં જિન, સૂર્ય, કાર્તિકેય તથા કૃષ્ણ એમની પ્રતિમા સ્થાપના કરવી, ચોથા લાગમાં બ્રહ્માની પ્રતિમા અને પાંચમા લાગમાં શિવલિંગની પ્રતિમા રાખવી. (૧૫૫) (૧૫૬)

ઊર્ધ્વદગ્ધવ્યનાશાય, તિર્યગ્દ્યભોગહાનયે ॥

દુઃસ્વદા સ્તબ્ધહાષ્ટિશ્ચ-ધોમુખી કુલનશિની ॥ ૧૫૭ ॥

અર્થ — પ્રતિમાની હાથી ઉચી હોય તો દ્રવ્યનો નાગ કરે, તિરછી હોય તો ભોગનો નાગ કરે, સ્તંભ દૃષ્ટિ હોય તો દુષ્ટ આપે અને નીચી દૃષ્ટિ હોય તો કુળનો નાગ કરે (૧૫૭)

દ્વારશાસ્ત્રાપ્તિર્ભાગ—રત્નપદ્માદિર્નિયતે ॥

મુક્તિપાપવિભાગ ચ, યો ભાગઃ સસમઃ પુનઃ ॥૧૫૮॥

તસ્યાપિ સપ્તમે ભાગે, ગજાગસ્તત્ર સંખ્યેત્ ॥

પ્રાસાદે પ્રતિમાદૃષ્ટિ—નિયોજ્યા તત્ર શિલ્પિભિઃ ॥૧૫૯॥

અર્થ — નામા દ્વારની ગાખાના નીચેથી આઠ ભાગ કરવા. તેમા જે આઠમો ભાગ બધા કરતા ઉપર આવેલો તે મૂર્તિ હોય અને તેની નીચેનો જે માત્રો ભાગ તેના પાછા નીચેથી માત્ર ભાગ કરવા તથા તે માનમાના છ ભાગ મૂર્તિ હોય, અને ઉપરનો જે માત્રો ભાગ રહેલો, તેમા ગન્તશ (અષ્ટભાગ) મળે છે તે ગન્તગનેવિષે દારીગદાએ પ્રાસાદની અદૃશ્ય ગેટ્ટી પ્રતિમાની દૃષ્ટિ સખવી (૫૮) (૧૫૯)

(અથ મૂર્તિપરીક્ષા ।)

અટ્ટતા મૂર્તિમૂદ્રા, ચતુરસ્ત્રા શુભાકૃતિઃ ॥

અદર્શજોદ્ગમા ધન્યા, પૂર્વેગાનોત્તરક્રુરા ॥૧૬૦॥

અર્થ — જે ઠેકાણે મહિં બાધવુ હોય તે ભૂમિ ગ્રેષ્ઠ આકારની તથા દિશાનો પ્રમુખ ક્ષેત્ર કરનારી નદી નોંધવો પણ ચતુષ્કાલ (ચોખડી) સારા આકારની, વાવેલા ધાન્યને ત્રણ દિવસમા ઘાડનાગી અને પુર્વ, ઉત્તર અથવા ઇશાન દિશા તરફ ઉતરતી એવી હોય તો તે શ્રેષ્ઠ જાણવી (૧૬૦)

વ્યાધિં વર્ત્માકિનીં નૈઃસ્વ્યં, મૃપિરા સ્ફુટિતા મૃતિમ્ ॥

દત્તે ભૂઃ શલ્યયુગ્ધુઃસ્વં, શલ્યજ્ઞાનમથેચ્યતે ॥૧૬૧॥

અર્થ:—રાક્ષા (ખાંખલા) વાળી ભૂમિ વ્યાધિ ઉપન્ન કરે છે, પોલાણવાળી હોય તો દરિદ્રપાત્રું ઉપન્નવે, કાટેલી હોય તો મરણ દેનારી છે, અને શલ્યવાળી હોય તો દુઃખ આપે છે. માટે ભૂમિની અંદર રહેલું શલ્ય શી રીતે નાણુવું તે કહે છે. (૧૬૧)

(અથ શલ્યવિચાર: ।)

વક્તૃત્વેહસપયાન્, ક્રમાદ્વર્ણાનિમાન્નવ ॥

નવકોઠીકૃતે ભૂમિ—ભાગે પ્રાચ્યાદિતો લિખેત્ ॥૧૬૨॥

અર્થ:—ભૂમિ ઉપર એક ચતુષ્કોણ શલ્યોદ્ધારચત્ર [ચોખંડું] ચત્ર લખવું. તેમાં નવ કોઠા કરવા. ચતુષ્કોણની બાહ્ય ઉપર પૂર્વથી માંડી ઇશાન સુધી આઠે દિશાએ લખવી. અને વચલા નવ કોઠામાં અનુક્રમે ખ, ક, વ, ત, એ, હ, સ, પ અને ચ આ નવ અક્ષર લખવાં (૧૬૨)

ઇ.	પૂર્વ.	અ.
	પ ખ ક	
કિ.	સ ય વ	દ.
	હ એ ત	
ચી	પ.	નૈ.

પ્રશ્ને વઃ સ્યાદિ પ્રાચ્યાં, નરશલ્યં તદાદિશેત્ ॥

સાર્થહસ્તપ્રમાણેન, તત્ત્વ માનુષમૃત્યવે ॥ ૧૬૩ ॥

અર્થ:—પ્રશ્નમાં જો 'ખ' આવે, તો કહેવું કે પુર્વ દિશામાં ભૂમિની અંદર દોઢ હાથ નીચે મનુષ્ય શલ્ય (માણુ સનાં હાડકાં વિગેરે) છે, તેથી મનુષ્યનું મરણ નીપજે (૧૬૩)

અગ્નેર્દિશિ તુ કઃ પ્રશ્ને, સ્વરશલ્યં કરદ્વયે ॥

રાજદ્વંડો ભવેત્તસ્મિન્, ભયં નૈવ નિવર્તતે ॥૧૬૪॥

અર્થ — પ્રશ્નમા જો 'ક' આવે તો અગ્નિકોણમા ભૂમિની અદર જો હાથ નીચે ગર્દભશબ્દ (ગર્દભના હાડકા વિગેરે) છે, એમ જાણવું તે શક્યથી સમજાવવા થાય, અને ભય કદીપણ દૂર થાય નહીં (૧૬૪)

યામ્યાયા દિગિ વઃ પ્રશ્ને, નરજલ્યમગ્નિ મયેત્ ॥

તદ્ગૃહસ્વામિનો મૃત્યુઃ, કરોત્યાકાટિમંચિતમ્ ॥૧૬૫॥

અર્થ — પ્રશ્નમા જો 'વ' આવે તો દક્ષિણ દિશામા ભૂમિની અદર દેડ જેટલું ઉંડું મનુષ્યશબ્દ (માણસના હાડકા વિગેરે) છે, એમ સમજવું તેથી ગૃહસ્વામિનું (ધરણીનું) મરણ થાય (૧૬૫)

નૈઋત્યા દિગિ તઃ પ્રશ્ને, સાર્વસ્તાદ્યસ્તથે ॥

શુનોઽસ્થિ જાયતે તન્ન, ટિમ્બાના જનયેન્મૃતિમ્ ॥૧૬૬॥

અર્થ — પ્રશ્નમા જો 'ત' આવે, તો નૈઋત્ય દિશામા ભૂમિની અદર દોઢ હાથ નીચે શ્વશબ્દ (કુતરાના હાડકા વિગેરે) છે એમ જાણવું તે શક્ય બાળકોનું મરણ ઉપજાવે. (૧૬૬)

અથ પ્રશ્ને પશ્ચિમાયા ન, ગિગોઃ જન્ય મજાયતે ॥

સાર્વસ્ત્વે પ્રાસાય, મદનસ્વામિન પુનઃ ॥૧૬૭॥

અર્થ — પ્રશ્નમા જો 'એ' આવે, તો પશ્ચિમ દિશામા ભૂમિની અદર દોઢ હાથ નીચે બાલશબ્દ [બાલકના હાડકા વિગેરે] છે, એમ સમજવું. તેથી ગૃહસ્વામી [ધરણી] પરદેશ જતો રહે. (૧૬૭)

વાયવ્યાં દિશિ ઠઃ પ્રશ્ને, નરાઙ્ગારાશ્વતુઃકરે ॥

કુર્વન્તિ મિત્રનાશં તે, દુઃસ્વપ્નસ્ય પ્રદર્શનાત્ ॥ ૧૬૮ ॥

અર્થ:— પ્રશ્નમાં જો 'હુ' આવે તો વાયવ્ય દિશામાં ભૂમિની અંદર ચાર હાથ નીચે માણસના અંગારા છે, એમ જાણવું. તેથી માદાં સ્વપ્ન જોવામાં આવ્યાથી મિત્રનો નાશ થાય. [૧૬૮]

ઉદીચ્યાં દિશિ સઃ પ્રશ્ને, વિપ્રશલ્યં કટરથઃ ॥

તચ્છીઘ્રં નિર્ધનત્વાય, પ્રાયો ધનવતોઽપ્યદઃ ॥ ૧૬૯ ॥

અર્થ:— જો પ્રશ્નમાં 'સ' આવે, તો ઉત્તર દિશામાં ભૂમિની અંદર ડેડ જેટલું ઉંડું વિપ્રશલ્ય (ગ્રાહણનાં હાડકાં) છે એમ જાણવું. તેથી ગૃહસ્વામિ ધનવાન હોય તો પણ પ્રાયે નિર્ધન થઈ જાય. (૧૬૯)

પૈશાન્યાં દિશિ પઃ પ્રશ્ને ગોશલ્યં સાર્ધહસ્તતઃ ॥

તદ્ગોધનસ્ય નાશાય, જાયતે ગૃહમેધિનામ્ ॥ ૧૭૦ ॥

અર્થ:— જો પ્રશ્નમાં 'પ' આવે, તો ઈશાન દિશામાં ભૂમિની અંદર દોડ હાથ નીચે ગોશલ્ય [ગાયનાં હાડકાં વિગેરે] છે, એમ જાણવું. તેથી ગૃહસ્વામિના ગોધનનો (ગાય વિગેરેનો) નાશ થાય. (૧૭૦)

મધ્યકોષ્ટે ચ યઃ પ્રશ્ને, વસોપાત્રે તદા જ્યથઃ ॥

કેશાઃ કપાલં મર્ત્યસ્ય, મસ્મલોહે ચ મૃત્યવે ॥ ૧૭૧ ॥

અર્થ:— વચલા કોણમાં 'ય' છે તે જો પ્રશ્નમાં આવે તો ભૂમિના મધ્ય ભાગમાં છાતી જેટલા ઉંડાણમાં માણસ

ના ડેગ (વાળ), કપાળ (ખોપરી), લગ્ન તથા લોહુ છે એમ જાણવું તેથી મરણ નીપજે (૧૭૧).

શ્વન્નસ્થિતામમૃતપાત્રે, કૃતે દીપચતુષ્ટયે ॥

યદિન્દ્રીપશ્ચિર દીપ્તિઃ સા તદ્દર્શસ્ય મૃઃ શુભા ॥૧૭૨॥

અર્થ — ખાણની કાચી માટીનું ડોડિયું કરી તેમાં ચાગ દિવા વગવા જે દિશાનો દિવો ઘણીવાર પ્રકાશિત રહે, તે ભૂમિ તે વર્ણને સારી જાણવી (૧૭૨)

સૂત્રચ્છેદે ચ મૃત્યુઃ સ્યા—ત્કીલે ચાવાચ્છુલે રજા

સ્મૃતિર્નશ્યતિ કુમ્ભસ્ય, પુનઃ પતનમદ્ભયોઃ ॥૧૭૩॥

અર્થ — ભૂમિ માપતા સૂત્ર તૂટી જાય તો ગૃહસ્થામિ મગી જાય, ખીલો ઠોકતા જે વાકો વળે તો રાગ થાય, અને ઘરો પડે, અવવા ભાગે તો સ્મૃતિનો નાશ થાય [૧૭૩]

પ્રાસાદગર્ગાપ્સોઽમ્બુ-ગ્રામર્કર્કરકાગતઃ ॥

વિવિન્ના તત્ર સૌવર્ણી વાસ્તુમૃતિ નિયોજયેત્ ॥૧૭૪॥

અર્થ — ઘઠની ખાડ પૂરતા જ્યાં પાણી, પથ્થર અને વાકગ નીકળે ત્યાં મોનાની વાસ્તુ દેવતાની મૃતિ વિધિથી સ્થાપન કરવી (૧૭૪)

ઉદયસ્ત્રિગુણઃ પ્રોક્તઃ પ્રાસાદસ્ય સ્વમાનતઃ ॥

પ્રાસાદોન્નૃપમિન્નારા જગતી તસ્ય ચોત્તમા ॥૧૭૫॥

અર્થ — સ્વદીય પ્રમાણથી પ્રામાદનો ઉદય [ઉચ્ચાઈ] ત્રણ ગણો કર્યો અને પ્રામાદની નેટથી ઉચ્ચાઈ હોય તેટલી પ્રિતાપાગી જગતી (કાટ) કરવી એ શ્રેષ્ઠ છે [૧૭૫]

મૂલકોષ્ઠે ચતુઃકોણે વહિર્યઃ કુમ્ભકઃ સ્થિરઃ ॥

પ્રાસાદહસ્તસંખ્યાનં તસ્ય કોણદ્વયાત્પુનઃ ॥૧૭૬॥

અર્થઃ—ચોખંડો જે મૂળ કોઠો તેની બાહાર જે સ્થિર કુંભી હોય છે, તેના બે ખુણાથી પ્રાસાદના હસ્તની સંખ્યા જાણવી. [૧૭૬]

યઃ કોણો મૂલરેખાયા વિસ્તરસ્તત્પૃથૃત્વતઃ ॥

કલશે વિસ્તરાદૈર્ઘ્યં પાદોનં દ્વિગુણં પુનઃ ॥૧૭૭॥

અર્થઃ—મૂળ રેખાના ખૂણામાં જેટલી પહોળાઈ હોય તેને અનુસરી કળશને વિષે પહોળાઈ લેવી, અને પહોળાઈથી લંબાઈ પોણા બે ગણી જાણવી.

પ્રાસાદે ધ્વજાનિર્મુક્તે પૂજાહોમજપાદિકમ્ ॥

સર્વં વિલુપ્યતે યસ્માન્-તસ્માત્કાર્યો ધ્વજોચ્છ્રયઃ ॥૧૭૮॥

एकाहमपि प्रासादं ध्वजहीनं न धारयेत् ॥

અર્થઃ—પ્રાસાદ ઉપર ધ્વજ અઢાવેલી ન હોય તો ત્યાં કંઈક પૂજા, હોમ, જપ વિગેરે સર્વ નિષ્કળ થાય છે, માટે ધ્વજ અવશ્ય અઢાવવી. પ્રાસાદ એક દિવસ પણ ધ્વજરહિત રાખવો નહીં. [૧૭૮]

दण्डः प्रकाशे प्रासादे प्रासादकरसंख्यया ॥

सान्धकारे पुनः कार्यो मध्यप्रासादमानतः ॥૧૭૯॥

અર્થઃ—પ્રકાશિત પ્રાસાદ ઉપર ધ્વજનો દંડ પ્રાસાદની હસ્તસંખ્યાને અનુસારે કરવો. અને અંધકારરહિત પ્રાસાદ ઉપર મધ્યપ્રાસાદના પ્રમાણથી ધ્વજનો દંડ કરવો. [૧૭૯]

સમાના શુકનાસસ્ય ઘણ્ટિકા મૂઢમણ્ડપે ॥

ઘન્ટમાનૈવ રક્ષાણ્યે મણ્ડપે ચ વલ્લાનકં ॥૧૮૦॥

અર્થ — ગભારામા, રંગ મહાપમા, તથા વલ્લાનકમા

ધટાનું પ્રમાણ શુકનામા મમાન બાણુ (૧૮૦)

ગૃહે દેવગૃહે ચપિ, જીર્ણે ચોદ્ધર્તુમીક્ષિતે ॥

માગ્વદ્વાર પ્રમાણ ચ, વાસ્તુત્પાદોઽન્યયાકૃતે ॥૧૮૧॥

અર્થ — છુર્ણ થએલા ઘરનો અથવા દેવમંદિરનો ઉદ્ધાર

કરતા તેનું દ્વાર તથા પ્રમાણ નો પહેલા માફકજ નાખ્યું

હોય તો નવી વારતુ ડગ્વાની જરૂર નથી, અને નો દેગ્ધાર

કર્યો હોય તો નવી વારતુ કરવી (૧૮૧)

સ્તમ્ભપટ્ટાદિયેયસ્તુ, યઃ પ્રૌક્તો ગૃહશાલકે ॥

પ્રાસાદેષ્વપિ સ જ્ઞેયઃ, સંપ્રદાયાન્ન શિલ્પિનામ્ ॥૧૮૨॥

અર્થ — સ્તંભ તથા પટ્ટિયા વિગેરેનું પ્રમાણ વારતુ

શાસ્ત્રમા જે કહ્યું છે, તેજ મંદિરના શાસ્ત્રમા પણ કાળીગરોના

સંપ્રદાયથી બાણુ (૧૮૨)

(અથ પ્રતિગાર્થ પાપાગાદિપરીક્ષા ।)

નિર્મલ્લેનાગ્નતેન, પિષ્ટયા શ્રીફલ્લચા ॥

વિશ્લિષ્ટેઽગ્નિનિ રાષ્ટ્રે વા, પ્રવટ્ટ મણ્ડલ ભવેન્ ॥૧૮૩॥

અર્થ — નિર્ગય આલ્પમા પીનેલી ગિહીની હાવોત

લાકડા ઉપર અથવા પત્થર ઉપર લેપ ડગ્વાથી પ્રવટ્ટ મહા

(માહવ) થાય છે (૧૮૩)

મધુભક્ષમગુડવ્યામ-કપોતસદૃશપ્રભૈઃ ॥

પ્રાજિઘૈરુણૈઃ પીતૈઃ, કપિલૈઃ શ્યામલૈરપિ ॥ ૧૮૪ ॥

ચિત્રૈશ્ચ મળ્ડલૈરેભિ-રન્તર્જયા યથાક્રમમ્ ॥

સ્વદ્યોતો વાલુકા રક્ત-ભેકોઽમ્બુગૃહગોત્રિકા ॥ ૧૮૫ ॥

દર્દુરઃ કૃકલાસશ્ચ, ગોધાસ્વસર્પવૃશ્વિકાઃ ॥

સંતાનવિભવપ્રાણ-રાજ્યોચ્છેશ્ચ તત્ફલમ્ ॥ ૧૮૬ ॥

અર્થઃ—જેની પ્રતિમા કરવી હોય તે કાપઠ ઉપર અથવા પાપાણુ ઉપર પુર્વે કહ્યા પ્રમાણે લેપ કરવો. તે લેપથી જે મધ જેવું મંડલ પડે તો અંદર બધોત (ખલુઓ), રાખ સરખું પડે તો રેતી, ગોળ સરખું પડે તો રાતો દેડકો, આકાશ સરખા રંગનું પડે તો પાણી, કપોત સરખા રંગનું પડે તો ગિરોળી, મજ્જા સરખા રંગનું પડે તો દેડકો, રાતું પડે તો કાચડો, પીળું પડે ગોધાખુ, તો કપિલવર્ણ પડે તો ઉંદર, કૃષ્ણવર્ણ પડે તો સર્પ અને ચિત્રવર્ણ પડે તો વીંછી અંદર છે એમ જાણવું. તેથી સંતતિ, સંપદા, પ્રાણ અને રાજ્ય એનો નાશ થાય છે. (૧૮૪) (૧૮૫) ૧૮૬)

કીલિકાછિદ્રસુંપિર-ત્રંસજાલકસંયયઃ ॥

મળ્ડલાનિ ચ ગારશ્ચ, મહાદૂપણહેતવે ॥ ૧૮૭ ॥

અર્થઃ—પ્રતિમાના કાષ્ઠમાં અથવા પાપાણુમાં ખીલો, છિદ્ર, પોલાણુ, છુવનાં જાંજાં, સાંધા, મંડલાકાર દેવા તથા ગાર હોય તો મોટો દોષ સ્પન્નજવો. (૧૮૮)

પ્રતિમાયા દવરકા, મયેયુત્ત કથ ચન ॥

સટગુણાં ન દુષ્યન્તિ, ગુણાન્યત્વેઽતિદૂષિતાઃ ॥ ૧૮૮ ॥

અર્થ — પ્રતિમાના કાષ્ઠમા અથવા પાપાણુમા જે કોઈ પાપ ગીતે લીધાટા (રેપા) પડેલા નજરે આવે તો તે જે મૂળ વસ્તુના જેવા રંગના હોય તો ઠીક હોય નથી, અને જે મૂળ વસ્તુથી જુદા રંગના હોય તો હોય જાણવો (૧૮૮)

(ઇતિ મન્દિર પ્રતિમાધધિકાર.)

ક્તત્ત્વેવાદિકૃત્યઃ સન્નુપદેશ નય શુભમ્ ॥

શ્રોતુકામો ગુરોઃ પાર્શ્વે, ગન્ઠેદચ્છાશયઃ પુમાન ॥ ૧૮૯ ॥

અર્થ — લગ્ન શુભે પૂર્વ કહેલી રીત પ્રમાણે ન્દાન ધોઈ તથા પૂજા કરી રહ્યા પછી મનમા શુભ પરિણામ રાખી નવો મંગલકારી ઉપદેશ માલગવા માટે શુદ્ધ મહાગજ પાસે (ઉપાસરે) જવું (૧૮૯)

કદાચિત્કાર્યનસ્તમ્ય, પાર્શ્વમેતિ યદા ગુરઃ ॥

પર્યુપાસિસ્તદા કર્તુ-મેવં શિષ્યમ્ય ગુજ્યતે ॥ ૧૯૦ ॥

અર્થ — ત્યારે પોતાના કઈ કામ માટે શુદ્ધ શિષ્યની (શ્રાવકની) પાસે આવે, ત્યારે શિષ્યે શુદ્ધની ઉપાસના (આદરમાન વિગેરે) એવી રીતે કરવી જોઈએ (૧૯૦)

અન્યુત્તિષ્ઠેદ્દુર્ગ દષ્ટે-ઽધિગન્ઠેત્ત તદાગમે ॥

ઉત્તમાદ્વેઽઙ્ગર્ભિ ન્યમ્ય, દોદપત્ન્યવપાસનમ્ ॥ ૧૯૧ ॥

અર્થ — શુદ્ધને જોતાજે ઉપાસવું, દાન વગર, નસ્તદે અવરતી કરવી, અને પોતે તે - ગાન માયવું (૧૯૧)

નમસ્કુર્યાત્તતો ભક્ત્યા, પર્યુપાસીત ચાદરાત્ ॥

તદ્યાને ત્વચુયાયાચ્ચ, ઋમોઽયં ગુરુસેવતે ॥ ૧૦૨ ॥

અર્થ:—પછી ગુરુ મહારાજને હકિતથી નમસ્કાર કરવો, આદરથી તેમની સેવા (પગ ચંપી વિગેરે) કરવી, અને તે જવા નીકળે ત્યારે તેમની પછાડી જવું. ગુરુની સેવા કરવાનો એ કમ જાણવો. (૧૯૨)

શુદ્ધપ્રરૂપકો જ્ઞાની, ક્રિયાધાતુપકારકઃ ॥

ધર્મવિચ્છેદરક્ષી ચ, ગુરુગૌરવમર્હતે ॥ ૧૦૩ ॥

અર્થ:—શુદ્ધ પ્રરૂપણ કરનારા, જ્ઞાની, ક્રિયાપાત્ર, ભવ્ય શુભ ઉપર ઉપકાર કરનારા અને ધર્મનો વિચ્છેદ થતો હોય તો તેનું રક્ષણ કરનારા એવા ગુરુ પૂજવા લાયક છે. (૧૯૩)

વિચારાવસરે મૌની, લિપ્તુર્ધિપ્તુશ્ચ કેવલમ્ ॥

સર્વત્ર ચાટુર્યાદી ચ, ગુરુમુક્તિપુરાર્ગલા ॥ ૧૦૪ ॥

અર્થ:—કોઈ પૃષ્ઠે ત્યારે વિચાર પૂર્વક કહેવાને બદલે મૌન કરી બેસનાર, કેવળ ધનનો લોભી, અને પાખંડી એવો ગુરુ મુક્તિપુરના દરવાજાની અર્ગલા (ભૂંજળ)—સમાન જાણવો. (૧૯૪)

इत्यं मया ब्राह्ममुहूर्तमादौ, कृत्वाभ्यधायि प्रहरस्य कृत्यम्॥

यस्य प्रकाशेन खरिवोच्चै—भवेदवश्यं कमलावबोधः ॥ १०५ ॥

इति श्रीजिनदत्तसारं विरचिते विवेकविलासे दिनचर्यायां

प्रथम उद्घासः ॥ ૧ ॥

અર્થ:—એવી રીતે ગ્રાહ્ય મુહૂર્તથી માંડીને પહેલા પ્રહર

મૂઢીતુ શ્રાવક કૃત્ય મે કદુ જેમ રવિના પ્રકાશથી કમલનો
બોધ (વિકાસ) થાય છે, તેમ આ શ્રાવક કૃત્યના પ્રકાશથી
(તપુવાની તથા આચરવાથી) કમલાનો (લક્ષ્મીનો) બોધ
(ઉદય) થાય (૧૬૫)

ઇતિ શ્રી વિવેક વિલાસની ગૂર્જરભાષાનો પ્રથમ
ઉલ્લાસ મ પૂર્ણ ॥ ૧ ॥

(અથ દ્વિતીય ઉલ્લાસઃ ।)

દ્વિતીયા રજિતા મ્હાને, દશમી ચાષ્ટમી તથા ॥

ત્રયોદશીચતુર્દશ્યો, પાષ્ટી પચ્ચદશી ક્લ્હઃ ॥૧॥

અર્થ—દ્વિતીયા (જીજ્ઞ), દશમી (દશમ), અષ્ટમી
(આઠમ) ત્રયોદશી (તેરમ), ચતુર્દશી (ચૌદમ), પાષ્ટી (૭૬)
પૂર્ણિમા (પૂનમ) અને અમાવાસ્યા (અમામ) એટલી નિવિ-
ચો ન્દાવાને વિષે વર્ણવી (૧)

આદિત્યાદિષુ ગરેણુ, તાપઃ કાન્તિર્મૃતિર્નમ્ ॥

ત્રિગ્વિ દુર્ભગત્વ ચ, કામાસિઃ મ્હાનતઃ ક્રમાત્ ॥૨॥

અર્થ —રવિ, સોમ, મંગળ, બુધ, શુક્ર, ગુરુ અને
શનિ એ સાને વારને વિષે ન્દાઈએ તો અનુક્રમે તાપ, કાન્તિ,
મન્દા, દ્રવ્ય, દિગ્વીપદ્વ, દુર્ભાગીપાતું અને ઇચ્છિત વસ્તુ
એમની પ્રાપ્તિ થાય (૨)

નશર્તપ્રોપિતાયાતઃ, સુચલો મુક્તભૂપિતઃ ॥

નૈવ સ્નાયાદનુવ્રજ્ય, વન્ધૂન્કૃત્વા ચ મદ્ગલમ્ ॥૩॥

અર્થઃ—નગ્ન, રોગી, મુસાફરી કરીને આવેલો, આરામ વગર તથા અલંકાર પહેરેલો, લોજન કરી રહેલો, પોતાના સગાં બહાલાને વળાવીને આવેલો અને કંઈપણ મંગલિક કાર્ય કરી રહેલો એટલા લોકોએ નહાવું નહીં. (૩)

ન પર્વેષુ ન તીર્થેષુ, ન સંક્રાન્તૌ ન વૈદૃતૌ ॥

ન વિષ્ટૌ ન વ્યતીપાતે, તૈલાભ્યન્નઃ પ્રશસ્યતે ॥૪॥

અર્થઃ—પર્વને દિવસે, તીર્થને વિષે, સંક્રાંતિને દિવસે, તથા વૈદૃતિ, વિષ્ટિ અને વ્યતીપાત એ ત્રણે દિવસને વિષે તૈલાભ્યંજ (તેલનું શરીરે મર્દન) ન કરવો. (૪)

સ્નાનં શુદ્ધામ્ભસા યત્ત—ન કદાચિન્નિપિધ્યતે ॥

તિથિવારાદિકં યત્તુ, તૈલાભ્યન્ને તદીક્ષ્યતે ॥૫॥

અર્થઃ—શુદ્ધ જળે નહાવાની કોઈ પણ દિવસે મનાઈ નથી. તિથિ વાર ઇત્યાદિક બે કહ્યું તે તૈલાભ્યંજ (શરીરે તેલનું મર્દન) કરવો હોય તો જોવું. (૫)

ગર્ભાશયામૃતમર્તાં, ગત્વા સ્નાયાત્પરેઽહનિ ॥

અનૃત્સ્ત્રીગમે શૌચં, મૃત્રોત્સર્ગવદાચરેત્ ॥૬॥

અર્થઃ—ગર્ભિણી અથવા ઋતુમતી સ્ત્રીને વિષે રાત્રે ગમન કર્યું હોય તો જીજે દિવસે નહાવું. અને ઋતુકાલ નહીં છતાં સ્ત્રીસંગ કર્યો હોય તો મૂત્ર કર્યા પછી જેમ શુદ્ધિ કરવામાં આવે છે તેવી રીતે કરવી. (૬)

રાત્રૌ જ્ઞાનં ન શાસ્ત્રીયં, કેચિદિન્દ્રિયં પર્વણિ ॥

તીર્થે સ્નાત્વાન્યતીર્થાના, કુર્યાન્નિન્દાસ્તુતી ન ચ ॥૭॥

અર્થ — રાત્રે ન્હાવું એ શાસ્ત્રમા કહ્યું નથી પણ કેટલાક લોકો પર્વ હોય તો રાત્રે પણ ન્હાવું એમ કહે છે એક તીર્થમા ન્હાઇને ત્યાં જીન તીર્થની સ્તુતિ અથવા નિંદા ન કરવી (૭)

અજ્ઞાતે દુઃખવેગે ચ, ચળદાલ્લેપિતેષ્યવા ॥

તરચ્છન્નં સગૈવાલે, ન સ્નાન યુજ્યતે જલે ॥૮॥

અર્થ — અજ્ઞાત યુ, વિષમ માર્ગવાળું, ચડાલોએ ફાંપિત કરેલું, વૃક્ષોથી ઢકાયેલું અને શેવાળવાળું એવા પાણીમા ન્હાવું એ ઠીક નથી (૮)

સ્નાન કૃત્વા જલઃ શીત-ર્થોક્તમુષ્ણ ન યુજ્યતે ॥

જલરુષ્ણસ્તથ શીત, તૈલમ્બદ્ધશ્ચ સર્વદા ॥૯॥

અર્થ — ઠંડા પાણીથી ન્હાયા પછી તુરત ઉષ્ણ ગરમ લોજન ન કરવું અને ઉષ્ણ જળથી ન્હાયા પછી તુરત શીતળ લોજન ન કરવું તેમજ ગમે તેવા પાણીથી ન્હાયા પછી તેલામ્બદ્ધ (તેલનું મર્દન) તો કોઈ કાળે પણ ન કરવો (૯)

સ્નાતમ્ય વિકૃતા છાયા, દન્તર્પઃ પરસ્પરમ્ ॥

દેહે ચ શવગન્ધ-ન્મૃત્યુસ્તદિયસત્રયે ॥૧૦॥

અર્થ — ન્હાએલા પુરૂષની છાયા જો દિનનિ રાત્રી અથવા ઉત્તરી દેખાય દાત એક જીન જોડે ઘસાય, તથા ગરીબને મરદા જેવી દુર્ગંધ આવે તો ત્રણ દિવસમા મરણ જાણવું (૧૦)

રનાતમાત્રસ્ય ચેચ્છોષો, વલ્લભ્યાંઘ્રિદ્વયેऽપિ ચ ॥

ષ્ટ દિને તદા જ્ઞેયં, પશ્ચત્ત્વં નાત્ર સંશયઃ ॥ ૧૧ ॥

અર્થઃ—હાથ રહ્યા પછી તુરતજ બે છાતી અને
ઝે પગ સુકાઈ બચે તો છઠે દિવસે મરણ થાય એમાં
સંશય નથી. (૧૧)

ન શુક્રસોમયોઃ કાર્યં, સ્નાનં રોગવિમુક્તયે ॥

પૌષ્ણાશ્લેષાધ્રુવસ્વાતિ-પુર્નવસુમધામુ ચ ॥ ૧૨ ॥

અર્થઃ—શુક્રવારે અથવા સોમવારે તથા રેવતી, આ-
શ્લેષા રોહિણી, ત્રણ ઉત્તરા, સ્વાતિ, પુર્નર્વસુ અને મધ્યા
એટલા નક્ષત્રને વિષે રોગવિમુક્તિને અર્થે નહાવું નહીં. (૧૨)

રિક્તા તિથિઃ કુજાકૌં વા, ક્ષીણેન્દુર્લગ્નમસ્થિરમ્ ॥

દ્વિત્યષ્ટૈકાદશાઃ ક્રૂરા, નૈરુજ્યસ્નાનાસિદ્ધિદાઃ ॥ ૧૩ ॥

અર્થઃ—રિક્તા તિથિ (ચોથ, નવમ અને આઠસ,) મં-
ગળવાર અથવા રવિવાર, ક્ષીણ ચંદ્રમા, અસ્થિર (ચલ) લગ્ન,
અને પીળે, ત્રીજે, આઠમે તથા અગ્યારમે સ્થાને ફૂર (પાપ)
ગ્રહ એવો યોગ હોય તો રોગવિમુક્તિને અર્થે નહાવું ફળ-
દાયક છે. (૧૩)

રતે વાન્તે ચિતાધૂમ-સ્પર્શે દુઃસ્વપ્નદર્શને ॥

ક્ષૌરકર્મણ્યપિ સ્નાયા-દ્રાલિતૈઃ શુદ્ધવારિભિઃ ॥ ૧૪ ॥

અર્થઃ—સ્ત્રીસંગ કરે, ઉલટી થાય, (સ્મશાનમાં) ચિ-
તાનો ધૂમાડો લાગે, માહું સ્વપ્ન આવે, અને ક્ષૌર કર્મ
કરાવે તો ગળેલા શુદ્ધ જળથી નહાવું. (૧૪)

(અથ લૌકિકર્મવિચાર : ।)

ચતુર્થા નવમી પૃષ્ઠી, ચતુર્દશ્યપૃષ્ઠી તથા ॥

અમાત્યાસ્યા ચ દૈવજ્ઞૈઃ, લૌકિકર્મણિ નેપ્યતે ॥૧૮॥

અર્થ — ચતુર્થી (ચાથ), નવમી (નવમ), પૃષ્ઠી (છઠ), ચતુર્દશી (ચૌદસ), અષ્ટમી (આઠમ) અને અમાવાસ્યા (અમાસ) એ છ તિથિઓ દ્વારા કર્મ (હિતમત) કરાવવું હોય તો આરી નથી એવું જ્યોતિષી લોકોનું મત છે (૧૫)

દિવાકીર્તિપ્રયોગે નુ, વારાઃ પ્રોક્તા મનીષિભિઃ ॥

સૌમ્યજ્યશુક્લસોમાના, લેમારોગ્યમુલ્લખદાઃ ॥ ૧૯ ॥

અર્થ — દોઢ કર્મને વિષે પુષ્ય, શુક્ર, શુભ અને સોમ એ ચાર વાર હેમ, આરોગ્ય અને સુખના દાતા છે એમ યદિત લોકોએ કહ્યું છે (૧૬)

લાર પ્રોક્તં ત્રિપદ્વિત્રિ-મૃગે પુણ્ય ચરેષુ ચ ॥

જ્યેષ્ઠામ્બિર્નાકરદન્ઢ-રેવતીષુ ચ શોભનમ્ ॥૨૦॥

અર્થ — મૃગ, પુષ્ય, ચરનક્ષત્ર (સ્વાતિ, શ્રવણ, ધનિષ્ઠા, ગતગારકા), જ્યેષ્ઠા, અશ્વિની, હસ્તા, ચિત્રા અને રેવતી એટલા નક્ષત્રોને વિષે દોઢ કર્મ કરાવવું શુભ છે, એમ વિદ્વાન્ લોકોએ કહ્યું છે (૧૭)

લૌકે રાજાઢગા જાને, નક્ષત્ર નામજ્ઞસ્યતે ॥

ત્રિશ્ચિત્તીર્થે ચ શોકે ચ, લૌકમુક્ત શુભાર્થિભિઃ ॥૨૮॥

અર્થ — ગતની આજ્ઞાની દોઢ કરાવવું પડે નો નક્ષત્ર જ્ઞેવાય નહીં એટલાક શુભાર્થી લોકોએ કહ્યું છે કે ત્રિ-

થને વિષે અથવા શોકને લીધે દ્વાર કરાવવું હોય તોએ નક્કર જોવું નહીં. (૧૮)

રાત્રો સંધ્યાસુ વિદ્યાર્દો, દ્વારં નોક્તં તથોન્સવે ॥

ભૂપામ્બજ્ઞાનસ્નાન-પર્વયાત્રારણેષ્વપિ ॥૧૯॥

અર્થ:—રાત્રિએ, સંધ્યાકાલને વિષે, વિદ્યાના આરંભમાં, ઉત્સવમાં, ભૂપણ, અભ્યંગ (તેલ મર્દન), ભોજન અને સ્નાન કરી રહ્યા પછી, કોઈ પર્વને દિવસે તથા યાત્રાએ અથવા સંત્રામને વિષે જતાં દ્વાર કરાવવું નહીં. (૧૯)

કલ્પયેદેકદાઃ પક્ષે, રોમઞ્ચશ્રુકચાન્નિશ્વાન ॥

નચાત્મદશનાગ્રેણ, સ્વપાણિભ્યાં નચોત્તમઃ ॥ ૨૦ ॥

અર્થ:—પખવાડિયામાં એકવાર દાઢી, મુઠ્ઠ, માથાનાં વાળ તથા નખ કાઢવાં. પણ પોતાના હાથે પોતાનાં વાળ ન કાઢવા, તથા પોતાના દાંતથી, પોતાના નખ પણ ન કાઢવાં. (૨૦)

(અથ વસ્ત્રાભૂષણાધિકારઃ ।)

આત્મવિત્તાનુમાનેન, કાલૌચિત્યેન સર્વદા ॥

કાર્યો વસ્ત્રાદિશ્રદ્ધારો, વયસશ્ચાનુમાનતઃ ॥ ૨૧ ॥

અર્થ:—પોતાની પાસે જેટલું ધન હોય તેને શોભતો તથા શીતકાળાદિ સમય અને પોતાની ઉંમરને અનુસરતો એવો વસ્ત્રાદિકનો શૃંગાર કરવો. (૨૧)

ત્રારા નવીનવસ્ત્રસ્ય, પરિધાને મતાઃ શુભાઃ ॥

સૌમ્યાર્કશુક્રગુરવો, રક્તવસ્ત્રે કુજોઽપિ ચ ॥ ૨૨ ॥

અર્થ:—નવું વસ્ત્ર પહેરવું હોય તો શુધ્ધ, રવિ, શુક્ર

અને ગુરુ એ આર વાગુ શુભ જાણવા તેમજ ક્રૂર (રાતુ) વચ્ચે ધાગણ કરવું હોય તો મંગળવાર પણ શુભ જાણવો (૨૨)

ધનિષ્ઠાપુરોસ્ત્યો-ઽશ્વિનીસ્તાદિપચ્ચક્રમ્ ॥

પુષ્ય પુનર્વસુશ્વેત, શુભાનિ શ્વેતયાસસિ ॥ ૨૩ ॥

અર્થ —શ્વેત (સફેદ) વચ્ચે પહેરવું હોય તો ધનિષ્ઠા, ધ્રુવનક્ષત્ર (શેહિણી અને ત્રણ ઉત્તરા), રેવતી, અશ્વિની, હસ્તા, ચિત્રા, સ્વાતી, વિશાખા, અનુરાધા, પુષ્ય, પુનર્વસુ એટલા નક્ષત્ર શુભ જાણવા (૨૩)

પુષ્ય પુનર્વસુશ્વેત, રોહિણી ચોત્તરાત્રયમ્ ॥

કૌમુદ્યે વર્જયેદ્વચ્ચ, ભર્તૃવાનો ભયેતતઃ ॥ ૨૪ ॥

અર્થ —શ્રીને કુચુખી (રાતુ) વચ્ચે પહેરવું હોય તો, પુષ્ય, પુનર્વસુ, રોહિણી, ઉત્તરાશ્વિની, ઉત્તરપાદા અને ઉત્તરાશાદપદા, એટલા નક્ષત્ર વર્જવા ધાગણ, એ નક્ષત્ર ઉપર રાતુ વચ્ચે પહેરે તો પતિનો નાશ થાય છે (૨૪)

રક્તચક્ષુપ્રચાલના, ધારણ સ્વર્ણગદ્ધયોઃ ॥

ધનિષ્ઠાયા તયાશ્વિન્યા, રેવત્યા કરપચ્ચક્રે ॥ ૨૫ ॥

અર્થ —ધનિષ્ઠા, અશ્વિની, રેવતી, હસ્તા, ચિત્રા, સ્વાતી, વિશાખા અને અનુરાધા એટલા નક્ષત્રોને વિષે ગુરુ વચ્ચે, પ્રવાલ, મુવર્ણ (સોન) અને ગજા વિગેરે ધાગણ કરવા (૨૫)

દ્વિજાત્રેણે વિરાઢે ચ, મ્વામિદ્રત્તે ચ યાસસિ ॥

તિથિવાર્ગર્ભગીતાંશુ-વિષ્ટયાદિ ન વિલોકયેન્ ॥ ૨૬ ॥

અર્થ —ગ્રાહણની આજ્ઞા હોય, વિવાહ હોય, અન્યવા

પોતાનો સ્વામી આપે તો તે વસ્ત્ર પહેરવામાં તિથિ, વાર,
નક્ષત્ર, ચંદ્રમા, વિષ્ટિ ઇત્યાદિકનો વિચાર ન કરવો. (૨૬)

ન ધાર્યમુત્તમૈર્જીર્ણ, વસ્ત્રં નચ મલીમસમ્ ॥

વિના રક્તોત્પલં રક્તં પુષ્પં ચ ન કદાચન ॥ ૨૭ ॥

અર્થ—ઉત્તમ પુરૂષોએ હાલ અથવા મલિન વસ્ત્ર ધારણ
કરવું નહીં. તેમજ એક રાતા કમળ વગર ખીન્નું રાતું ફૂલ
કોઈ કાળે પણ ધારણ ન કરવું. (૨૭)

આકાઙ્ક્ષાત્માત્મનો લક્ષ્મી, વસ્ત્રાણિ કુસુમાન્યપિ ॥

પાદત્રાણાનિ ચાન્યેન, વિવૃતાનિ ન ધારયેત્ ॥ ૨૮ ॥

અર્થ—લક્ષ્મીની ઇચ્છાવાળા પુરૂષે ખીન્નએ પહેરેલું
વસ્ત્ર, ફૂલ તથા પાદત્રાણ (પગરખા) પહેરવાં નહીં ૨૮.

નવભાગીકૃતે વસ્ત્રે, ચત્વારસ્તત્ર કોણકાઃ ॥

કળાવૃત્તિ દ્વયં દ્વૌ ચા—શ્ચલૌ મધ્યં તથૈકકમ્ ॥ ૨૯ ॥

ચત્વારો દેવતાભાગા, દ્વૌ ભાગૌ દૈત્યનાયકૌ ॥

ઉર્ધ્વૌ ચ માનુષૌ ભાગા—ત્રેકો ભાગશ્ચ રાક્ષસઃ ॥ ૩૦ ॥

અર્થ—વસ્ત્રનાં નવ ભાગ કરિયે, (વસ્ત્ર યંત્ર)

તેમાં ચાર ખૂણાનાં ચાર ભાગ, બે કિ-
નારીના બે ભાગ, બે છેડાનાં બે ભાગ અને
એક વચ્ચેનો ભાગ એ નવ ભાગમાં પહેલાં
ચાર ભાગ દેવતાનાં ખીન્ન બે ભાગ દૈત્યના,
ત્રીજા બે ભાગ મનુષ્યનાં અને ચોથા એ-
કજ છે તે રાક્ષસનો જાણવો. (૨૯)-(૩૦)

૧ દેવ.	૫ દૈત્ય.	૨ દેવ.
૭ મનુ- પ્ય.	૯ રાક્ષસ.	૮ મનુ- પ્ય.
૪ દેવ.	૬ દૈત્ય	૩ દેવ

પદ્માજ્ઞનાદિધિલિપ્ત, કુદૃષિત મૃષ્કાદિભિઃ ॥

તુચ્ચિત પાટિત દગ્ધ, દદ્ધા વસ્ત્ર વિચારયેત્ ॥૩૧॥

ઉત્તમો દેયતે લાભો, દાનત્રે રોગમભયઃ ॥

માતુષે મયમો લાભો, ગણસે મરણ પુનઃ ॥૩૨॥

અર્થ — વસ્ત્ર કાદવમા અથવા અજ્ઞનમા ખગડાએલુ, ઉદરથી કગડાયલુ, ચુ કડેલુ કાટેલુ, અવવા બળેલુ જોઇને વિચાર કરવો. તે આ રીતે—દેવતાના ભાગમા કાદવથી ખરડા ચલુ કાટેલુ વિગેરે હોય તો ઉત્તમ લાભ થાય, દૈત્યના ભાગમા હોય તો રોગનો અભવ થાય, મનુષ્યના ભાગમા હોય તો મધ્યમ લાભ થાય, અને ગણમના ભાગમા હોય તો મગ્ધ થાય (૩૧) (૩૨)

(અથ તામ્બૂલવિચાર ।)

નાગવહ્નીદલામ્વાદો, યુજ્યન્તે ક્રમુર્કઃ સમય ॥

પલાન્વદ્ધકઙ્કોલ-કર્પૂર્ગાન્વિત્તરપિ ॥૩૩॥

અર્થ — નાગરવેલનુ પાન, ચોપારી, એલથી, લવજ, કકોળ, કપૂર, ઇત્યાદિક વસ્તુની માથે ભાણુ કગ્ધુ (૩૩)

ચૂર્ણપ્રગળ્ભાશિક્વ-સામ્યે ચાત્ર મતિ વ્રમાન્ ॥

દુર્ગન્માદ્દુર્ગાન્વ-વદ્દુર્ગાન્વિદુર્ગા ॥૩૪॥

અર્થ — જો પાનમા ચુનો વધારે હોય તો દુર્ગંધી થાય, ચોપારી વધારે હોય તો રંગ ન થાય, ચુનો જોઇયે તેટલોજ હોય તો સુગંધી થાય, અને ચોપારી જોઇયે તેટલી હોય તો બદ્ધ રંગ થાય, એમ પદિન પુરો કરે છે (૩૪)

પિત્તશોષિતવાતાર્ત—સ્થક્ષીણાક્ષિરોગિણામ્ ॥

તન્નાપચ્યં વિપાર્તિરય, ક્ષીવશોષવતોરપિ ॥૩૫॥

અર્થ:—રકેતપિત્ત તથા વાતરોગ જેને થયો હોય તે, રક્ષ થએલાં ક્ષીણ થએલા, આંખના રોગી, વિવથી ખીડા-યલા, ઘેલા થએલા અને શોષકાય રોગવાળા એટલા રોગીને તાંબુલ ગુણુકારી નથી. (૩૫)

કામદં પદ્મસાધાર—મુષ્ણં શ્લેષ્માપહં તથા ॥

કાન્તિદં કૃમિદુર્ગન્ધ—વાતાનાં ચ વિનાશનમ્ ॥૩૬॥

યઃ સ્વાદયતિ તામ્બૂલં, વક્રમૂપાકરં નરઃ ॥

તસ્ય દામોદરસ્યેવ, ન શ્રીસ્ત્યજતિ મદ્ગિરમ્ ॥૩૭॥

અર્થ:—કામની વૃદ્ધિ કરનારું, ઇચ્છે રસનો આધાર, ઉપજી, કાંતિ દેનારું તથા કૃદ્ધ, કૃમિ દુર્ગંધ અને વાયુ એમનો નાશ કરનારું, એવા મુખને શોભા ઉપજાવનારા તાંબુલને જે માણસ ખાય તેના ઘરને શ્રીકૃષ્ણના ઘરની પેઠે લક્ષ્મી છોડતી નથી. (૩૬) (૩૭)

સ્વાપાન્તે વમને સ્નાને, ભોજનાન્તે સદસ્યપિ ॥

તત્તુ ગ્રાહ્યમનલ્પીયઃ, સુખદં મુખશુદ્ધિકૃત્ ॥૩૮॥

અર્થ:—સુખ દેનારું અને સુખની શુદ્ધિ કરનારું તાંબુલ નિદ્રા, વાંતિ (ઉલટી), સ્નાન અને ભોજન કરી રહ્યા પછી તથા સલાખાં ખૂબ ખાવું. (૩૮)

પર્ણમૂલે વસેન્દ્રાધિઃ, પર્ણાગ્રે પાપસંભવઃ ॥

ચૂર્ણપત્ર દરેદાયુ, શિરા બુદ્ધિત્રિનાગિની ॥૩૯॥

અર્થ — પાનના મૂળમાં વ્યાધિ રહે છે અત્રલાગમા પાપ નો સમૂહ રહે છે, સુકાઇને ચૂર્ણ થયેલુ પાન ખાવાથી આ ચુપ્તનો નાશ થાય છે અને પાનની નસ બુદ્ધિનો નાશ કરે છે (૩૯)

(જવ દ્રવ્યોપાર્જનાધિકારઃ ।)

સુધીરર્થાર્જને યત્ર, કુર્યાન્ન્યાયપરાયણઃ ॥

ન્યાય દ્વાનપાયો ય—દુપાયઃ સર્વસપદામ્ ॥૪૦॥

અર્થ — શદ્ધા મુદ્ધે ન્યાય માર્ગનુ આલેખન કરીનેજ દ્રવ્ય (પૈસો) ઉપાર્જન કરેલુ કે, ન્યાય એજ દ્રવ્ય ઉપાર્જન નો શુદ્ધ ઉપાય છે (૪૦)

તત્તઃ સ્વલ્પોઽપિ ભદ્રાય, સ્યાદયો ન્યાયસાચિનઃ ॥

અન્યાયાતઃ પુનર્દત્તઃ, પુષ્કલોઽપિ ફલોઽજ્જિતઃ ॥૪૧॥

અર્થ — ન્યાયથી ઉપાર્જન કરેલુ દ્રવ્ય (ધર્મકૃત્યમા) થોડુ વાપરે તોએ પણ તે કટનાણુને અર્થ છે અને અન્યાયથી ઉપાર્જન કરેલુ ઘણુ વાપરે તોએ તે નિષ્ફળ બાણુ (૪૧)

ધર્મમર્માવિરોધેન, સર્વલોઽપિ કુલોચિતઃ ॥

નિસ્તન્દ્રેણ વિવેચોઽત્ર, વ્યવસાયઃ સુમેધસા ॥ ૪૨ ॥

અર્થ — બુદ્ધિશાળી માણસે ધર્મના તત્ત્વને વિદ્યાધ ન આવે એવી રીતે કુલને ઉચિત વ્યાપાર આગ્રહ રાખ્યા વિના કરવો. [૪૨]

પ્રસૂનમિવ નિર્ગન્ધં, તડાગમિવ નિર્જલમ્ ॥

કલેવરમિવાર્જિવં, કો નિર્ણેત નિર્ધનમ્ ॥ ૪૩ ॥

અર્થ:—મુગંધિ વિનાના ફૂલ સરખા, જળ વિનાના તડાવ સરખા અને જીવ વિનાના કલેવર સરખા નિર્ધન માણુ-
સની કોણુ એવા કહે ? (૪૩)

અર્થ એવ ધ્રુવં સર્વ—પુરુષાર્થનિવન્ધનમ્ ॥

અર્થેન રહિતાઃ સર્વે, જીવન્નોઽપિ જીવોપમાઃ ॥ ૪૪ ॥

અર્થ:—દ્રવ્ય જે છે તેજ સર્વે પુરુષાર્થનું મૂળ કારણ છે.
માટે દ્રવ્યથી રહિત સર્વે પુરુષો જીવતાં છતાં પણ મુલા સરખા
છે. (૪૪)

કૃપ્યાદિભિઃ સ ચોપાયૈ—યૂરિભિઃ સમુપાર્જયતે ॥

દયાદાનાદિભિઃ સમ્ય—ધન્યૈર્ધર્મિય સ ધ્રુવમ્ ॥ ૪૫ ॥

અર્થ:—ધન્ય પુરુષો જેતી, વ્યાપાર પ્રમુખ ઘણા ઉપા-
યથી તે દ્રવ્યનું ઉપાર્જન કરે છે, અને અનુકંપાદાન, પાત્રદાન
પ્રમુખ સતકાર્ય કરીને સદ્ધર્મ તરફ તેનો વ્યય કરે છે. (૪૫)

વાપકાલં વિજાનાતિ, ભૂમિભાગં ચ કર્ષકઃ ॥

કૃષિં સાધ્યાં પાત્રે ક્ષેત્રં, યત્રોઽઞ્જતિ સ વર્ધતે ॥ ૪૬ ॥

અર્થ:—જે ખેડૂત વાવવાનો અવસર, ભૂમિનો ભાગ તથા
ભૂમિની અંદર કયો પાક આવે તે જાણે, અને માર્ગમાં આવેલા
ખેતરને છોડી દે, તે જેતીમાં લાભ પામે. (૪૬)

આરમ્ભોઽય મહાનેત્ર, લક્ષ્મીકાર્મણર્મણિ ॥

મૃતીર્થવિનિયોગેન, વિના પાપાય કેવલમ્ ॥ ૬૭ ॥

અર્થ—દ્રવ્યનુ ઉપાર્જન કરવાને અર્થે મોટો આરમ્ભ કરવો પડે છે માટે ઉપાર્જન કરેલા દ્રવ્યનો મુખ્યત્વે વ્યય ન કરે તો કેવળ તેમાની પાપ બધાય છે (૫૯)

પાણ્ડુપાલ્ય ત્રિયો વૃદ્ધયૈ, કુર્વન્નોઽજ્ઞેદ્યાલુતામ્ ॥

‘તત્કૃત્યેષુ સ્વયં જાગ્ર-ઽવિન્દેદાદિ ર્જયેત્ ॥ ૬૮ ॥

અર્થ—લક્ષ્મીની વૃદ્ધિને અર્થે ગાય, ભેંસ પ્રમુખ પશુઓનુ વધારુ કરવુ પડે, તોપણ ત્યાં દોડવી નહિ તે કામમા પેન્ને લગતુ રહેવુ, અને પશુઓના અગ ચિન્હ પ્રમુખ છેવા નહીં (૬૮)

શ્રેયો ધર્માત્મ ચાગ્રેનુ, મો-લ્યદ્વેન તદન્તન ॥

તન્નિવર્ત્તો ચ મગ્રાગ, નથ દગ્ધાદમગ્રી ॥ ૬૯ ॥

અર્થ—ધર્મથી કલ્યાણ વાદ છે, દ્રવ્યથી ધર્મ વાદ છે, શરીરથી દ્રવ્ય કમાવાય છે, અને તે ગરીબ અગ્રથી ભુલે છે માટે અનાજની ઉત્પત્તિ થતાજ તેનો મ વધ કરવો મ વધ ન કર્યો હોયને કેમ દેવાય ? (૬૯)

સગ્રેદર્શોઽપિ જાગેત, મસ્તોઽપિ તમ્ય વિક્રયાત્ ॥

રૂઢાગે નાંચિત્ મોઽપિ ર્ગવિગ્રહનામ્ ॥ ૭૦ ॥

અર્થ—પનાજનો ન વધાર્યો હોય તો વખતે તે વેચ્યા હી લાભ પણ થાય પણ તે ઉપાર વેચવુ નહીં માત્ર તમ કુદરથી વેદ નથા કરવુ ઉત્પન્ન હી છે (૭૦)

સર્વદા સર્વભાષેષુ, નાળકેષુ ચ શિલિનઃ ॥

જાનીયાન્સર્વભાષાવિ-દ્વસ્તસંજાં ત્રિચિન્તરઃ ॥૫૧॥

અર્થ:—સર્વે પ્રકારનું કરિયાળું તથા સર્વે પ્રકારનું નાળું
જાણવાનો અભ્યાસ બેણે કર્યો છે એવો દ્રેષ્ટ વણિદ્ સર્વ જાણા
તથા હસ્તસંજા પણ જાણે. (૫૧)

एकाद्वित्रिचतुःसंज्ञा-स्तर्जन्याद्यङ्गुलिग्रहे ॥

રાજ્ઞપ્થાનાં પુનરતાસાં, સંગ્રહે પદ્મ સંસ્થિતાઃ ॥ ૫૨ ॥

અર્થ:—તર્જની આંગળીથી માંડીને ચાર આંગળીઓ
અહણ કરવાથી અનુક્રમે એક, બે, ત્રણ અને ચાર એવી સંજ્ઞા
થાય છે. તથા તેની સાથે અંશુહો લીધાથી પાંચની સંજ્ઞા
થાય છે. (૫૨)

કનિષ્ઠાદિતલે સ્પૃષ્ટે, પદ્ સપ્તઘૃં નવ ક્રમાત્ ॥

તર્જન્યાં દશ વિજ્ઞેયા, તદાદીનાં નરવાહતાં ॥ ૫૩ ॥

एकाद्वित्रिचतुर्युक्ता, દશ જ્ઞેયા યથાક્રમમ્ ॥

હસ્તસ્ય તલસંસ્પર્શે, પુનઃ પશ્ચદશ સ્પૃતાઃ ॥ ૫૪ ॥

અર્થ:—કનિષ્ઠા આંગળીથી માંડીને ચાર આંગળીઓના
તળને સ્પર્શ કરવાથી અનુક્રમે છ, સાત, આઠ અને નવની સં
જ્ઞા તથા તર્જનીને વિષે સ્પર્શ કરે તો દશની સંજ્ઞા જાણવી. તેજ
આંગળીઓના નખોને સ્પર્શ કરવાથી અનુક્રમે અગ્યાર, બાર,
તેર અને ચૌદની સંજ્ઞા અને હાથેલીને સ્પર્શ કરવાથી પંદરની
સંજ્ઞા જાણવી. (૫૩) (૫૪)

તલે કનિષ્ઠિકાદીનાં, પદ્તસાષ્ટનવાધિકાઃ ॥

ક્રમશઃ દશ વિજ્ઞેયા, હસ્તસંજ્ઞાવિશારદ્દેઃ ॥ ૫૫ ॥

અર્થ — હસ્તસ રા બાણવામા પંડિત એવા પુરુષોએ કનિષ્ઠાદિ ચાર આગળીના તળે સ્પર્શ કરવાથી અનુક્રમે ચોળ, રાતર, અઢાર અને ચોમણીરાની ન રા થાય એમ બાણુ (૫૫)

તર્જન્યાદૌ દ્વિવિચતુઃ-પચ્ચગ્રાદે યથાક્રમમ્ ॥

ચિન્તાતિસ્તિગત્ત્વારિ-શત્પચ્ચાગત્પ્રકલ્પના ॥ ૫૬ ॥

અર્થ — તર્જની આદિ પાચ આગળીઓમા છે, ત્રણ, ચાર અને પાચનુ ગ્રહણ કરવાથી અનુક્રમે વીમ, ત્રીમ, ચાલીશ અને પચામની મ રા બાણુવી (૫૬)

કનિષ્ઠાગ્રદ્ગુરિતલે, પષ્ટિસપ્તત્યગીતયઃ ॥

નનતિશ્ર ઋમાજ્ઞેયા-સ્તર્જન્યર્ચગ્રદે શતમ્ ॥ ૫૭ ॥

અર્થ — કનિષ્ઠાદિ ચાર આગળીના તળે અનુક્રમે માઠ નિતેર, એમી અને મેણુ ની મ રા તવા અર્ધી તર્જનીનુ ગ્રહણ કરવાથી મોની મ ના બાણુવી (૫૭)

સદ્વ્યમયુત દશ, મયુત ચાન વિશ્રુતમ્ ॥

મણિયન્તે પુનઃ કોટિ, દમ્તસજ્ઞાવિદો વિદુઃ ॥ ૫૮ ॥

અર્થ — તે પછી અનુક્રમે આગળીનો અર્ધ ભાગ ગ્રહણ કરવાથી હજાર દમ હજાર, લાખ અને દમ લાખની મ રા થાય તથા મણિખંધ (કાડુ) ગ્રહણ કરવાથી કોડની મ રા થાય (૫૮)

ઋગ્વાણકોઽવદ્યેષુ, ન સત્યકારમર્ષયેત્ ॥

દશાગ્ર ચદુભિ, માર્ગે, ચાઝેટ્ટસ્મીં ચણિમ્પદિ ॥ ૫૯ ॥

અર્થ — તે બ્યાપારી લક્ષ્મીની વાછા કરતો હોય તે તેણે કનિષ્ઠાગ્ર દીકા વિના બાનુ આપણુ નહિ, અને કનિ-

ચાણું હીઠા પછી પણ જે બાતું આપવું પડે તે બીજા
ઘણા વ્યાપારીની જેડે આપવું. (૫૬)

કુર્યાત્તત્રાર્થમંવન્ધ-મિચ્છેદ્યત્ર ન મૌહ્દમ્ ॥

યદ્વન્ધ્યા ન તિષ્ઠેન્ન, પ્રતિષ્ઠાન્નંગમીરુકઃ ॥ ૬૦ ॥

અર્થ:—ત્યાં મિત્રાઈ કરવાની ઇચ્છા ન હોય, ત્યાં
પૈસા સંગ્રહી લેવડદેવડનો સંગ્રહ રાખવો. પોતાની પ્રતિ-
ષ્ઠાના (આબરૂના) લંગની બીક રાખી સ્વછંદપણે પણ
વર્તવું નહિ. (૬૦)

વ્યાપારિભિશ્ચ વિપ્રેશ્ચ, સાયુર્ધેશ્ચ વણિગ્વરઃ ॥

શ્રિયમિચ્છન્ન કુર્વીત, વ્યવહારં કદાચન ॥ ૬૧ ॥

અર્થ:—લકમીની ઇચ્છા કરનાર ઉત્તમ વણિકે ગ્રાહણ
વેપારી સાથે તથા સમ્બધારી (હથિયારખંધ) લોકો સાથે
કોઈ કાળે વ્યવહાર ન કરવો. (૬૧)

નટે પળ્યાઙ્ગનાયાં ચ, દ્યૂતકોદે વિદે તથા ॥

દ્વ્યાદુદ્ધારકે નૈવ, ધનરક્ષાપ્રણયનઃ ॥ ૬૨ ॥

અર્થ:—જે વણિક પોતાનું ધન આંચવવા ઇચ્છતો
હોય, તેણે નટ, વેશ્યા, બુગારી અને બ્દર પુરૂષ એમને
ઉધાર વસ્તુ આપવી નહિ. (૬૨)

ધર્મવાચાકરં યન્ન, યન્ન સ્યાદયજ્ઞસ્કરમ્ ॥

ભૂરિલાભમપિ ગ્રાહ્યં, પળ્યં પુણ્યાર્થિભિર્ન તત્ ॥ ૬૩ ॥

અર્થ:—પુણ્યના અર્થા પુરૂષોએ ધર્મની હાનિ અથવા
અપયશ કરે એવું કનિયાયું ગમે તેટલો લાભ થતો હોય
તોએ ખરીદવું નહિ. (૬૩)

ન યજ્ઞાર્જ્યતે કિચિ-ત્સ્યમાનતુલાદિભિઃ ॥

નશ્યતન્નૈવ દૃશ્યેત તપ્તપાત્રેઽમ્બુવિન્દુવત્ ॥ ૬૪ ॥

અર્થ — જો માણસ ખોટા કાટલા તવા ત્રાજના રા-
ખીને થોડું ઘણું ધન કમાય છે, તેમનું તે ધન નાશ પા-
મતા, તપાયલી તાવડી ઉપર પડેલા જળગિદ્ડની જેમ દે-
ખાતું નથી (૬૪)

ર્ગવં ન્યાસાપહારં ચ, ઘણિકપુત્રઃ પરિત્યજેત્ ॥

અઙ્ગીકુર્યાત્ક્રમાયેકા, ભૂપતાં દુર્ગતેઽપિ ચ ॥ ૬૫ ॥

અર્થ — ઘણિકપુત્રે ગર્વ અને વાપણ મોનો એ જાનેને
મૂકી દેવા, અને ગત તવા રહ જાનેને વિશે એક ક્ષમા
નાખવી (૬૫)

સ્વચ્છસ્વભાવા વિશ્વસ્તા, ગુરુનાયકવાલકાઃ ॥

દેયા ટુઢાશ્વ ન પ્રાજ્ઞૈર્વશ્ચનીયા, કદાચન ॥ ૬૬ ॥

અર્થ — કાઠ્યા માણસોએ નિર્મળ સ્વભાવના અને પો-
તાની ઉપર વિશ્વાસ રાખનારા, પોતાના ગુરુ, નાયક, બા-
ળક, દેવ અને વૃદ્ધ માણસ એટલાને કોઈ કાળે પણ કગવા
નહિ (૬૬)

માર્વ્યં પ્રતિભુવા નૈવ, દાક્ષિણ્યેન ચ સાક્ષિણા ॥

કોશપાનાદિક ધૈવ, ન કર્તવ્ય યતસ્તતઃ ॥ ૬૭ ॥

અર્થ — કાઠ્યા પુરૂષે કોઈની દાક્ષિણ્યતાથી જામીન અ-
થવા માશી ન વધુ તેમજ ન્યા ત્યાથી કોશપાન (મોગન્દ)
પ્રમુખ ન કરવું (૬૭)

સાધ્યર્થે જીવેરક્ષાયે, ગુરુદેવગૃહાદિષુ ॥

મિથ્યાકૃતૈરપિ નૃણાં, શપથૈર્નાસ્તિ પાતકમ્ ॥ ૬૮ ॥

અર્થ:—સાધુ, જીવરક્ષા, ગુરુ, દેવ અને જીનમંદિર એમને અર્થે મિથ્યા સપથ (સમ) ખાય તો પણ તેમાં માણસને પાપ નથી. (૬૮)

અસંપત્ત્યા સ્વમાત્માનં, નૈવાવગળયેદ્દુયઃ ॥

કિંતુ કુર્યાદ્યથાશક્તિ, વ્યવસાયમુપાયવિત્ ॥ ૬૯ ॥

અર્થ:—જાણુ પુરૂષે નિર્ધનપણું હોય તોએ પોતાના આત્માની નિંદા ન કરવી. પણ ઉપાય શોધી જાણી શક્તિમાદક ધન ઉપાર્જવાને અર્થે ઉદ્યમ કરવો. (૬૯)

વૃષ્ટિશીતાતપક્ષોભ—કામમોહશુધાદયઃ ॥

ન વ્રન્તિ યસ્ય કાર્યાણિ, સૌઽગ્રણીર્વ્યવસાયિનામ્ ॥૭૦॥

અર્થ:—વૃષ્ટિ (વરસાદ), શીત (ઠાઠ), આતપ (તડકો), ક્ષોભ (ક્રોધાદિકથી ચિત્તની ચંચલતા), કામ, મોહ, શુધા પ્રમુખ વિકાર જેનાં કાર્યને હરકત કરી શકતા નથી, તે પુરૂષ શ્રેષ્ઠ વ્યવસાયી જાણવો. (૭૦)

યો દ્યૂતધાતુંવાદાદિ—સંવન્ધ્યાદ્ધનમીહતે ॥

સ મર્ષીકૂર્ચકૈર્ધામ—ધવલીર્કર્તુમિચ્છતિ ॥ ૭૧ ॥

અર્થ:—જે પુરૂષ જુગારથી અથવા કિમિયાથી ધન મેળવવાની ઇચ્છા કરે છે, તે પોતાના ઘરને મસીની પીછીથી ધોળું કરવા ઇચ્છે છે એમ જાણવું. (૭૧)

અન્યાયિદેવપાશવિન્દિ—તદ્ધનનાં ધનેન યઃ ॥

વૃદ્ધિમિચ્છતિ મુશ્યોઽસૌ, વિષમાત્તિ જિજીવિષુઃ ॥૭૨॥

અર્થ —જે પુરૂષ અન્યાયી, દેવ, પાખડી અને દુષણ એમના ધનથી પોતે ધનવાન થવાની ઇચ્છા કરે, તે પુરૂષ જીવવાની ઇચ્છાથી ઝેર ખાય છે, એમ સમજવું (૭૨)

ગોદેવકરણારક્ષ-તલાયર્તકપટ્કાઃ ॥

ગ્રામ્યોત્તરશ્ચ ન પ્રાયઃ, સુખાય પ્રમગ્નત્યમી ॥ ૭૩ ॥

અર્થ —ગાય, દેવ અને ખેતર એમના રખવાલ, તલાવ, પટેલ અને ગામડીયા એટલા લોકો પ્રાયે કોઈને મુખ દેતાજ નથી (૭૩)

અભિગમ્યો નૃભિર્યોગ-ક્ષેમસિદ્ધયર્થમાત્મનઃ ॥

રાજાદિનાયકઃ કશ્ચિ-દિન્દુનેત્ર દિવાકરઃ ॥ ૭૪ ॥

અર્થ —અદ્દ એમ પોતાનું તેજ મેળવવા માટે સૂર્ય પાસે જાય છે, તેમ હાહા પુરૂષે પોતાના કટ્યાણુની સિદ્ધિને અર્થે કોઈ રાજા પ્રમુખ નાયક પાસે જવું (૭૪)

નિન્દન્તુ માનિનઃ સેવા, રાજાદીના મુર્ખૈષિણઃ ॥

સ્વજનાસ્વજનોદ્ધાર-સંહારૌ ન તયા વિના ॥ ૭૫ ॥

અર્થ —મુખની ઇચ્છા કરનાર અહંકારી પુરૂષો રાજા પ્રમુખની સેવાને લલે નિહો, તોપણ તે વિના સ્વજનનો ઉદ્ધાર અને વેરીનો સહાર થતો નથી (૭૫)

અકર્ણદુર્બલ શૂરઃ કૃતઙ્ગઃ સાત્ત્વિકો ગુણી ॥

વદાન્યો ગુણરાગી ચ, પ્રમુઃ પુર્ણૈરવાપ્યતે ॥ ૭૬ ॥

અર્થ —કાનનો કાચો નહીં, કર્યા ઉપકારનો જાણુ, મત્વશાલી, શુણી, ઉદાર અને શુણરાગી એવો પ્રમુ (માલીક) પુણ્યથીજ મળી શકે છે, (૭૬)

નુતન્નઃ નુપવિત્રાત્મા, સેવકાગમનમ્પૃદ્ધા ॥

ઔચિત્યવિત્તમી દક્ષઃ, સત્ત્વજ્ઞો દુર્લભઃ પ્રભુઃ ॥૭૭॥

અર્થઃ—શાસ્ત્રનો આરો બાણ. પવિત્ર ચિત્તવાળો, સેવકના આવવાની ઇચ્છા કરનારો, ઉચિત કર્તવ્યનો બાણ, ક્ષમાશીલ, દક્ષ અને શરમવાળો એવો પ્રભુ (માલીક) મળવો દુર્લભ છે. (૭૭)

વિદ્વાનપિ પરિત્યાજ્યો, નેતા મૂર્ખજનાવૃતઃ ॥

મૂર્ખોઽપિ સેવ્ય એવાસૌ, વદ્વશ્રુતપરિચ્છદઃ ॥૭૮॥

અર્થઃ—પ્રભુ ગમે તેવો વિદ્વાન્ હોય તો પણ તે જો મૂર્ખ લોકોનો પરિવાર રાખતો હોય તો તેને છોડી દેવો. અને જો પ્રભુ પોતે મૂર્ખ છતાં પણ પાસે વિદ્વાન્ તથા અનુભવી લોકોનો પરિવાર રાખતો હોય, તો તે (પ્રભુ) સેવવા યોગ્ય બાણવો. (૭૮)

સ્વામિ સમાર્વિતૈશ્વર્યઃ, સેવ્યઃ સેવ્યગુણાન્વિતઃ ॥

મુક્ષેત્રવીજવત્કાલાન્તરેઽપિ સ્યાન્ન નિષ્ફલઃ ॥૭૯॥

અર્થઃ—જેનામાં સ્વામીના સર્વ ગુણ હોય, તથા જેને લક્ષ્મીપણ મળવાનો સંભવ હોય, એવા સ્વામીની સેવા કરવી. કારણ, સારા ક્ષેત્રમાં વાવેલા ખીજની પેઠે કાલાંતરે પણ તેની સેવા નિષ્ફળ થાય નહીં. (૭૯)

સ્વામિભક્તો મહોત્સાહઃ, કૃતજ્ઞો ધાર્મિક શુચિઃ ॥

અર્કકેશઃ કુલીનશ્ચ, સ્મૃતિજ્ઞઃ સત્યભાષકઃ ॥ ૮૦ ॥

વિનીતઃ સ્થુલલક્ષ્ણશ્ચ—વ્યસનો વૃદ્ધસેવકઃ ॥

અંતન્દ્રઃ સત્ત્વસંપન્નઃ, પ્રાજ્ઞઃ શૂરોઽચિરક્રિયઃ ॥૮૧॥

રાજા પરીક્ષિતઃ સર્વો-પવાસુ નિજદેશજઃ ॥

રાજાર્યસ્વાર્યલોકાર્ય-કારકો નિઃસ્પૃહઃ શમી ॥ ૮૦ ॥

અમોઘવચનઃ કલ્પઃ, પાલિતાશેષદર્શનઃ ॥

પાત્રૌચિત્યેન સર્વત્ર નિયોજિતપદક્રમઃ ॥ ૮૧ ॥

આન્વીક્ષિકીત્રયીવાર્તા-દણ્ડનીતિકૃતશ્રમઃ ॥

ક્રમાગતો વણિકપુત્રઃ, સેવ્યો મત્રી નચાપરઃ ॥ ૮૨ ॥

અર્થ — પોતાના સ્વામી ઉપર ભક્તિ કરનારો, ધણો ઉત્તમાદી, કર્યા ઉપકારનો ભણુ, ધર્મ ઉપર શ્રદ્ધા રાખનારો, પવિત્ર, ડોમળ, કુલીન, સ્મૃતિનો જાણુ, સત્યવાદી, વિનય-સપન્ન, ઉદાર, વ્યવનથી દૂર રહેનારો, વૃદ્ધ પુરૂષોની સેવા કરનારો, આલસ્યરહિત, સત્યગાલી, બુદ્ધિરાળી, શુર, શીઘ્ર કાર્ય કરનારો, ભક્તિ, નિષ્કામ બુદ્ધિ, ધૈર્ય અને પ્રહ્લાદવ્રત એ ચાર વાતમા ગતએ માગી પેઠે પારખેલો, પોતાના દેગમા ધએલો, રાજાના પોતાના અને લોકોના કાર્ય શુ ચલણમા ન પડતા કરનારો, નિરિન્દિ, ગાત, બોલે તે પ્રમાણે કરનારો, સમર્થ, સર્વે દર્શનનુ રક્ષણ કરનારો, પાત્રની યોગ્યતા જોઈને સર્વ ઠેકાણે પગ મૂકનારો, આન્વીક્ષિકી, ત્રયી, વાર્તા અને દંડ નીતિ એ ચાર નીતિમા મોટો અભ્યાસ કરી રહેલો એવા વશપરપરાએ આવેલા વણિકપુત્રને રાજાએ મત્રી કર્યો, બીજાને નહીં (૮૦) (૮૧) (૮૨) (૮૩) (૮૪)

અભ્યાસી વાહને શસ્ત્રે, શસ્ત્રે ચ વિજયી રણે ॥

સ્વામિમક્તો જિતાયાસઃ, સેવ્યઃ સેનાપતિ ત્રિયે ॥ ૮૫ ॥

અર્થ — વાહન, શસ્ત્ર અને શાસ્ત્ર એ ત્રણેનો અભ્યાસ

કરી રહેલો, અંગ્રામમાં વિનય મેળવનારો, સ્વામી ઉપર લકિત રાખનારો અને ગમે તેટલો શ્રમ થાય તોયે કાયર ન થનારો એવો સેનાપતિ રાત્રે પોતાની કદિને અર્થે કરવો. (૮૫)

અવશ્વકઃ સ્થિરઃ પ્રાજ્ઞઃ, પ્રિયવાગ્વિક્રમી શુચિઃ ॥

અનુચ્ચઃ સોદ્યમો ભક્તઃ, સેવકઃ સન્નિરિપ્યતે ॥૮૬॥

અર્થઃ—વંચના ન કરનારો, સ્વભાવનો ઠરેલો, બુદ્ધિશાળી, મધુર વચ્ચન બોલનારો, પરાક્રમી, પવિત્ર, નિર્દોષી, ઉદ્યમ વંત અને સ્વામી ઉપર લકિત કરનારો એવો સેવક (ચાકર) ઉત્તમ પુરુષોને માન્ય છે. (૮૬)

સેવકઃ સુગુણો નમ્રઃ, સ્વામ્યાહૂતો વિશેત્સદા ॥

સ્વમાર્ગેણોચિતે સ્થાને, ગત્વા ચાસીત સંવૃતઃ ॥૮૭॥

અર્થઃ—શુણ્વંત સેવકે સ્વામી પોતાને બોલાવે ત્યારે વિનયથી પોતાને ઉચિત એવે માર્ગે સ્વામી પાસે જઈ ઉચિત સ્થાનકે અંગોપાંગ ઢાંકીને બેસવું. (૮૭)

આસીનઃ સ્વામિનઃ પાર્શ્વે, તન્મુખેક્ષી કૃતાજ્જાલિઃ ॥

સ્વભાવં ચાસ્ય વિજ્ઞાય, દક્ષઃ કાર્યાણિ સાધયેત્ ॥૮૮॥

અર્થઃ—સ્વામીની પાસે ઉચિત સ્થાને બેસીને સેવક હાથ જોડી સ્વામીના મુખ તરફ જુવે, અને તેનો સ્વભાવ જાણી દક્ષતાથી કાર્ય સાધે. (૮૮)

નાત્યાસન્નો ન દૂરસ્થો, ન સમોચાસનસ્થિતઃ ॥

ન પુરસ્થો ન પૃષ્ઠસ્થ-સ્તિષ્ઠેત્સ સદાસિ પ્રભોઃ ॥૮૯॥

અર્થઃ—સેવકે સ્વામી પાસે તેનાથી બહુ દૂર, બહુ

નજીકે, સગળા અથવા હિંચા આગન ઉપર, તેના મુખ આ-
ગળ અથવા પાછળ પણ ન જોવાય (૮૬)

આસન્ને સ્યાત્પ્રભોર્નાથા, દુરસ્યેડ્યપ્રગલ્ભતા ॥

પુરઃસ્થિતેડ્યકોપોડપિ, તસ્મિન્પથ્વાદદર્શનમ્ ॥૦૦॥

અર્થ — સેવકે સ્વામી પાસે જઈ નજીકે જોયે તો સ્વા-
મીને હરકત થાય, જઈ દૂર જોયે તો ધ્યાન પહોંચાડાય
નહીં, આગળ ઉભો રહે તો બીજા લોકોને ટોપ ઉપજે,
અને પછવાડે જોયે તો દેખાય નહીં. (૮૦)

પ્રમુખિયે પ્રિયત્વં ચ, તદ્વરિણિ ચ વૈરિતા ॥

તસ્યૈવાચ્યભિચારેણ, નિત્ય વર્તેત સેવકઃ ॥૯૧॥

અર્થ — સેવકે પોતાના પ્રભુને જે માણુમ પ્રિય હોય
તેની જોડે પ્રીતિ રાખવી, અને પોતાના પ્રભુનો જે વેરી
હોય તેની જોડે દંર રાખવું એ વાતમા દેર ન પડે તેમ
હમેશા આચરવું (૮૧)

પ્રસાદાત્સ્વામિના દત્ત, વસ્ત્રાલકારણાદિકમ્ ॥

પ્રીત્યા ધાર્ય સ્વયં દેય, નાન્યસ્મૈ ચ તદગ્રતઃ ॥૯૨॥

અર્થ — સેવકે સ્વામીએ ખુશી વધ આપેલા વસ્ત્ર તથા
આભરણ પ્રમુખ પ્રીતિથી પોતે પહેરવા પણ સ્વામીના દેખતા
કોઈ બીજાને આપવા નહીં (૮૨)

સ્વામિનોડ્યધ્યવિકો વેપઃ, સમાનો યા ન યુજ્યતે ॥

સ્તસ્ત વસ્ત્ર ક્ષુત જૃમ્ભા, નેક્ષેતાસ્ય ક્ષિય તથા ॥૯૩॥

અર્થ — સેવકને પોતાના સ્વામિ કરતા અધિક સાસે અ

થવા તેના સરખો વેપ પહેરવા યોગ્ય નથી. તથા સ્વામીનું વ-
રા સ્થાનકથી ખસી ગયું હોય, અથવા તે છીંક દિ'વા બગાસું
ખાતો હોય, તો તે તરફ જોવું નહીં. તથા તેની સ્ત્રીને પણ
જોવી નહીં. (૯૩)

વિજૃમ્ભણક્ષુતોદાર-દાસ્યાદીન્નિપિત્તાનનઃ ॥

કુર્યાત્સમાસુ નો નાસા-ગોધનં હસ્તમોટનમ્ ॥૯૪॥

અર્થ:—સેવકે સભામાં બગાસું, છીંક, ઓડકાર અને
હાસ્ય એટલાં વાનાં મુખ ઢાંકીને કરવાં, તથા નાક ખોતરવું
નહીં, અને હાથની આંગળી પ્રમુખ મોડવાં નહીં (૯૪)

કુર્યાત્પર્યસ્તિકાં નૈવ, નચ પાદપ્રસારણમ્ ॥

ન નિદ્રાં વિકથાં નાપિ, સમાયાં કુક્રિયાં નચ ॥૯૫॥

અર્થ:—સેવકે સભામાં પલાંઠી ન વાળવી, પગ પહોળાં
ન કરવાં, અને નિદ્રા, વિકથા તથા કોઈ પણ કુચેષ્ટા ન
કરવી. (૯૫)

શ્રોતવ્યા સાવધાનેન, સ્વામિવાગનુર્જીવિના ॥

ભાષિતઃ સ્વામિના જલ્પે-ન્ન ચૈકવચનાદિભિઃ ॥ ૯૬ ॥

અર્થ:—સેવકે સ્વામીની વાણી સાવધાન થઈ સાંભળવી.
અને પાછો જવાબ દેતાં સ્વામીને તુકાર વચનથી ન
બોલાવવા. (૯૬)

આજ્ઞાલાભાદયઃ સર્વે, યસ્મિલ્લૈકાત્તરા ગુણાઃ ॥

સ્વામિનં નાવજાનીયા-ત્સેવકસ્તં કદાચન ॥ ૯૭ ॥

અર્થ:—જે સ્વામીમાં ઉચિત આજ્ઞા તથા લાભ પ્રમુખ
સર્વે લૌકિકાત્તર ગુણ વસતા હોય, તે સ્વામીની સેવકે કદીપણ
અવજ્ઞા ન કરવી. (૯૭)

एकान्ते मधुरैर्जनैः, सान्त्वयन्नाहितात्प्रभुम् ॥

વારયેદન્યથા જિ સ્યાન્નૈવ સ્વયમુપેક્ષિતઃ ॥ ૯૮ ॥

અર્થ — સેવકે સ્વામીને એકાંતે લઈ જઈ મીઠા વચ્ચને શાત પાડી જોડું કામ કરતા અટકાવવા એમ ન કરે તો સ્વામીની ઉપેક્ષા કર્યાનો દોષ એવકને માટે આવે છે (૯૮)

मौनं कुर्यान्ना स्वामी, युक्तदध्ययग्नये ॥

પ્રભોરયે ન કુર્યાચ્ચ, પ્રેક્ષિણા ગુણકીર્તનમ્ ॥ ૯૯ ॥

અર્થ — જ્યારે સ્વામી થોડ્ય વાતને પણ ધિક્કારે, ત્યારે સેવકે મોન-કરી બેસવું તથા તેની આજ્ઞા તેના ધરીના ગુણ જાણા નહી (૯૯)

प्रभोः प्रसादे प्राप्तेऽपि, प्रहृत्तीर्निन प्रोषयेत् ॥

વ્યાપારિતશ્ચ કાર્યેષુ, યાચેતાયત્પૌરુષમ્ ॥ ૧૦૦ ॥

અર્થ — સેવકે સ્વામીની પોતાના ઉપર ઘણી દૃષ્ટા હોય તો પણ પ્રહૃતિને (નાન્યના આત અગને) ડોપાવવી નહી તથા લોઈ કાર્ય કરવા સ્વામીએ પ્રેરણા કરી હોય તો પોતાના ઉપરીનું જાળ માગવું (૧૦૦)

बोधममानैर्जिह्वै-रक्तिभिः सद्गयायया ॥

અનુરક્ત ત્રિગ્ત વા, જાનીયાશ્વ પ્રભોર્મનઃ ॥ ૧૦૧ ॥

અર્થ — સેવકે લોચના તથા પ્રમાદના ચિન્હ ઉપરથી, વર્ણવી અથવા ખીંચી લોઈ ન જાયી સ્વામીનું મનપ્રમદ છે કે અ પ્રમદન છે તે જાણવું (૧૦૧)

દ્વયો દ્વયે વૃત્તિઃ પાર્શ્વે, સ્થિતે વાસનદાયનમ્ ॥

સ્તિગ્ધોત્તિરુક્તકારિત્વં, પ્રસન્નપ્રમુલ્લગ્નમ્ ॥ ૧૦૨ ॥

અર્થ:—સેવકને જોતાંજ હૃદય પામે, પાસે રાખે, ઉભો હોય તો આસન દેવરાવે, રમેહયુક્ત વચન બોલે. કહેલું કામ કરે, એ પ્રસન્ન સ્વામીનાં લક્ષણ જાણવાં. (૧૦૨)

આપન્નુપેક્ષાનાત્પો, માનદ્વાનિરદર્શનમ્ ॥

દોષોત્તિરમદાનં ચ, વિરક્તપ્રમુલ્લગ્નમ્ ॥ ૧૦૩ ॥

અર્થ:—આપત્કાળ આવે ઉપેક્ષા કરે, બોલે નહિ, માન-હાનિ કરે, મુખ ન દેખાડે, દોષ બોલ્યા કરે, તથા કંઈ આપે નહિ, એ અપ્રસન્ન (ખફા) થએલા સ્વામીનાં લક્ષણ જાણવાં. (૧૦૩)

દોષેર્ણકેન ન ત્યાજ્યઃ, સેવકઃ સુગુણોઽધિર્ધઃ ॥

ધૂમદોષભયાદ્વહ્નિઃ, કિમ્ કેનાપ્યપાસ્યતે ॥ ૧૦૪ ॥

અર્થ:—સ્વામીએ માત્ર એકજ દોષથી શુભવંત સેવકનો ત્યાગ ન કરવો. કારણ, ધુમાડાના દોષથી અગ્નિનો કોણ ત્યાગ કરે ? (૧૦૪)

વલાદવિચલઃ શ્લાઘ્યો, ધનાત્પુરુષસંગ્રહઃ ॥

અસદ્વ્યર્જ્યતે વિત્તં, પુરુષૈર્વ્યવસાયિભિઃ ॥ ૧૦૫ ॥

અર્થ:—સેવક પ્રમુખનું બળ ઘણું હોવાથી જે કેમથી ચલાયમાન થઈ શકે નહીં એવો હોય તે મનુષ્ય વખાણવા લાયક છે. બળવાન પુરુષનો સંગ્રહ ધનથી કરાય છે, અને તે ધન પહેલાં ન હોય તોએ વ્યવસાયી પુરુષોજ વ્યવસાયથી ઉપાર્જન કરી શકે છે. તાત્પર્ય, વ્યવસાય કરવાથી ધન મળે

છે, ધનથી મારા માણસ પામે ગળાય છે, અને સારા માણસનું બળ હોય તો તેને કાંઈ ચલાવી શકતો નથી, અને એવોજ પુરૂષ જગત્માં સ્તુતિપાત્ર છે (૧૦૫)

जनल्पैः किमहो जल्पै-व्यवसायः त्रियौ मुखम् ॥

अर्ज्या श्रीः सा च या वृद्धयै, दानयोगकरी च गा ॥१०६॥

અર્થ — ધણુ શુ કહિએ ? વ્યવસાય (હિતમ) તે લક્ષ્મીનું

આવવાનું દ્વાર છે માટે જે લક્ષ્મીથી દ્રવ્યની વૃદ્ધિ, દાન અને ભોગ એ ત્રણ પાના થાય છે, તે લક્ષ્મીનું (વ્યવમાયથી) અવશ્ય ઉપાર્જન કરવું (૧૦૬)

व्यग्राये निमौ अर्मे-भोगयोः पौष्यपोषणे ॥

चतुरश्वतुरगे भागा-नायस्यैव नियोजयेत् ॥१०७॥

અર્થ — વ્યવમાય કરતા જે લાભ થાય તેના ચતુર પુરૂષે ચાર ભાગ કરવા તેમાં એક ભાગ લડાગમાં, બીજો ધર્મમાં, ત્રીજો ભોગમાં અને એથો કુટુંબના પોષણમાં લગાડવો (૧૦૭)

न लालयति यो लक्ष्मीं, शाल्सीयाविधिनामुना ॥

सर्वयैव स निःशेष-पुरुषार्थमहिष्कृतः ॥१०८॥

અર્થ — જે મનુષ્ય શાસ્ત્રમાં કહેલી વિધિ પ્રમાણે લક્ષ્મી ને લડાવતો નથી, તે પુરૂષ આરે પુરૂષાર્થની બહાર બાળવો (૧૦૮)

सा च सजायते लक्ष्मी-रक्षीणा व्यवसायतः ॥

प्रावृषेण्यपयोवाहा-दिव काननकाम्यता ॥१०९॥

અર્થ — જેમ વર્ષાકાળના મેઘથી વનની શોભા અખુટ વધે છે તેમ વ્યવસાય (હિતમ) કરવાથી લક્ષ્મી અખુટ વધે છે (૧૦૯)

વ્યવસાયોઽપ્યસૌ પુણ્ય-નૈપુણ્યસચિવો ભવેત્ ॥

સફલઃ સર્વદા પુંસાં, વારિસેકાદિવ દ્રુમઃ ॥૧૧૦॥

અર્થઃ—જેમ પાણી સીંચવાથી વૃક્ષ સફળ થાય છે, તેમ પૂર્વભવના પુણ્યનું અને મનુષ્યની નિપુણતાનું સાંહ્યાય મળવાથી વ્યવસાય સફળ થાય છે. (૧૧૦)

પુણ્યમેવ મુહુઃ કેઽપિ, પ્રમાણીકુર્વતેઽલસાઃ ॥

નિરીક્ષ્ય તદ્વતાં દ્વારિ, તામ્યતો વ્યવસાયિનઃ ॥૧૧૧॥

અર્થઃ—કેટલાએક આગસુ દોકો પુણ્યવંતને ઘરે રખડતા વ્યાપારીઓને જોઈને હમેશાં પુણ્યપરજ આધાર રાખે છે. (૧૧૧)

તદયુક્તં યતઃ પુણ્ય-મપિ નિર્વ્યવસાયકમ્ ॥

સર્વથા ફલવન્નાત્ર, કદાચિદવલોકયતે ॥૧૧૨॥

અર્થઃ—તે વાત અયુક્ત છે. કારણ, પુણ્ય પણ સર્વથા ઉદ્યમ વિના સફળ થએલું આ લોકમાં કોઈ કાળે પણ દેખાતું નથી. (૧૧૨)

દ્વાવપ્યેતૌ તતો લક્ષ્મ્યા, હેતૂ નતુ પૃથક્પૃથક્ ॥

તૈન કાર્યો મૃદસ્યેન, વ્યવસાયોઽનુવાસરમ્ ॥૧૧૩॥

અર્થઃ—પૂર્વભવનું પુણ્ય અને ઉદ્યમ એ બન્ને ભેગાં લક્ષ્મીનાં કારણ છે. પણ એમાં એક વગર બીજો સ્વતંત્રપણાથી લક્ષ્મીનું કારણ થઈ શકતો નથી. માટે મૃદસ્થ મનુષ્યે પ્રતિદિન ઉદ્યમ કરવો. (૧૧૩)

કાલેઽન્નમુચિતં વસ્ત્ર-મમલ સદન નિજમ્ ॥

અર્થોઽર્થ્યાપ્યાયકર્તૃત-દ્વયવસાયતરોઃ ફલમ્ ॥ ૧૧૮ ॥

અર્થ —આવનર ઉપર ઉચિત ભોજન કરવું, ઉચિત વસ્ત્રો પહેરવા, પોતાનું ઘર ચોખ્ખું રાખવું, તથા યાચકોને સંતોષ થાય એટલું દ્રવ્ય આપવું, એ ઉદ્યમરૂપ વૃત્તના રૂઢ બાણવા [૧૧૪]

ઇત્યં કિલ દ્વિતીય-તૃતીયમહાર્થકૃત્યમસ્તિલમ્પિ ॥

હૃદિ કુર્વન્તેઃ સન્તઃ, કૃત્યવિદો નાત્ર મુહ્યન્તિ ॥ ૧૧૯ ॥

इति भोजितदत्तसुगविरचिते शिवकविलासे दिनचर्याया

द्वितीय उद्घास ॥ १ ॥

અર્થ —એવી રીતે સંપૂર્ણ બીજા પ્રહરના તથા ત્રીજા અર્ધા પ્રહરના સમગ્ર કૃત્યો કહ્યા જે સત્પુરૂષોએ કૃત્યોને મનમાં રાખે છે તે કૃત્વા યોગ્ય કામમાં કદી યશ્ચ સુજાતા નથી [૧૧૫]

इति श्रीविवेकविलासनी गुर्जरभाषाया

द्वितीय उद्घास संपूर्ण.

अथ तृतीय उद्घासः ।

बहिःस्थोऽभ्यागतो गेह-मूषविश्य क्षण मुग्धीः ॥

कुर्वाद्दम्भपरावर्त, देहसौचादि कर्म च ॥ १ ॥

અર્થ —જાતવું પુરૂષે બહારથી ઘેર આવી દામમાં જોડાયે પછી પહેરેલા વસ્ત્રો બદલવા, અને દેહની સુદ્ધિને અથે રનાવવા વગેરે કર્મો કરવા [૧]

સ્થૂલસૂક્ષ્મવિભાગેન, જીવાઃ સંસારિણો દ્વિધા ॥

મનોવાક્યાયૈગૈસ્તાન્, ગૃહી દ્વન્તિ નિરન્તરમ્ ॥૨॥

અર્થ:—સંસારી જીવ સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મ એવા બે પ્રકારના છે. તેમને ગૃહસ્થ મનુષ્ય હોમેશાં મન, વચન અને કાયા એ ત્રણેના યોગથી હોય છે. (૨)

પેપળી કણ્ડની ચુલ્લી, ગર્ગરી વર્ચની તથા ॥

અમી પાપકરાઃ પન્ન, ગૃહિણો ધર્મનાથકાઃ ॥૩॥

અર્થ:—ધંટી, ખાંડણી, ચૂલો, ગાગર અને સાવરણી એ પાંચે પાપકારક વસ્તુ ગૃહસ્થના ધર્મને બાધા કરનારી છે. (૩)

ગદિતોસ્તિ ગૃહસ્થસ્ય, તત્પાતકવિઘાતકઃ ॥

ધર્મઃ સવિસ્તરો બુદ્ધૈ-રશ્રાન્તં તં સમાચરેત્ ॥૪॥

અર્થ:—તે પાતકોનો નાશ કરનાર એક ધર્મજ છે. તે જ્ઞાની લોકોએ ઘણા વિસ્તાર સહિત કહેા છે. સત્પુરુષોએ તે ધર્મ નિરંતર આચરવો. [૪]

દયા દાનં દમો દેવ-પૂજા ભક્તિર્ગુરૌ ક્ષમા ॥

સત્યં શૌચં તપોઽસ્તેયં, ધર્મોઽયં ગૃહમેધિનામ્ ॥૫॥

અર્થ:—દયા, દાન, ઇન્દ્રિય દમન, દેવની પૂજા, ગુરુ ઉપર ભક્તિ, ક્ષમા, સત્ય, પવિત્રતા, તપસ્યા અને ચોરી ન કરવી એ દસ પ્રકારનો ગૃહસ્થનો ધર્મ છે. (૫)

અનન્યજન્યં સૌજન્યં, નિર્માયા મધુરા ગિરઃ ॥

સારઃ પરોપકારઃ, ક્રમો ધર્મવિદામયમ્ ॥૬॥

અર્થ:—સર્વોત્તમ સજ્જનતા રાખવી, કપટરહિત મીઠાં વચન બોલવાં, અને સારભૂત પરોપકાર કરવો, એ ધર્મના બે શુરુ પુરુષોની રીતિ છે. (૬)

દીનોદ્ધરણમદ્રોહો, વિનયેન્દ્રિયસયમૌ ॥

ન્યાય્યા વૃત્તિર્મુદુત્વ ચ, ધર્મોઽય પાપ્મનીઽઝેદ ॥૭॥

અર્થ — દીન જનનો ઉદ્ધાર કરવો, કોઈની જોડે મત્સર ન કરવો, વિનય કરવો, ઇ દ્રિયો વશ રાખવી, ન્યાય માર્ગે ચાલવું, અને કોમળતા રાખવી, એ ધર્મથી પાપનો નાશ વાય છે (૭)

કૃત્વા માઝ્યાદિકાં પૂજા, નિરેશ્યાન્નાદિ ભાજને ॥

નરઃ સ્વગુરુદેવેભ્યોઽન્યદેવેભ્યશ્ચ ઠાકયેત્ ॥૮॥

અર્થ — મનુષ્યે મધ્યાન્હ કાળની પૂજા કરી પાત્રમાં અન્નાદિક મૂકી ધરમાં તથા મદિગમાં રહેલી જિનપ્રતિમા આગળ નેવેલા ધરવું (૮)

અનાદૃતમવિજ્ઞાત, દાનકાલસમાગતમ્ ॥

જાનીયાદતિથિં પ્રાણ, ઇતસ્માવ્યત્પયે પગમ્ ॥૯॥

અર્થ — જે અજાણ્યો મનુષ્ય જોલાંબ્યા વિના દાન દેવાને અવસરે આગિતો આવીને ઉભો રહે, તેને જાણુ પુરૂષે અતિથિ જાણવો એવો ન હોય નો પદાત્મો કહેવાય (૯)

અતિર્યાનર્થિનો દુઃસ્થાન્, મક્તિશત્તયનુકમ્પનઃ ॥

કૃત્વા કૃતાર્થનાંચિત્યા-દ્વેક્તુ યુક્તં મહાત્મનામ્ ॥૧૦॥

અર્થ — મહાત્મા પુરૂષોએ અનિર્થિને ભક્તિથી, યાચકને શક્તિ માફક તથા દીનને દયાથી દેશકાળને અનુમત્તુ દાન દઈને પછી પોતે ભોજન કરવું યુક્ત છે (૧૦)

આર્તસ્તૃણાપુધાભ્યાં યો, વિવસ્તો વા સ્વમન્દિરમ્ ॥

આગતઃ મોઽતિથિ પૂજ્યો, ત્રિશ્ત્રેણ મનોપિણા ॥૧૧॥

અર્થ:—સુબાણ પુરૂષે તૃપાથી તથા ક્રુધાથી પીડાતા અને
ખીક પામેલા એવા પોતાને ઘરે આવેલા લોકોને અતિથિ
નાણી તેમની વિશેષ પૂજા (આદરમાન) કરવી બેઠયે. (૧૧)

કોવિદ્રો વાથવા મૂર્ખો, મિત્રં વા વાદિ વા રિપુઃ ॥

નિદાનં સ્વર્ગભોગાના-મશનાવસરેડતિથિઃ ॥૧૨॥

અર્થ:—પડિત અથવા મૂર્ખ, મિત્ર અથવા શત્રુ ગમે તે
હોય, તોપણ તે જો ભોજનને અવસરે અતિથિ તરિકે આવે.
તો તે સ્વર્ગગુણનો આપનાર સમજવો. (૧૨)

ન પ્રશ્નો જન્મનઃ કાર્યો, ન ગોત્રાચાર્યોરપિ ॥

નાપિ શ્રુતસમૃદ્ધીનાં, સર્વધર્મમયોડતિથિઃ ॥૧૩॥

અર્થ:—જે અતિથિ આંચે હોય તેને તેના જન્મનો,
ગોત્રનો તથા સંપ્રદાયનો પ્રશ્ન ન કરવો. તેમજ તેના જ્ઞાનની
પણ પૃચ્છા ન કરવી. કારણ, અતિથિ તરિકે આંચે તે સર્વ
ધર્મમય હોય છે. (૧૩)

તિથિર્પર્વહર્ષશોકા-સ્ત્યક્તા યેન મહાત્મના ॥

ધીમદ્ધિઃ સોડતિથિર્જ્ઞેય, પરઃ પ્રાધૂર્ણિકો મતઃ ॥૧૪॥

અર્થ:—જે મહાપુરૂષે તિથિ, પર્વ, હર્ષ, શોક પ્રમુખ
અંસારનાં કર્મ છોડ્યાં, તેને પડિત પુરૂષોએ અતિથિ નાણવો.
અને એથી અન્ય હોય તે તો પરોણો નાણવો. (૧૪)

મદિરાદિમુખો यस્ય, ગચ્છત્યતિથિપુદ્ગલઃ ॥

જાયતે મહત્તી તસ્ય, પુણ્યહાનિર્મનસ્ત્રિનઃ ॥૧૫॥

અર્થ:—અતિથિ નિરાશ થઈ જેના ઘરથી પાછો જાય, તે

માણુમ ગમે તેટલો જાણ હોય તોપણ તેના પુણ્યની મોટી
હાનિ થાય છે. (૧૫)

अतिथिर्यस्य भग्नशो, गृहत्प्रतिनिवर्तते ॥

સ તસ્મૈ દુષ્કૃત દત્વા, પુણ્યમાદાય ગચ્છતિ ॥૧૬॥

અર્થ — અતિથિ જેના ઘરથી આશાભગ થવાને લીધે
પાછો જાય છે, તે (અતિથિ) તે ઘરધણીને પાપ દઈ પુણ્ય લઈ
જાય છે (૧૬)

एकतः कुरुते वाञ्छा, वासवः कीटिकान्यतः ॥

આહારય તતો વસે-ર્દાનં દેય શુભાર્થિભિઃ ॥૧૭॥

અર્થ — એક દેશથી ઇંદ્ર આહારની વાછા કરે છે, અને
બીજી દેશથી એક કીટી પણ આહારની વાછના કરે છે માટે
ગુલ બાધના અર્ધી દક્ષ પુરૂષોએ અવશ્ય દાન દેવું. (૧૭)

शुभास्त्रीवस्य जीवस्य, पञ्च नश्यन्त्यसत्रयम् ॥

શુભાસનેન્દ્રિયવલં, ધર્મકૃત્ય રતિઃ સ્મૃતિઃ ॥૧૮॥

અર્થ — શુભાશ્રી પીડાતા મનુષ્યની સારી વામના, ઇન્દ્રિયો
તુ બળ, ધર્મતુ જ્ઞાય, ચિત્તની મમાધિ અને સ્મૃતિ (યાદદારતી)
એ પાચેનો નાશ થાય છે (૧૮)

देवसाधुपुरस्वामे-स्वजनव्यसनादिषु ॥

ગ્રહણે ચ ન મોક્તવ્યં, સત્યા શ્રક્તૌ વિવેકિના ॥૧૯॥

અર્થ — વિવેકી પુરૂષે દેવ, સાધુ, નગરનો રાજા તથા પો
તાના સ્વજન ઠઈ સંકટમાં આવી પડ્યા હોય, અથવા સૂર્ય
અદ્રતુ ગ્રહણ થતુ હોય તો ભોજન ન કરવું (૧૯)

પિતુમાતુઃ શિશૂનાં ચ, ગર્ભિણીવૃદ્ધરોગિણામ્ ॥

પ્રથમં ભોજનં દત્ત્વા, સ્વયં ભોક્તવ્યમુત્તમઃ ॥૨૦॥

અર્થ:—ઉત્તમ પુરૂષોએ પિતા, માતા, બાળક, ગર્ભવતી, સ્ત્રી, વૃદ્ધ માણસ અને રોગી એ સર્વેને લોજન કરીને પછી પોતે જમવું. (૨૦)

ચતુષ્પદાનાં સર્વેષાં, ધૃતનાં ચ તથા નૃણામ્ ॥

ચિન્તાં વિધાય ધર્મજ્ઞઃ, સ્વયં મુઞ્જીત નાન્યથા ॥૨૧॥

અર્થ:—ધર્મના જાણુ મનુષ્યે પોતાના સર્વે પશુઓની તથા તાણાના માણસોની ખગર લીધા પછી પોતે લોજન કરવું. તે વગર નહીં. (૨૧)

અગ્નાવુદીર્ણે જાતાયાં, વુમુક્ષાયાં ચ ભોજનમ્ ॥

આયુર્વલં ચ વર્ણં ચ, સંવર્ધયાતિ દેહિનામ્ ॥ ૨૨ ॥

અર્થ:—જઠરાગ્નિ પ્રદીપ્ત થાય, અને ખાવાની ઇચ્છા થાય, ત્યારે લોજન કરવાથી મનુષ્યનું આયુષ્ય, બળ અને શરીરની ક્રાંતિ વધે છે. (૨૨)

અર્જીર્ણે પુનરાહારો, ગૃહ્યમાણઃ પ્રક્રોધયેત્ ॥

વાતં પિત્તં તથા શ્લેષ્મં-દોષમાશુ શરીરિણામ્ ॥ ૨૩ ॥

અર્થ:—ખાધેલું પચન થયા વગર ઉપરથી વળી આહાર કર્યો હોય, તો માણસના વાત, પિત્ત તથા કફ એ ત્રણે દોષનો પ્રકોપ થાય છે. (૨૩)

રોગોત્પત્તિઃ કિલાર્જીર્ણા-ચતુર્ધા તત્પુનઃ સ્મૃતમ્ ॥

રસશેષામવિષ્ટવ્ય-વિપક્વાદિવિભેદતઃ ॥ ૨૪ ॥

અર્થ — ખાધેલુ પચન ન થાય તે અણર્ણ કહેવાય છે સર્વે રોગોની ઉત્પત્તિ અણર્ણથી થાય છે તે અણર્ણ રસશેષ, આમ, વિદ્યુધ અને વિપકન એવા ચાર પ્રકારનું છે વળી બીજા પણ અણર્ણના પ્રકાર કહ્યા છે (૨૪)

રસશેષે ધવેજ્જૃમ્ભા, સમુદ્રારસ્તથામકે ॥

અદ્ભમદ્ભશ્ચ વિદ્યુન્વે, પ્રોદારો વિપકતઃ ॥ ૨૫ ॥

અર્થ — રસશેષ અણર્ણ થયું હોય તો બગામા આવે, આમ અણર્ણ થયું હોય તો ઓડકાર આવે, વિદ્યુધ અણર્ણ થયું હોય તો શરીર તૂટે, અને વિપકન અણર્ણ થયું હોય તો ધૂમ્રો બાહર પડતો હોય એમ લાગી ઓડકાર આવે (૨૫)

નિદ્રાનુવમનસ્વેદ-જલ્પાનાદિકર્મભિઃ

સદા પથ્યપિદા તાનિ, શાન્તિપાયાન્ત્યનુક્રમાત્ ॥ ૨૬ ॥

અર્થ — રસશેષ અણર્ણ હોય તો (ભોજન કરતા પહેલાં) સુઈ રહેવું, આમ અણર્ણ હોય તો ઉલટી કરવી, વિદ્યુધ અણર્ણ હોય તો પગસેવો કાઢવો, અને વિપકન અણર્ણ થયું હોય તો જળપાન કરવું નહીં એ પથ્યના બાણે માણુનોના ચારે પ્રકારના અણર્ણ ઉપર કહેલા ઉપાયથી અનુક્રમે શાન્તિ પામે છે (૨૬)

સ્વસ્થાનસ્થેષુ દોષેષુ, જીર્ણેઽધ્યવહતે પુનઃ ॥

સ્વાતા સ્પષ્ટૌ શ્વન્મૂત્ર-વેર્ગૌ વાતાનુલોમ્યતઃ ॥ ૨૭ ॥

અર્થ — શરીરમાં રહેલા કફ, વાત, અને પિત્ત એ ત્રણે એ પોત પોતાને ઠેકાણે રહેલા હોય, અને ખાધેલુ

પાચન થાય, ત્યારે કોઈમાં રહેલો વાયુ અનુલોભ (સીધી-
ગતિવાળો) હોવાથી મળમૂત્રના વેગ બુદ્ધિ આવે છે, એટલે
મળમૂત્ર સાફ થાય છે. (૨૭)

સ્તોતોમુખહૃદ્દ્વારા, વિગુહાઃ સ્પુઃ ક્ષણાત્તથા ॥

પટુન્વલ્લાયે રયાતાં, તથેન્દ્રિયશરીરયોઃ ॥ ૨૮ ॥

અર્થ:—અગુણાદિ વિકાર ન હોય તો મળમૂત્ર ત્યાગ
કરી રહ્યા પછી ક્ષણ માત્રમાં નાગિકા આદિક શરીરનાં
છિદ્ર તથા હૃદય શુદ્ધ થાય, એકાકાર દુર્ગંધરહિત તથા રસ
વિનાના શુદ્ધ આવે છે, અને ઇન્દ્રિયો તથા શરીર હલકાં અને
પોતાનું કામ કરવાને દક્ષ થાય છે. (૨૮)

અતિપાતશ્ચ સંધ્યાયાં, રાત્રૌ કુત્સન્નથ વ્રજન્ ॥

સ્વપ્નાંઘ્રૌ દત્તપાણિશ્ચ, નાદ્યાત્પાણિસ્થિતં તથા ॥ ૨૯ ॥

અર્થ:—સવારમાં બહુ વહેકું, સંધ્યાકાળે, રાત્રિએ,
અન્નની નિંદા કરતાં, રસ્તે જતાં, હાથા પગ ઉપર હાથ
મૂકીને તથા ખાવાની વસ્તુ હાથા હાથ ઉપર લઈને ભોજન
કરવું નહીં. (૨૯)

આકાશે સાતપે સ્નાન્ધ-કારે દ્રુમતલેઽપિ ચ ॥

કદાચિદપિ નાશ્વીયા-દૂર્ધ્વીકૃત્ય ચ તર્જનીન્મ્ ॥ ૩૦ ॥

અર્થ:—તદન બુદ્ધી જગ્યામાં, તડકામાં, અંધારામાં,
આડના તળે અને તર્જની (અંશુદા પાસેની) આંગળી ઉંચી
કરીને કોઈ સમયે પણ ભોજન કરવું નહીં. (૩૦)

અથૌતમુખહસ્તાંઘ્રિ-ર્નમથ મલિનાંશુકઃ ॥

સવ્યેન હસ્તેનોપાત્ત-સ્થાલો મુજ્જીત ન કચિત્ ॥ ૩૧ ॥

અર્થ — મુખ, હાથ અને પગ ધોયા વિના, નર અવ-
સ્થામાં, મલિન વસ્ત્ર પહેરીને તથા કાળે હાથે થાળી પકડી
ને ઢોધ કાળે ભોજન કરવું નહીં (૩૧)

एव रत्नान्वितश्चाद्रि-वासा वेष्टितमस्कः ॥

અપવિત્રોડતિગાદ્યેશ્વ, ન મુઝ્જીત ત્રિચક્ષણઃ ॥૩૨॥

અર્થ — વિશ્વેશ્વર પુરૂષે એક વસ્ત્ર પહેરીને, અથવા લીનું
વસ્ત્ર પહેરીને, વસ્ત્રથી માથું વીટીને, શરીર અપવિત્ર છતા
તથા ખાવાની વસ્તુ ઉપર વણીજ લાલચ રાખીને ભોજન કરવું
નહીં (૩૨)

उपानत्सहितो व्यग्र-चित्तः केवलभूस्थितः ॥

પર્વદ્ભૂત્યો વિદિગ્યામ્યા—નનો નાયાત્કૃશાસનઃ ॥૩૩॥

અર્થ — પગરખા પહેરીને, ઉતાવળા ચિત્તથી, કેવળ ભૂમી
ઉપર બેસીને, ખાટલે બેસીને, આગ્નેય, નૈઋત્ય, વાયવ્ય, ધૃવાન
એ ગાર વિદિશા તથા દક્ષિણ દિશા તરફ મુખ કરીને અને
માકડા આમન ઉપર બેસીને ભોજન ન કરવું (૩૩)

आसनस्थपद्मो नाद्या-च्छण्डालैश्च निरीक्षितः ॥

પતિતૈશ્ચ તથા મિત્રે, ખાજને મલિનેઽપિચ ॥૩૪॥

અર્થ — આસન ઉપર પગ દઈ, ચડાણોના અને ધર્મવ્રત
પુરૂષોના દેખતા તથા લાગેલા અથવા મલિન વામણસા ભોજન
કરવું નહીં (૩૪)

अमे यस्यभवं नाद्या-दृष्ट भ्रूणादिघातकैः ॥

રજસ્વળાપરિસ્પૃષ્ટ-પ્રાઘાત ગોશ્વપાશિભિઃ ॥૩૫॥

અર્થ:—અપવિત્ર વસ્તુથી બનેલી ચીજ ખાવી નહીં. તથા ગર્ભ, સ્ત્રી, બાળક મૃત્યાદિકની હત્યા કરનારાઓએ દી-ઠેલું, રજસ્વલા સ્ત્રીએ અડેલું, અને બાળક, કુત્રા અને પક્ષી એમણે સુધેલું અન્ન લક્ષણ ન કરવું. (૩૫)

અજ્ઞાતાગમમજ્ઞાતં, પુનરુણીકૃતં તથા ॥

યુક્તં ચવચવચાશદ્રે—નાંચાદ્વઙ્કારિકારવાન્ ॥૩૬॥

અર્થ:—આ અન્ન કયાંથી આવેલું છે, એમ જાણ્યા વિના તથા જેનું નામ પણ અજાણ્યું હોય, તથા એ વાર ઉંડું કરેલું એવું અન્ન ખાવું નહીં. તેમજ લોજન કરતી વખતે અળ અળ એવો શબ્દ ન કરવો, અને મુખ વાંકું અથવા ખીજા કોઈ પણ રીતે ખરાબ દેખાય એવું ન કરવું. (૩૬)

આદ્વાનોત્પાદિતપ્રીતિઃ, કૃતદેવાભિધાસ્મૃતિઃ ॥

સમે પૃથૌ ચ નાત્યુચ્ચૈઃ, નિવિષ્ટો વિષ્ટરે સ્થિરે ॥૩૭॥

માતૃજ્વલ્મ્વિકાજામિ—ભાર્યાચૈઃ પક્વમાદરાત્ ॥

શુચિર્મિર્મુક્તવાદ્દિશ્ચ, દત્તમદ્યાજ્જનૈઃ સહ ॥૩૮॥

અર્થ:—જાણ મનુષ્યે પાસે રહેલા લોકોને ખોલાવવાથી પ્રીતિ ઉપજવી, લગવાનનું નામ સ્મરણ કરી, તથા સમા, પહોળા અને ઘણું ઉંચું નહીં એવા આસન ઉપર બેસી માશી, મા, ખેન, પોતાની સ્ત્રી વિગેરે સ્ત્રીઓએ રાંધેલું અને પવિત્ર તથા ખાઈને ધરાયલા લોકોએ પિરસેલું અન્ન પોતાના બાંધવની જોડે લક્ષણ કરવું. (૩૭) (૩૮)

કુક્ષિમરિર્ન કઃ કોઞ્ચ, વદ્વાધારઃ પુમાન્ પુમાન્ ॥

તતસ્તત્કાલમાયાતાન્, ભોજયેદ્ધાન્ધવાદિકાન્ ॥૩૯॥

અર્થ — આ જગત્મા પોતાનું પેટ ડોણુ ભરતું નથી !
માટે જે ઘણા લોકોને આધાર આપે તેજ પુરૂષ પુરૂષ કહે-
વાય તેથી ભોજનને અવસરે આવેલા પોતાના મગા વહાલા
ને તથા ખીન્તઓને પણ અવન્ય જમાડ્યા (૩૯)

દત્વા દાન સુપાત્રાય, સ્મૃત્વા વા શ્રદ્ધયાન્વિતમ્ ॥

યેડશ્નન્તિ તે નરા ધન્યાઃ, કિમાદ્યુર્નૈર્નરાધમૈઃ ॥૪૦॥

અર્થ — જે મનુષ્ય સુપાત્રને દાન દઈ અથવા સુપાત્રનો
યોગ ન હોય તો શ્રદ્ધાથી ભાવના ભાવી ભોજન કરે છે, તે
ધન્ય છે ખીન્ત પોતાનું જ પેટ ભરનારા આધારા અધમ નરોના
સાથથી શું આરૂ થવાનું ? (૪૦)

જ્ઞાનયુક્તઃ ક્રિયાગાર, સુપાત્રમભિગ્રીયતે ॥

દત્ત વહુફલ તત્ર, યેનુક્ષેત્રનિદર્શનાત્ ॥૪૧॥

અર્થ — જ્ઞાની અને ક્રિયાપાત્ર જે સાધુ તે સુપાત્ર કહેવાય
છે જેમ શોહા દિવન ઉપર જલેલી જાયને ખવરાવવું તથા
સાગ ક્ષેત્રમાં વાવવું ઘણું ફલદાયિ થાયછે, તેમ સુપાત્ર મુનિ-
રાજને આહારાદિ દીધાથી ખાતું ફલ વાયછે (૧)

કૃતર્માનમવક્રાદ્, વર્ષદક્ષિણનાસિકમ્ ॥

કૃતમહ્યસમાગ્રાણ, હતહૃદોપવિક્રિયમ્ ॥૪૨॥

નાતિશાર નચાત્પમ્, નાત્યુષ્ણ નાતિગીતલ્પ્ ॥

નાતિશાક નાતિર્ગાલ્પ, મુશ્વરોચકમુચ્ચકૈઃ ॥૪૩॥

મૃસ્વાદવિગતાસ્વાદ-વિકથાપરિવર્જિતમ્ ॥

શાશ્વર્જિતનિઃશ્વેષા-દારત્યાગપનોદરમ્ ॥૪૪॥

મહ્યમલ્લનિર્મુક્તં, નાન્યાદાગ્મનન્નમ્ ॥

મનિવન્નમવાનન્નં, મંકલપાન્વાદમુન્દમ્ ॥૪૨॥

વિવન્નમવાનન્નમ—મર્થદુર્ગમે મદ્યમનિઃ ॥

મુર્છાનિ વર્તયન્તે, હવાદં મુન્કલં મન્દમ્ ॥૪૩॥

અર્થ:—પુદ્ગિલાદી પુરુષ જગત્તી નાનિધિ વર્તે છે અને
ગોન કરી, મરીરના સર્વે વ્યવસ્થા સમા રાખી, આવાની વસ્તુ
સુખીને અને દુષ્ટિદોષ યાજીને બહુ ખાઈ નહીં, બહુ ખાઈ
નહીં, બહુ ઉન્નું નહીં, બહુ હંદુ નહીં, બહુ સાકરાઈ નહીં,
બહુ મીઠું નહીં, પ્રમાણથી વધારે નહીં, બોલું પણ નહીં શા
સ્વમાં વર્તેન કરેલી વસ્તુથી તથા જે વસ્તુની ખાધા લીધી
લેાય તે વસ્તુથી રહિત, જેની અંદર આવેલી સર્વે વસ્તુ શ્રેષ્ઠ
છે, તથા રાત્રી પહે સધરાત્રાં આવવાથી જેનો સ્વાદ બહુ મ
મોહક છે એવું સુખને વણી રૂચિ ઉપજવનારું આત્મ સ્વાદિય
વસ્તુની રતુતિ તથા નિરત્ર વસ્તુની નિંદા વર્તેને બદલાઈ કરવું.
બોજન અર્થે ઘણું રહે ત્યારે પાણી પીવું. કારણ તે વખત પા
ણી પીવું અમૃતસમાન છે. અને બોજનને છેડે ઘણું પાણી ન
પીવું. કારણ, તે વખતે પાણી પીવું વિપરમાન છે. (૪૨)
(૪૩) (૪૪) (૪૫) (૪૬)

મુન્નિગ્યમધુરઃ પૂર્વ-મર્શ્યાદાન્વિતં રમ્ભઃ ॥

દ્રવામ્લલવર્ણમધ્યે, પર્યન્તે કટુતિત્તકઃ ૪૭॥

અર્થ:—બોજન કરતાં પ્રથમ સારી રિતઘ (ઘીવાળી ત
થા તેલવાળી) તથા મધુર (મીઠી) વસ્તુ ખાવી. વચમાં પ્રવાહી
ખાટી અને ખારી વસ્તુ ખાવી. અને છેડે તીખી તથા કડવી
વસ્તુ ખાવી. (૪૭)

નામિત્ર લવણ ગ્રાણ, નૈવ કેવલપાણિના ॥

રસાનપિ ન વૈરસ્ય-હેતૂન્સયોજયેન્મિથઃ ॥૪૮॥

અર્થ —એકલુ જુડું લવણ ન લેવું તથા તે દેવળ હાથથી ન લેવું જેથી વસ્તુ વિરમ (સ્વાદ વિનાની અથવા માઠા સ્વાદની) થઈ જાય એવી મધુગદ્દિ ગસની માહોમાહે મેળવણી ન કરવી (૪૮)

ત્યજેત્ભારમમૂતાન્ન-મન્ન ટગ્ગાદિક ત્યજેત ॥

કીટાસ્થિપ્રમુલૈર્વુક્ત-મુચ્છિઞ્ચ ચાચિલ ત્યજેત્ ॥૪૯॥

અર્થ —જેમા ક્ષાર (લવણ અથવા ખારો) ઘણો નાખેલો હોય એવું તથા બળી ગયેલું, બરાબર નહીં થયેલું, કીટાદિ જીવ તથા હાડકા પગેરથી ભિન્ન થયેલું તમા ઝેરપૂર્ણ એકું થયેલું એવું અન્ન મવેં મુકી દેવું (૪૯)

ધેન્વા નવપ્રસૂતાયા, દશાદ્યન્તર્ભય પયઃ ॥

આરણ્યકારિકાઞ્કૃત્ ચ, તથૈકૃત્ત્વમ્ ત્યજેત્ ॥૫૦॥

અર્થ —નવી વીઆએલી ગાયનું ૬ વ દમ દિવમ સુધી ન લેવું તથા જ ગલી જાનવરોનું, ગારરનું, ઉંટણીનું અને સર્વે એક ખેરવાળા પશુઓનું દૂધ ન લેવું (૫૦)

નિ સ્વાદમન્ન કટુ ચ, હૃદયમપ્યશ્નતો યદિ ॥

તત્સ્વમ્યાન્યસ્ય વા કષ્ટ, મૃત્યુઃ સ્વમ્યાત્તૌ પુનઃ ॥૫૧॥

અર્થ —મનોહર અન્ન ખાતા છતાં પણ જો સ્વાદવિનાનું કંઈક લાગે, તો તેથી પોતાને અથવા પરને કષ્ટ થાય, અને

એ સાઈ' અન્ન ખાતાં પણ અરૂચિ ઉત્પન્ન થાય તો પોતાનું
મરણ થાય, અથવા મરણસમાન કષ્ટ આવી પડે એમ જાણવું.
(૫૨)

મોજનાનન્તરં સર્વ—રમલિત્તેન પાણિના ॥

પ્રક્રઃ પ્રતિદિનં પેયો, જલસ્ય ચુલુકોઽક્લિન્ના ॥૫૨॥

અર્થ:—મનુષ્યે ભોજન કરી પછી સર્વ રસથી ખરડાય
લા હાથે પાણીનો એક ડોળળો દરરોજ પીવો. (૫૨)

ન વિવેત્પશુવત્તોયં, પીતશેષં ચ વર્જયેત્ ॥

તથા નાઙ્ગલિના પેયં, પયઃ પથ્યં મિતં યતઃ ॥૫૩॥

અર્થ:—પાણી પશુની પેટે ન પીવું, કોઈએ પીધા પછી
ઉગરેલું (એકું રહેલું) ન પીવું. તથા અંગલિથી (આંગેથી)
પણ ન પીવું. કારણ, પાણી માફક પીવું તેજ શુભકારિ છે. (૫૩)

કરેણ સલિલદ્રિણઃ, ન ગણ્ઠો નાપરં કરમ્ ॥

નેક્ષણે ચ સ્પૃશેત્કિન્તુ, સ્પૃષ્ટવ્યે જાનુની શ્રિયે ॥૫૪॥

અર્થ:—ભોજન કરી રહ્યા પછી ભીને હાથે જે ગાલ,
ખીજે હાથ અને જે નેત્ર એમને સ્પર્શ ન કરવો. પણ કે
દ્યાણને અર્થે પોતાના જે હાથે સ્પર્શ કરવો. (૫૪)

ઉક્તંચ “ ॥ મા કરેણ કરં પાર્ય, મા ગલ્લૌ મા ચ ચક્ષુષી ॥

જાનુની સ્પૃશ રાજેન્દ્ર, ભર્તવ્યા વહ્નો યદિ ॥૫૫॥ ”

અર્થ:—કહ્યું છે કે, “હે રાજાધિરાજ અર્જુન ! તારે
ઘણા માણસોનું પોષણ કરવું હોય તો, તું ભોજન કર્યા
પછી ભીને હાથે જે ગાલને, ખીજા હાથે, તથા જે ચક્ષુ
ને સ્પર્શ નહીં કર, પણ હાથે સ્પર્શ કર. ” (૫૫)

સમાના જાતિશીલામ્યા, સ્વસામ્યામિત્યસસ્પૃશામ્ ॥

ભોજનાય ગૃહે ગચ્છે—^૫દ્રન્ગેદેવતા ન તુ ॥૫૬॥

અર્થ — જે જાતથી તથા શીળથી આપણી ધરાધરીનો હોય, તથા આપણને પોતાની માકક અથવા પોતાવી પણ વધારે માનતો હોય તેને ઘરે ભોજન કરવા જવું પણ જે આ પણ દેખી હોય તેમને ત્યાં ન જવું (૫૬)

મુમૃર્ષુવચોરાણા, કુલ્લટાલિદ્વિરૈરિણામ્ ॥

ગૃહૃસ્વના કલ્પ-પાલોચ્છિદ્ધાન્નમોજિનામ્ ॥૫૭॥

કુકર્મર્જારિનામુગ્ર-પતિતાસપ્પાયિનામ્ ॥

ગૃહોપજીરિવિકૃતિ-સાન્યભર્તૃરુયોપિતામ્ ॥૫૮॥

ધર્મરિક્ષિણા રાજ-મહાજનરિરોધિનામ્ ॥

સ્વયં દનિષ્ઠમાણાના, ગૃહે ભોજ્ય ન જાતુ ચિત્ત ॥૫૯॥

અર્થ — મરણને ઠાઠે આવેલા, રાજાદિકને વધ કરવા યોગ્ય વધેલા, ચોર, વેશ્યા, કુમાર્ગી લિંગધારી, વૈરી, જેના વૈરી ઘણા એવા, મગનો વિક્રય કરનાર (દલાલો), એકું અન્ન લશણ કરનાર, કુકર્મ કરી પોતાનો નિર્વાહ કરનાર, ઉગ્ર, પાપના કરનાર, રગનાર, જે ભાતોવાળી રીતી, ધર્મને વેચનાર, ગાળના તથા મહાજનના વૈરી, જેથી ભવિષ્ય કાળમાં પોતાની જાની ચાય એવું કામ કરનાર, મધપાન કરનાર અને મહાપાતક આચરવાથી પતિત થએલા એટલા માણસોને ઘરે દોષ કાળે પણ જમવું નહીં (૫૭)(૫૮)(૫૯)

ભોજનાનન્તર યાન્ય, શ્લોકાદ્યપાદરાત્ ॥

ગર્ભેષા પતિના મૃમા-ત્રાયુચિત્ત ચ રીયતે ॥૬૦॥

અર્થ:—ભોજન કર્યા પછી આદરથી બે સળીઓ (દાંત ખોતરવા માટે) મારવી, બે તેમાંથી એક નીચે પડે, તે આયુષ્યની તથા દ્રવ્યની હાનિ બાળવી. (૬૦)

ભોજનાનન્તરં વામ—કટિસ્થો ઘટિકાદ્વયમ્ ॥

ગંચીત નિદ્ર્યા દીનં, પૂર્વ પદ્મશતં વ્રજેત ॥૬૧॥

અર્થ:—ભોજન કર્યા પછી પ્રથમ સો પગલાં ચાલુ, અને પછી બે ઘડી રાખે પડજે નિદ્રા લીધા વિના સુવું. (૬૧)

અક્લમ્બદનનીહાર-ભારોત્કેષોપવેશનમ્ ॥

સ્નાનાદ્યં ચ કિયત્કાલં, ભુવત્ત્વા કુર્યાન્ન બુદ્ધિમાન્ ॥૬૨॥

અર્થ:—બુદ્ધિશાળી પુરૂષે ભોજન કર્યા પછી થોડીક વાર સુધી અંગમર્દન (શરીરની અંખી) તથા નીહાર (મળ મૂત્રનો ત્યાગ ન કરવાં, ભાર ઉપાડવો નહીં, બેસી રહેવું નહીં, અને સ્નાન પ્રમુખ ક્રિયા પણ ન કરવી. (૬૨)

દશતામ્રપલાવર્તે, પાત્રે વૃત્તીકૃતે સતિ ॥

વિદ્યાતગ્ન્યઃ સમુત્સેયો, ઘટિકાયાં પદ્મજુલઃ ॥૬૩॥

‘વિષ્કમ્ભં તત્ર કુર્ચીત, પ્રમાણે દ્વાદશાક્ષુલઃ ॥

પટ્ટચમ્ભ.પલપૂરેણ, ઘટિકા સદ્ગિરિષ્યતે ॥૬૪॥શુગ્મમ્ ॥

અર્થ:—દસ પળભાર તાંબોલું વાટવું (ગોળ) પાત્ર છ આંગળ ઉચું અને બાર આંગળ પહોળું કરવું. નીચે છિદ્ર ખાડી તેમાં સાંકડ પળ પ્રમાણ પાણી પૂરવું. એવી ઘટિકા (ઘડી) વિકાન્ પુરૂષોને માન્ય છે. (૬૩-૬૪)

ચતુશ્ચન્દ્રારિંગદયો, ત્રિશદત્તર્ગવિગતી ॥
 પચ્ચદશ ત્રિશદપિ, ચન્દ્રારિંગચતુર્યુતાઃ ॥૬૫॥
 પટ્ટિઃ સદ્વાદશા પટ્ટિ-રંગીતિશ્ચ દ્વિસપ્તતિઃ ॥
 પટ્ટિર્મેષાદિષુ નેયા, ધ્રુવાદ્ધ્રુવા ગતસયુતાઃ ॥૬૬॥
 રવિ દક્ષિણતઃ કૃત્વા, જ્ઞાન્વા ઝયાપદાનિ ચ ॥
 તૈઃ પાંડઃ સપ્તસયુક્ત-ભાગં કૃત્વા ધ્રુવાદ્ધ્રુવઃ ॥૬૭॥
 લગ્નાદ્ધ્રુવેન પ્રદીપ્તયા, ત્રિજાનીયાદ્ધ્રુવઃ મજા ॥
 પૂર્વાદ્ધ્રુવે ગતકાલમ્ય, ગેપસ્ય સ્વપગદ્ધ્રુવે ॥૬૮॥

ચતુર્થિઃ કગપકમ્ :

અથ —મેષધી માસીને અનુક્રમે ચૂર્યની બાજે સારીઓ
 ને વિશે, ૧૪૮, ૧૩૦, ૧૧૫, ૧૦૦, ૧૧૫, ૧૩૦, ૧૪૪,
 ૧૬૦, ૧૭૨, ૧૮૦, ૧૭૨, ૧૬૦ એ ધ્રુવાક નાપુવા ચૂર્યને
 લગભગી બાજુએ ગમ્મી પગે પોતાની છાયા માપવી છાયાની
 જેટલી મજ્યા આવી હોય તેમા સાત ઉમેગવા અને તે
 આક્રાધી જે સગિનો સર્ચ હોય તે ગચિના ધ્રુવાકને લગ-
 વુ જે મજ્યા આને તે ઘડી લાણવી બપોર થાય ત્યા ચુ-
 થી ગતકાલની ઘડી મજ્યા લાણવી અને બપોર પછી શેષ
 રહેતા વિવચની ઘડી મજ્યા લાણવી (૬૫) (૬૬) (૬૭) (૬૮).

મિત્રોદાસીનવિદ્યેષિ-મયેષ્મુત્ર જગત્રયે ॥

ભવત્યમ્યવદાર્યેષુ, ત્રિણશ્ચેષોઽપિ કઠિચિત્ત ॥૬૦॥

અર્થ —આ જગતમા આપણા મિત્ર, ઉગ્રાસીન (મધ્ય
 રાત્રિની માંચુ કાળના) નાના નાનુ જેણ ત્રણ પ્રમાણના મનુ

ધ્ય રહે છે. માટે ખાવાની વસ્તુમાં વખતે વિષ પ્રયોગ થવા-
નો સંભવ છે. (૬૯)

ધીમન્નઃ સ્વદ્વિતાઃ સમ્ય-ગર્વીયિર્લક્ષણઃ સ્ફુટમ્ ॥

પ્રયુક્તમરિભિર્ગુપ્તં, વિપં જાનન્તિ તદ્યથા ॥૭૦॥

અર્થઃ—પોતાના હિતની ઇચ્છા કરનારા બુદ્ધિશાળી
લોકો વૈરીઓ વસ્તુમાં શુભ રીતે ભેગવેલું વિષ (ઝેર) આ
(કહેશે તે) લક્ષણોથી પ્રગટ બાહ્યી શકે છે. તે લક્ષણો આ
પ્રમાણેઃ—(૭૦)

અવિક્રેદ્યં ભવેદન્નં, પચ્યમાનં વિપાન્નિતમ્ ॥

ચિરાન્ન પચ્યતે સત્રઃ, પક્કં પર્યુપિતોપમમ્ ॥૭૧॥

અર્થઃ—વિપવાળુ અન્ન રાંધતાં બીનું ન રહે, ચડતાં
ઘણીવાર લાગે, અને ચડે તો પાછું તુરત વાશી જેવું થઈ
જાય. (૭૧)

સ્તવ્યમૂષ્મવિનિર્મુક્તં, પિચ્છિલં ચન્દિકાન્વિતમ્ ॥

વર્ણાન્ધ્રસાન્પત્વ-ઢાપિતં ચ પ્રજાયતે ॥૭૨॥

અર્થઃ—ઠરી ગયા સરખું, બાફ વિનાનું, અંદરથી
પાણી છાંડતું, ચંદ્રિકાવાળું, અને જેના વર્ણ, ગંધ અને રસ
સ્વાભાવિક જેવાં હોવાં બેધયે તેથી વિપરીત થઈ ગયાં
હોય તો તે વિપવાળું અન્ન બાણુવું. (૭૨)

સવિષાણિ ક્ષણાદેવ, શુષ્યન્તિ વ્યઙ્ગનાન્યપિ ॥

વદાયે તુ ધ્યામતા ફેનઃ, સીમન્તા હુહુદાસ્તથા ॥૭૩॥

અર્થઃ—વિપવાળાં વ્યંગ્ગન (ચટાણી, રાયતું, શાક
વિગેરે) ક્ષણ માત્રમાં સૂકાઈ જાય છે. અને બે ઝેરવાળો

ઉકાળો હોય તો તે કાળો પડી જાય છે, શીંગડા આવે છે, લીટીઓ પડે છે, અને ચર્ચોટા આવે છે (૭૩)

જાયન્તે રાજયો મીટા, રમે લીરે ચ નૌદિતાઃ ॥

સ્વર્મગ્રતોયયોઃ કૃષ્ણા, દાત્રિ શ્યામાસ્તુ રાજયઃ ॥૭૪॥

અર્થ — ગમમા વિષ હોય તો તેમા નીલવર્ણ લીટીઓ પડે, કૃષ્ણના હોય તો લાલ લીટીઓ પડે, મધમા તથા પાણીમા હોય તો કાળી લીટીઓ પડે, અને દહીંમા હોય તો ન્યામવાર્ણ લીટીઓ પડે (૭૬)

તેકે તુ નીર્ગપિતા મ્યા-ત્કપોતામા તુ મસ્તુતિ ॥

જ્ઞાના સૌર્ષિકે ગર્જિ-ધૃતે તુ જન્મનિષા ॥૭૫॥

અર્થ — હાસમા જેવું હોય તો તેમા ગળી લેવા રંગની તથા પીળી લીટીઓ પડે મગનુ- (દહીં ઉપર આવેલી નર્મ મા હોય તો કમ્પાલ (કમ્પુન, દોષ) પડીના રંગ મરજો રંગ તેની ઉપર આવે, આહુમા કાળી લીટીઓ પડે અને ઘી ઉપર રંગ લેવી પડે (૭૫)

દ્રોણં તુ કવિગ, સૌંદ્રે ચ કવિગ્ય ધર્મ ॥

મૈત્રેજ્ઞા મમાગતિ, પાક ગ્રામ્ને પત્નિ સજાત્ ॥૭૬

અર્થ — મનાલી અપધમા તથા ગધમા જેવું હોય તેમા દપિતવર્ણ (કાજરગિરી) નીમીટા પડે, નેલમા રોગ તો લાલ લીટીઓ પડે, અને મગ્ગી માદક દુર્ગાધિ આવે, અને કાજર દાસ જેવું હોય તો તે કાજર પાદ પાદી લાય છે (૭૬)

સપાકાનાં ફળાનાં ચ, પ્રકોપઃ સદસા નથા ॥

જાયેત મ્યાનિરાદ્રાણાં, સંકોચશ્ચ વિવાદિહ ॥૬૭॥

અર્થ:—પાકેલાં ફળોમાં ઝેર હોય તો તુરત તે ફાટી જાય. તથા સડી જાય. અને લીલી વસ્તુમાં ઝેર હોય તો તે કચડાઈ અને સડેઆઈ જાય છે. (૭૭)

શુષ્કાણાં ડ્યામતાણ્યેવં, વૈવર્ણ્યં અદિમા પુનઃ ॥

કર્કશાનાં મૃદ્ધનાં ચ, કાદિન્યં જાયતે વિપાત ॥૭૮॥

અર્થ:—સુકાઈ ગયેલાં ફળોમાં ઝેર હોય તો તે શુષ્કાણાં અને ખેરંગ થઈ જાય છે. કઠણુ ફળો ઝેરથી નરમ થાય છે, અને નરમ ફળો કઠણુ થાય છે. (૭૮)

માલ્યાનાં મ્લાનતા સ્વલ્પો, વિકાસો મન્યહીનતા ॥

સ્યાદ્વ્યામમણ્ડલન્વં ચ, સંધ્યાનામ્તરણે વિપાત ॥૭૯॥

અર્થ:—પુલની માળાઓ ઝેરથી કચડાઈ જાય છે, ધરાધર ખીલતી નથી, અને સુગંધિહીન થાય છે. ઓઢવાનાં અને પાથરવાનાં લુગડાં ઝેરવાળાં હોય તો તેની ઉપર ડાળાં માંડલાં પડે છે. (૭૯)

મણિલોહમયાનાં ચ, પાત્રાણાં મલ્લદિગ્વતા ॥

સ્વર્ણરાગપ્રભાસ્વર્ણ-ગૌરવસ્ત્રેહસંસ્રયઃ ॥૮૦॥

અર્થ:—રતનનાં તથા ધાતુનાં પાત્રો ઝેરથી મેલાં થાય છે. અને સોનાના તો ઝેરથી રંગ, કાંતિ, કોમલ સ્પર્શ, શુદ્ધત્વ [ભારેપણું] અને રનેહ એ સર્વ ગુણુ જતા રહે છે. (૮૦)

દન્તના શાતન રોમ-પદ્મના ચ યોદ્ધિપાત્ ॥

મદેદે તુ પરીક્ષેત, તાન્વિગ્ન્યાદિષુ તત્રથા ॥૮૧॥

અર્થ — એરથી દાત, ગરીર ઉપગ્ના અને પાપણના વાળ એ બ્રહ્મ ખરી નાચ છે વિષયયોગનો ન શય આવે તો વિષવાળી વસ્તુ અગ્નિ આદિકમા નાખી તેની પરીક્ષા કરવી (૮૧)

અન્ન દાહાહ્લકીર્ણ, પ્રાપ્ય વૈશ્વાનરો મૃગમ્ ॥

एकावर्तस्तथा रूक्षो, मुद्गश्चटचटायते ॥૮૨॥

અર્થ — એરવાળુ અન્ન અગ્નિમા નાખીએ તો, તેની નવાળા લમગી ખાય છે, અગ્નિ લખો દેખાય, અને તેમાથી ચટ ચટ એવો શબ્દ નીકળે છે (૮૨)

इन्द्रायुग्मिवानेक-वर्णाञ्ज्वाला दग्धाति च ॥

स्फुरत्कुणपगन्निશ्व, मण्डतेजाश्च जायते ॥૮૩॥

અર્થ — એરવાળી વસ્તુ અગ્નિમા નાખતા હદિ ધનુષ્ય (મરખ) મરખા અનેક રંગવાળી તેની નવાળા થાય છે. શ્રુત કલેવર મરખી તેમાથી હુઝધી નીકળે છે, અને તેનું તેજ મહ થાય છે (૮૩)

शिरोऽर्तिः पीनमः श्लेष्मा, लाल नयनयोस्तथा ॥

आकुलत्वं क्षणादौષ-हर्षम્નદૂમસેवनात् ॥૮૪॥

અર્થ — એરવાળી વસ્તુના ધુમાડાથી માવાનો હુળાયો, મળેખમ અને કદ્દ થાય, આખમાવી પાપી ઝડે, આકુળપણ થાય, અને ક્ષણમાત્રમા રોનાચ ઉભા થાય (૮૪)

વિપદુષ્ટાશનાસ્વાદા—ન્કાકઃ ક્ષામસ્વરો ભવેત્ ॥

લીયતે મક્ષિકા નાત્ર, નિર્લીના ચ વિપદ્યતે ॥૮૫॥

અર્થ:—વિપમિશ્ર અન્ન આખવાથી કાગડાનો સાદ બેચી જાય છે, તે અન્ન ઉપર માખી ન બેસે, અને કદાપિ બેસે તો મરી જાય છે. (૮૫)

અન્નં સવિપમાઘાય, મૃદ્ધઃ કૂજતિ ચાધિકમ્ ॥

સારિકા સવિપેઽન્ને તુ, વિક્રોશતિ તથા શુકઃ ॥૮૬॥

અર્થ:—ભ્રમર ઝેરવાળું અન્ન સુધીને અધિક શુન્તરવ કરે છે, મેના અને પોપટ પણ ઝેરવાળું અન્ન સુધીને ઘણું શબ્દ કરે છે. (૮૬)

વિપાન્નદર્શનાન્નેત્રે, ચક્રોરસ્ય વિરજ્યતઃ ॥

મ્રિયતે કોકિલો મત્તઃ, ક્રૌંચો માદ્યતિ તત્ક્ષણાત્ ॥૮૭॥

અર્થ:—ચક્રોર પક્ષીનાં નેત્ર ઝેરવાળું અન્ન જોવાથી સફેદ થાય છે. કોકિલ પક્ષી મદોન્મત્ત થઈ મરી જાય છે. અને ક્રૌંચ પક્ષી તેજ સમયે મદોન્મત્ત થાય છે. (૮૭)

નકુલો હૃષ્ટરોધા સ્યા—નમયૂરસ્તુ પ્રમોદતે ॥

અસ્ય ચાલોકપાત્રેણ, વિપં મન્દાયતે ક્ષણાત્ ॥૮૮॥

અર્થ:—નોળીયો ઝેરવાળું અન્ન જોઈને રોમાંચિત થાય છે. અને મયૂર પક્ષી હર્ષ પામે છે. મયૂરની દૃષ્ટિથી ક્ષણમાત્રમાં ઝેર મંદ થઈ જાય છે. (૮૮)

ઉદ્દેગં યાતિ માર્જારઃ, પુરીષં કુરુતે કપિઃ ॥

ગતિઃ સ્થલતિ હંસસ્ય, તામ્રચૂડો વિરૌતિ ચ ॥૮૯॥

અર્થ — જેવાળું અન્ન ભેધને ખિલાડો ઉદ્દેગ પામે છે વાનરો વિખડા કરે છે હસ ચાલવા સ્ખલના પામે છે અને કુકડો શખ્ષ ડગવા લાગે છે (૮૯)

સવિપ દેહિભિઃ સર્વ, મશ્યમાણ કરોત્યલમ્ ॥

ઓષ્ઠે ચિમચિમામામ્યે, દાહ લાલાજલપ્તવમ્ ॥૯૦॥

અર્થ — વિપમિશ્ર અન્ન મનુષ્યોના ખાધામા આવે તો હોઠમા ચળવળ થાય છે, મુખમા દાહ થાય છે, અને લાળ છૂટે છે (૯૦)

દનુસ્તમ્ભો રસજ્ઞાય, કુરતે શુલ્ભૌરવે ॥

તથા ભારસાજ્ઞાન, દાતા ચાસ્યાકુલો મંત્રેત્ ॥૯૧॥

અર્થ — વિપમિશ્ર અન્ન ખાધામા આવે તો હૃડયથી થભાઈ જાય છે જીભ ભાદે થાય છે તેની (જીભની) અદર દરદ થાય છે ખાગ રમનો સ્વાદ જણાતો નથી અને વિપનો દેનાર આપુણ થાય છે (૯૧)

સ્ફાટિકપટ્કળભારો, ધાર્યઃ પુંસો મુશ્વન્તરે ॥

ન વેત્તિ ક્ષારતા યાત્ર-દિત્યુક્ત સ્થારે ત્રિપે ॥૯૨॥

અર્થ — વિપ પ્રયોગની શકા આવે તો પુરુષના મુખમાં કટકડી અને ટકણખાર ધગવા આપવો જ્યાં મુખી તે ખાગે ન લાગે ત્યાં મુખી ત્રિપ વિષાર છે એમ જાણવું એ -થાયું વિપ જાણવાનો ઉપાય ગ્રહ્યો (૯૨)

इत्थं चतुर्थमह्वर्यं कृत्वा, सूर्योदयादत्र मया यथापि ॥

तत्कुर्वता देहभृता नितान्त-માર્વિભયત્યેષ ન રોગયોગઃ ૯૩

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिने श्रीविवेकचिदासे तृतीय उल्लास ॥३॥

અર્થ:—એવી રીતે સૂર્યોદયથી માંડીને ચોથા પ્રહરના અર્ધભાગ સુધીનું કૃત્ય મેં કહ્યું તે પ્રમાણે ચાલવાથી માણસોને શરીરે કદીપણ રોગનો પ્રાદુર્ભાવ થાય નહીં. (૯૩)

ઈત શ્રી વિવેકવિલાસની ગુર્જરભાષાનો

ત્રીજો ઉદ્ધાસ સંપૂર્ણ. (૩)

અથ ચતુર્થ ઉદ્ધાસ: ।

ઉત્થાય શયનોત્સન્ના—દ્વપુ:શૌચમથાચરેત ॥

વિચિન્ત્યાયવ્યયૌ સમ્ય—ગમન્ત્રયેદેષ મન્ત્રિભિ: ॥૧॥

અર્થ:—પછી વીવેકી પુરૂષો ણિછાના ઉપરથી ઊઠી શરીરશુદ્ધિ કરવી. અને આવક બલકનો સારી પેઠે વિચાર કરી મંત્રીની જોડે મસલત ચલાવવી. (૧)

વાહનાસ્રાદિચિન્તાં વા-ચરણાં વા નિયોજનમ્ ॥

કુર્યાદ્વિક્રમચિન્તાં વા, ત્રિહારં વા યદ્દૃષ્ટ્વચા ॥૨॥

અર્થ:—વાહન, હથિયાર, આચાર પરાક્રમ વિગેરે કાર્યનો વિચાર કરવો, અથવા દૂતોને પોતાને કામે લગાડવા, અથવા ઇચ્છા માફક વ્યવહાર કરવો. (૨)

તતો વૈકાલિકં કાર્યં, મિતાહારમનુત્સુકમ્ ॥

ઘટિકાદ્વયશેષેઽદ્વિ, કાલૌચિત્યાશનેન ચ ॥૩॥

અર્થ:—પછી બે ઘડી દિવસ શેષ રહે ત્યારે ઋતુને તથા સંધ્યાકાલને ઉચિત એવા આહારથી ઘણી ઉત્સુકતા ન રાખતાં પરિમિત વાળું કરવું. (૩)

માનોઃ કર્સસૃષ્ટ-મુચ્છિષ્ટ પ્રેતસચગત્ ॥

સૂક્ષ્મજીવાકુલં ચાપિ, નિશિ ભોજ્ય ન યુજ્યતે ॥૪॥

અર્થ —મૂર્યના કિરણોએ નહીં કર્મેણુ, પ્રેતના મસાર-થી અપવિત્ર થએણુ, અને સૂક્ષ્મ મપાતિમ જીવોથી આ-ક્રુણ વએણુ એવુ અત્ર રાત્રિએ લક્ષણુ કરવુ એ યુક્ત નથી (૪)

ગૌર્વાચર્ય માર્તિણ્ડ-ત્રિમ્બેર્ગસ્તમિતે સુધીઃ ॥

ધર્મકન્યઃ કુઠાર્યાતૈ, સ્વમાત્માન પવિત્રયેન્ ॥૫॥

અર્થ —અધો સૂર્યમહોલનો અન્ત વયે છને શરીર શુદ્ધિ કરીને કુળ પરપગએ આવેલા ધર્મવૃત્ત્યોથી પોતાના આત્માને પવિત્ર કરવો (૫)

ન ગૌર્યેન્ન કણ્ડયે-ન્નાક્રમેદત્રિમંઘ્રિણા ॥

ન ચ પ્રસાલ્યેત્કાસ, ન કુર્યાત્સ્વામિમમુગ્ધમ્ ॥૬॥

અર્થ —અધ્યાકાળે કંઈ શોધવુ નહીં, ખણવુ નહીં, પગ ઉપર પગ ચઢાવવો નહીં, ધોવુ નહીં, અને સ્વામિના મુ-ખ આગળ ખામી ન કરવી (૬)

સયાયા શ્રીદૃષ્ટ નિદ્રા, મૈથુન દૃષ્ટગર્ભકૃત્ ॥

પાટ વૈવલ્ય રોગ-મદ્રા મુક્તિ ન ચાચરેન્ ॥૭॥

અર્થ —અધ્યાગમયે નિદ્રા કરે તો લક્ષ્મીનો નાશ થાય, મૈથુન દરે તો દુષ્ટ ગર્ભની ઉત્પત્તિ થાય, બહુ તો પાઠમા ખામી ગરે, અને બોળન કરે તો રોગ થાય, ખાટે એટલા વા ના સ્થાએ ન કરવા (૭)

અર્કેઽર્ધાસ્તામિતે યાવન્નક્ષત્રાણિ નભસ્તલે ॥

દ્વિત્રાણિ નૈવ વીક્ષ્યન્તે, તાવત્સાયં વિદુર્બુધાઃ ॥૮॥

અર્થ:—અર્ધા સૂર્ય મંડળનો અસ્ત થયા પછી આકાશ-
માં જે ત્રણ નક્ષત્રો જ્યાં સુધી દેખાતાં નથી, ત્યાં સુધીજ સાચકા
ળનો સમય છે, એમ પંડિત પુરૂષો કહે છે. (૮)

સૂર્યોદ્યાતિથેસ્તથ્ય-માતિથેયં વિચક્ષણૈઃ ॥

શયનસ્થાનપાનીય-પ્રમુખૈઃ કાર્યમાદરાત્ ॥૯॥

અર્થ:—વિચક્ષણ પુરૂષોએ સૂર્યના અસ્તને અવસરે આ
વેલા અતિથિની પરોણાગત શય્યા, સ્થાનક, ખાણી પ્રમુખ આ
પીને સારી પેઠે આદરથી કરવી. (૯)

અહોર્જીતિ યામયુગ્મે વિધેયં, યામાર્થેષુ પ્રોક્તમિત્યં ચતુર્ષુ ॥

અન્તશ્ચિત્તં ચિન્ત્યમેતત્ત્વ સમ્યક્, સ્થેયઃશ્રેયઃકામ્યયા ક્ષુણ્ણ-

ધીમિઃ ॥૧૦॥

इति श्रीजिनदत्तसूरिविरचिते श्रीविवेकविलास चतुर्थ

उद्भासः ॥ ४ ॥

અર્થ:—એ રીતે સૂર્યોદયથી માંડીને બપોર સુધી જે
પ્રહરનું તથા બપોર પછીના રહેલા જે પ્રહરના મળી ચાર
અર્ધ પ્રહરોનું કૃત્ય કહ્યું. પરિપૂર્ણ કલ્યાણની જેમને ઇચ્છા
હોય તે મનુષ્યોએ ચિત્તની અંદર એનો સારી પેઠે વિચાર
કરવો. (૧૦)

ઈતિ શ્રી વિવેકવિલાસની ગુર્જર ભાષાનો ચોથો

ઉદ્ધાસ સંપૂર્ણ. [૪]

અથ પચમ ઉદ્યાસઃ ।

દર્પઃ પ્રદક્ષિણાવ્રતો, નિઃપ્રકમ્પોઽતિથાસુરઃ ॥

આયતો ઇનમૂતિશ્ચ, નિઃશબ્દો રચિરસ્તથા ॥૧॥

ચચ્ચત્કાચ્ચનસકાશ-પ્રભામણ્ડલમણ્ડિતઃ ॥

ગૃહાલોકાય માદ્ગલ્યઃ, કર્નવ્યો રજર્નમિત્તુવં ॥૨॥શુભમ્ ॥

અર્થ —મધ્યાને સમયે ઘરમા પ્રકાશને અર્થે મગજ-કાદી દીપ કગો તે જમણી બાજુએ ભમગી ખાતો, અતિ-મય દેહીપ્યમાન, લાખો, સાગી ન્યોતિવાળો મજ્જાશુદ્ધિત, મનોહર અને ચળવતા સોના જેવું પ્રભામણ પ્રદર્શન કરનારો એવો દેવો જોઈએ (૧) (૨)

સસ્ફુલિદ્ધોઽલ્પમાર્તિશ્ચ, ચામારતસ્તનુપ્રથઃ ॥

ચાતકીદાગ્રમાવેઽપિ, વિચાયસ્તિલ્લવતિમાન્ ॥૩॥

વિકીર્ણાદિ. મગજશ્ચ, પ્રદર્પો માન્દિરસ્થિતઃ ॥

પુષ્પાણામનિષ્ઠાનિ, પ્રસાન્નયાતિ નિશ્ચિત્મ ॥૪॥ શુભમ્ ॥

અર્થ —તણખા મૂડતો, નાના આકાશનો, રાખી બાજુએ ભમગી ખાતો, થોડો પ્રકાશ દેનારો, પવત, પત-ગિયો વિગેરનો ઉપદ્રવ નહીં હતા અને અદર તેલ તથા દિવેટ છતાં પણ જુઓ, વિજેરાઈ ગયેલી ન્યોતિને પ્રદર્શન કરનારો, અને તરતડ રાખ કગનારો એવો દીવો ઘરમા રહેનારા મનુષ્યોને નિઃશયી આનિદ મૂચવે છે (૩) (૪)

રાત્રો ન દેવતાપૂજા-શ્રાવણનાગનાર્તિ ચ ॥

ન વા અસ્થિતામ્બુઃ, કુર્યાન્મદ્ર ચ નો મૃતીઃ ॥૫॥

અર્થ:—મુલ્તણુ મનુષ્યે સપ્તિએ દેવપૂજા, સેનાન દાન, ભોજન, કાથા સહિત તાંમૂલ અને મંત્ર (મસલન) ચોટલાં વાનાં ન કરવાં. (૫)

સ્વદ્વાં, જીવાકુલ્યાં ઠસ્યાં, ધ્યાં કણાં મર્ત્ત્યમસામ્ ॥

પ્રતિપાદાન્વિતાં વદ્ધિ-દાનજાતાં ચ સંન્યજેત્ ॥૬॥

અર્થ:—જૂ, માંકડ વિગેરે હવથી બરાદ ગયેલી, ટુંકી, ભાંગેલી, સુનારને કષ્ટ આપનારી, મલિન, પડ પાયાવાળી અને બળેલા અથવા બિલાભા વિગેરેના લાકડાની બનાવેલી ખાદ્ય વર્જવી. (૬)

શયનાસનયોઃ કાષ્ઠ-માચતુર્યોગતઃ શુભમ્ ॥

પશ્ચાદિકાષ્ઠયોગે નુ નાશઃ, સ્વસ્ય કુલ્લસ્ય ચ ॥૭॥

અર્થ:—શુવાની તથા બેમવાની વસ્તુ જે ચાર સુધી લાકડાના કટકાથી બનાવેલી હોય તો શુભકારી બનણી. અને જે પાંચ અથવા તેથી વધારે લાકડાની બનાવેલી હોય તો તેથી વાપરનારનો તથા તેના ઘુબનો નાશ થાય છે. (૭)

પૂલ્યોર્ધ્વસ્થો ન નાદ્રાંધ્રિ-ર્નચોત્તરાપરાશિરાઃ ॥

નાનુવંશં ન પાદાન્તં, નાગદન્તઃ સ્વપેત્પુમાન્ ॥૮॥

અર્થ:—પોતાના જે પૂલ્ય હોય તેમના કરતાં ઉચે રથા નકે, સીને પગે તથા ઉત્તર અથવા પશ્ચિમ દિશા તરફ માથું રાખીને ન સુવું. (૮)

દેવતાયાન્ત્રિ વલ્લીકે, મૂરુહાણાં તલેઝંપિ ચ ॥

તથા પ્રેતવને ચૈવ, સ્વપેન્નાપિ વિદિવિક્ષિરાઃ ॥૯॥

અર્થ — દેવતાના મંદિરે રાકડા ઉપર, વૃક્ષને, તળે અમ
શાનમા તથા વિદિશામા (કોણ દિશામા) મરતક ગામ્ભીર્ય
શુભ નહી (૬)

(અથ વરલક્ષણમ્ ।)

નિદ્રાસમયપ્રાસાદ, તામ્બૂલ મુલ્લમસ્ત્યજેત ॥

લ્લાટાત્તિલક કણ્ઠાન્પ્રાલ્ય તત્પાત્તુ ગોપેતમ્ ॥૧૦॥

અર્થ — નિદ્રાનો સમય નમીપ આવે ત્યાં મૂળમાથી
તામ્બૂલ, કપાળ ઉપથી તિલક, ડઠમાથી માળા અને ગળા
થકી સી એટલાને ૬૦ ટાકી નાખવા (૧૦)

મજા દરાતિ તામ્બૂલ-પ્રાપુર્જગતિ પાંચદશમ્ ॥

મૌર્ગિસ્પર્શકર માલ્ય, પ્લહાનેશ્વરાઃ સ્ત્રિયઃ ॥૧૧॥

અર્થ — નિદ્રા સમયે મૂળમા તામ્બૂલ હોય તો તે
પ્રુદ્ધિને નાન ઠગે છે, કપાળે નિલક હોય તો તે આયુષ્યને
હરણ કરે છે, ગળામા કુલની માળા હોય તો તેથી મર્ધ આવીને
સ્પર્શ કરે એવો મલમ ગદે છે, અને સ્ત્રિયો પાને હોય તો
બાળની હાનિ કરે છે (૧૧)

ત્રયુઃ શીલ કુલ વિત્ત, ત્રયો વિગ્ધ સનાથના ॥

પ્રતાપિ યસ્ય વિગ્ધન્તે, તર્મ દેયા નિજા મુક્તા ॥૧૨॥

અર્થ — જેના નરીંગ, શીળ, કુળ, ધન, વય, [ઉંમર]
અને વિદ્યા એ છ વના માન દોય, તથા જેને માથે વરીલ
માણનો માન હોય, તેને પોતાની કયા આપવી (૧૨)

મૂર્મનિર્મનદમ્ભ-શૃંગોત્તમિલાદિજામ્ ॥

ત્રિગુણાધિવર્ણના, ન દેયા ર ગવા પુરઃ ॥૧૩॥

અર્થ:—હાથા માળુઓએ મૂળે, નિર્ધન, દૂર રહેલો, ધૂર, મોક્ષની ઇચ્છા કરનારો તથા પુત્રીથી ત્રણ ગણા વર્ષ કરતાં અધિક ઉંમરનો એટલાઓને પાનાની કન્યા આપવી નહી. (૧૩)

વજ્રો વજ્રં તત્પાદં ચ, વિસ્તીર્ણ ગચ્યતે ત્રયમ્ ॥

ગમ્ભીરં ત્રિતયં શસ્યં, નાભિઃ મન્ત્રં સ્વસ્તથા ॥૧૪॥

અર્થ:—પુરૂષનાં વક્ત્રસ્થળ (હાતી), મુખ તથા કપાળ એ ત્રણે પહોળા હોય તો વખાણુવા લાયક નાણુવાં. તથા નાભિ, સ્વભાવ અને સ્વર એ ત્રણે ગંભીર હોય તો પ્રશસ્ત નાણુવાં. (૧૪)

કણ્ઠઃ પૃષ્ઠં ચ લિઙ્ગં ચ, જઙ્ઘયોર્યુગલં તથા ॥

ચત્વારિ यस્ય દ્રસ્વાનિ, પૃજામામોતિ સોન્વહમ્ ॥૧૫॥

અર્થ:—જે પુરૂષનાં કંઠ, પીઠ, લિંગ અને બે બાંધ એટલા અવયવ હુંકા હોય, તો તે પુરૂષ હિમેશાં પૂજા પામે. (૧૫)

અઙ્ગુલિપર્વભિઃ કેશૈર્નર્સર્વદન્તૈસ્ત્વચાપિ ચ ॥

સુક્ષ્મકંઠઃ પશ્ચાભિર્મર્ત્યા, મવાન્તિ મુખજીવનઃ ॥૧૬॥

અર્થ:—જેમનાં આંગળીનાં પર્વ, કેશ, નખ, દાંત અને આમડી એ પાંચ વાનાં સૂક્ષ્મ [પતળાં] હોય, તે માણુરુ સુખે જીવે છે. (૧૬)

સ્તનયોર્નેત્રયોર્મધ્યં, દોર્દ્રિયં નાસિકા હનુઃ ॥

પશ્ચ દીર્ઘાણિ यस્ય રદુઃ, સ ધન્યઃ પુરુષોત્તમઃ ॥૧૭॥

અર્થ:—જેના બે સ્તનોની તથા બે નેત્રોની વચ્ચેનો

લાગ, બે બાહુ, નાસિકા અને હડપચી એટલા અવયવ લાખા હોય, તે પુરૂષ ઉત્તમ ધન્ય બાણુવો (૧૭)

નાસા ગ્રીવા નલાઃ કલા, હૃદય વદન તથા ॥

પાદ્મિર્યુન્નર્તર્મત્યા, સદૈવોન્નતિમાજિનઃ ॥૧૮॥

અર્થ —નાસિકા, ગ્રીવા (ઠોક), નખ, કાખ, છાતી અને મુખ એ ૬ અવયવ જેના ઉપા હોય તે પુરૂષ હ મેશા ઉન્નતિ પામે (૧૮)

નેત્રાન્તરસનાતાલુ, નરસા ગરોર્ગપિ ચ ॥

પાણિપાદતલે ચાપિ, સપ્ત રક્તાનિ સિદ્ધયૈ ॥૧૯॥

અર્થ—આખના ખૂણા, શબ, તાળવુ, નખ ઠોક, હાથના તથા પગના તળીયા, એ સાત અવયવ રાતા હોય તો તેથી કાર્યસિદ્ધિ થાય છે (૧૯)

ગતેઃ પ્રશસ્યતે ઋણઃ, તતઃ સ્નેહોઽમૃતઃ સ્વરઃ ॥

અતસ્તેજ દતઃ સત્ત્વ—મિદ્રં દ્વાર્ત્રિગતોઽધિકમ્ ॥૨૦॥

અર્થ —ગતિથી વર્ણુ અધિક બાણુવો, તેમજ વર્ણુથી સ્નેહ, સ્નેહથી સ્વર અને સ્વરથી તેજ અધિક બાણુવુ, તથા તેજથી અને ણત્રીશે લક્ષણથી સત્ત્વ અધિક બાણુવુ [૨૦]

સાત્ત્વિકઃ સુકૃતી જ્ઞાની, રાજસો વિપયી ભ્રમી ॥

તામસઃ પાતકી લોભી, સાત્ત્વિકોઽમીષુ સત્તમઃ ॥૨૧॥

અર્થ —સત્ત્વગુણી માણસ પુણ્યગીજ અને જ્ઞાની હોય છે ગ્નેશુણી માણસ વિપયી અને ચચળ પ્રવૃત્તિનો હોય છે તથા તમોગુણી માણસ પાપી અને ક્રોધી હોય છે [૨૧]

સર્વમ્ મુખગૌ નીરુક, મુખ્વમ્ મુનયઃ કવિઃ ॥

સૂચયત્યાત્મનઃ શ્રીમાન્નરઃ સ્વર્ગમાગમૌ ॥૨૨॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય ધર્મી, સુંદર, મુખથી જગાડાય એવી. નિદ્રાનો ધાગી અથવા સારાં સ્વપ્નોને જોનારો, ન્યાય માર્ગ ચાલનારો અને સુખાણુ હોય, તે શ્રીમાન્ નર પોતાનું સ્વર્ગમાંથી આવવું અને પાછું સ્વર્ગે જવું સૂચવે છે. (૨૨)

નિર્દમ્ભઃ સદયો દાનોઃ દાન્તો દલ ક્કજુઃ સદા ॥

મર્ત્યયોનિસમૂહતો, માર્ત્યો નત્ર પુનઃ દુમાન્ ॥૨૩॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય દંભ [દિંગ] વિનાનો, દયાળુ, ઉદાર, ઇન્દ્રિયોને વશ કરનારો દક્ષ અને સદાએ સરળ સ્વભાવનો એવો હોય તે, મનુષ્યોનિમાંથીજ આવ્યો, અને પાછો મનુષ્યોનિમાંજ ઉત્પન્ન થયો, એમ જાણવું. (૨૩)

માયાલોભશ્ચલાલય-વ્રજાહારાદિચેદ્વિતૈઃ ॥

તિર્યગ્યોનિસમુત્પત્તિઃ, ત્યાપયત્યાત્મનઃ પુમાન્ ॥૨૪॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય કપટી, લોભી, ભૂખ્યો, આળસુ, બહુ ખાધરો તથા એવાજ બીજા લક્ષણનો હોય, તે પોતાનું તિર્યંચ યોનિમાંથી આવવું અને પાછું તિર્યંચ યોનિમાં જવું અકટ જણાવે છે. (૨૪)

સરાગેઃ સ્વજનદ્રેષી, કદુવાઞ્ઞર્વસઙ્ગકૃત્ ॥

શાસ્તિ સ્વસ્ય ગતાયાનં, નર્ગો નરકવર્ત્યનિ ॥૨૫॥

અર્થઃ—જે મનુષ્ય રોગી, સ્વજનનો દ્રેષી, કડવાં વચન ચોલનારો અને મૂર્ખ લોકોની સાબત કરનારો એવો હોય, તે પોતાનું નરકમાંથી આવવું અને પાછું નરકે જવું કહે છે (૨૫)

નાસિકાનેત્રદન્તોષ્ઠ-કરકર્ણાધિના નરાઃ

સમાઃ સમેન વિજ્ઞેયા, વિષમા વિષમેણ તુ ॥૨૬॥

અર્થ — જે મનુષ્યના નાક, આંખ, દાંત, હોઠ, હાથ, કાન અને ધગ એ સાત અવયવ સીધા હોય, તે માણુમ સ્વભાવના સીધા મનુષ્ય અને જે ઉપર કહેલા સાત અવયવો વાકા હોય, તે વક્ર સ્વભાવના બાણુવા (૨૬)

ગતિસ્વરાસ્યિત્વગ્માસ-નેત્રાદિપ્વદ્ગકેશુ ચ ॥

યાનમાજ્ઞા ધન ભોગઃ, સુખ યોપિત્ત્રક્રમાદ્રવેત્ ॥૨૭॥

અર્થ — માણુમની ગતિ ઉપરથી વાહન (ગાડીધોડા પ્રમુખ), સ્વર ઉપરથી આજ્ઞા (હુકમ), હાડની ગચના ઉપરથી ધન, આમડી ઉપરથી ભોગ, માત્ર ઉપરથી સુખ અને નેત્ર ઉપરથી સ્ત્રી કહેવાય છે એટલે ગતિ પ્રમુખ છ વાના જેવા લક્ષણના હોય, તેવી વાહન પ્રમુખ છ વસ્તુ મળે છે (૨૭)

આવર્તો દક્ષિણે ભાગે, દક્ષિણઃ શુભકૃત્તૃણામ્ ॥

વામો વામેઽતિનિન્નશ્ચ, દિગન્યત્વે તુ મયમઃ ॥ ૨૮ ॥

અર્થ — પુરૂષની જમણી બાજુએ દક્ષિણાવર્ત ભમમે હોય તો શુભ બાણુવો અને ડાબી બાજુએ વામાવર્ત હોય તો ધણોજ અશુભ સમજવો તથા જે જમણી બાજુએ વામાવર્ત અને ડાબી બાજુએ દક્ષિણાવર્ત હોય તો મધ્યમ બાણુવો (૨૮)

ઉત્પાત પિટ્તકો લક્ષ્મ, તિલકો મગકોઽપ્રજઃ ॥

સ્પર્શનં સ્ફુરણ પુસઃ, શુભાયાદ્ગે મદક્ષિણે ॥ ૨૯ ॥

અર્થ — પુરૂષની જમણી બાજુએ શુકન, પિટક (દિલ્લો) ચિન્હ, તલ અને છિદ્રરહિત મગ દોય, તથા જમણી બાજુએ સ્પર્શ અને સ્ફુરણ વાય તો તે શુભને આજ્ઞા આપના (૨૯)

વાપશ્ચર્યાં પુનર્વામે, મયંકસ્ય નમ્ય ચ ॥

ગ્રાનાંજપિ દક્ષિણે કૌશિ—અસ્યાઙ્ગે શુભો મતઃ ॥૩૦॥

અર્થ—પુરૂષની નમણી બાજુએ જે સારાં લક્ષણ કહ્યાં તે સીઓની તથા સીલગ્ન ઉપર ઉત્પન્ન થએલા પુરૂષની પણ સારી બાજુએ સારાં લક્ષણાં. કેટલાક શાસ્ત્રકારો પુરૂષની નમણી બાજુએ થએલો ખર્જાદિકનો ઘાત પણ સારો કહે છે. (૩૦)

પુટું યદેવ દેહે સ્યા—લક્ષણં વાપ્યલક્ષણમ્ ॥

ઇતરદ્રાધ્યતે તેન, વલત્ફલદં પુનઃ ॥૩૧॥

અર્થ—મનુષ્યના શરીર ઉપર જે સારું અથવા માહું લક્ષણ પ્રબળ હોય તે બીજા સર્વ લક્ષણોને કારે મૂકે છે, અને પોતે જોરાવર હોવાથી ફળદાયી થાય છે. (૩૧)

ઘણિવન્ધાત્પરઃ પાણિ—સ્તસ્ય લક્ષણમુચ્ચતે ॥

તત્ર ચાક્ષુષ્ટુ એકઃ સ્થ—ચત્ત્સોઽક્ષુલયઃ પુનઃ ॥૩૨॥

અર્થ—મણિબન્ધથી (કાંડાથી) આગળ જે શરીરનો ભાગ આવ્યો તે હાથ કહેવાય છે. તેનું લક્ષણ હવે કહે છે. હાથને એક અંગુઠો અને બીજી ચાર આંગળીઓ હોય છે. (૩૨)

નામાન્યાસાં યથાર્થાનિ, જ્ઞેયાન્યક્ષુલિતઃ ક્રમાત્ ॥

તર્જની મધ્યમાનામા, કનિષ્ઠા ચ ચતુર્થિકા ॥૩૩॥

અર્થ—તે ચારે આંગળીઓનાં નામ અંગુઠાની બાજુથી અનુક્રમે તર્જની, મધ્યમા, અનામિકા અને કનિષ્ઠા એવાં બાજુવાં. એ નામ અર્થના અનુસારથી રાખ્યા છે. જેમ તર્જના કરે તે

તર્જની, મધ્યભાગમાં આવી તે મધ્યમાં, જેને વિશેષ નામ આ
પેલું નથી તે અનામિકા અને જે અર્ધ કગ્તા નાની તે કનિકા
(૩૩)

અર્ક્યકૃતિનઃ પાણિ-દક્ષિણો વક્ષ્યતે નૃણામ્ ॥

ગામમૃચા પુનર્વામઃ, સ પ્રગસ્યોઽતિકોમલઃ ॥૩૪॥

અર્થ — પુરૂષનો જમણો હાથ કામકાજ કરવાથી ટઠણ
ન થયેલો હાથ તો તે જોવાય છે, અને સ્ત્રીઓનો હાથ
જોવાય છે તે અતિ ઢોમળ હાથ તો પ્રથમા કરવા યોગ્ય
જાણવો (૩૪)

જલા ચક્ષોષ્ણોઽરુણોઽસ્વેદો-ઽરિઃ સ્નિગ્ધશ્ચ માસલઃ ॥

જલક્ષ્મસ્તામ્રનલ્લો દીર્ઘા—ફુલીકો વિપુલઃ કરઃ ॥૩૫॥

અર્થ — ઉઠ્ઠો, રાતો, પરમેવા વિનાનો, દિઠ્ઠરહિત,
રિનઘ, માસથી પુષ્ટ, ઢોમળ, લાલ નખથી અને લાખી
આગળીઓથી શોભીતો, એવો વિશાળ હાથ ઉત્તમ હાથ (૩૫)

પાણેસ્ત્રલેન શોણેન, ધની નીલેન મયપઃ ॥

પીતેનાગમ્યનારીગઃ, કલ્માપેણ ધનોઽજ્ઞિતઃ ॥૩૬॥

અર્થ — માણસની હાથેળી જો લાલ હાથ તો તે
ધનવાન થાય, નીલવણ હાથ તો મધ્યમાન ડરે, પીતવર્ણ
(પીળી) હાથ તો અજાણ્ય સ્ત્રીની જોડે વિષય ભોગ કરે,
અને કાખર ચિત્રવર્ણ હાથ તો દરિદ્રી થાય (૩૬)

દાતોઽન્નતે તન્ પાણે-નિમ્ને પિતૃપ્રનોઽજ્ઞિત ॥

ધની મમૃતનિમ્ને સ્યા-દ્વિષમે નિર્મનઃ પુનઃ ॥૩૭॥

અર્થ — માણસની હાથેળી જાંચી હાથ તો તે દાન

થાય, ઊંડી હોય તો પિતાના દ્રવ્યથી રહિત થાય, ઊંડી છતાં સારી રેવાથી યુક્ત હોય તો ધનવાન થાય, અને જે વિપત્તિ (ઊંચી નીચી) હોય તો નિર્ધન થાય. (૩૭)

અરેશ્વં વહુરેશ્વં વા, યેષાં પાણિતલં નૃણામ્ ॥

તે સ્યુરત્પાયુષો નિઃસ્વા, દુઃશ્ચિતા નાત્ર સંશયઃ ॥૩૮॥

અર્થ:—જે મનુષ્યના હાથમાં ગિલકુલ રેખા ન હોય, અથવા હોયતો ઘણી હોય, તો તે અદ્વિપાયુષી, દરિદ્રી અને દુઃખી થાય એમાં સંશય નથી. (૩૮)

કરપૃષ્ઠં સુવિસ્તીર્ણં, પીનં સ્નિગ્ધં સમુન્નતમ્

શ્લાઘ્યં ગૂઢશિરં નૃણાં, ફળમૃત્ફળસંનિભમ્ ॥ ૩૯ ॥

અર્થ:—મનુષ્યના હાથની પાછળનો ભાગ વિસ્તારવાળો, પોતે સ્નિગ્ધ હોય, પીન હોય, નરો હોય, તે જોવાથી નહીં હોવાથી સુંદર અને સર્પની કણા સરખો હોય તો તે વળાણવા લાયક જાણવો. [૩૯]

વિવર્ણં પરુષં રૂઢં, રોમશં માંસવર્જિતમ્ ॥

મણિવન્ધસર્પં નિમ્નં, ન શ્રેષ્ઠં કરપૃષ્ઠકમ્ ॥ ૪૦ ॥

અર્થ:—મનુષ્યના હાથની પાછળનો ભાગ કંતિરહિત, કઠણ, લૂખો, રોમવાળો, માંસવિનાનો અને મણિબંધ (કાંડા) જેટલો નીચો હોય તો તે શ્રેષ્ઠ ન જાણવો. (૪૦)

પાણિમૂલં દૃઢં ગૂઢં, શ્લાઘ્યં સુશ્લિષ્ઠસંધિકમ્ ॥

અર્થ:—મનુષ્યનો મણિબંધ (કાંડો) દૃઢ, (મજબૂત) સુસ્થ (હાડકાં દેખાય નહિ એવું) બરાબર જોડેલા સંધિથી

ગોખીતું હોય તો પ્રગમા ચોગ્ય જાણુ અને ઠીકું,
 નલાવતા કદ્દ કદ્દ નખદ કગનાડ તવા હીન હોય તો નિર્ધનપણ
 પ્રમુખ હુ ખ આપે છે (૪૧)

દીર્ઘનિર્માસર્વાણઃ, સુક્ષ્મા દીર્ઘાઃ મુકોમલાઃ ॥

મુષનાઃ સરલા વૃત્તાઃ, સ્ત્રીરોરદુલ્ભાઃ ત્રિયે ॥૪૨॥

અર્થ —શ્રીઓની તથા પુરુષોની આગળીઓ લાળી તવા
 માસ ગઢિત સાધાની (માધા) સદમ, લાળી, કોમળ, ધન
 (મનુષ્ય) મરણ તથા ગોળ એવી કલ્યાણને અર્થે જાણવી.
 (૪૨)

યન્તન્તિ વિન્ના સુખાઃ, સુન્ના રક્ષા દરિદ્રતામ્ ॥

બ્રહ્મગત રત્નિન્ના-શ્વેત્ય ચિપિદાશ્ચ તાઃ ॥૪૩॥

અર્થ —આતસવાળી, સફી, જાડી અનેવાદી આગળીઓ
 હોય તો દરિદ્રીપણ, બહાર નમેલી હોય તે ગમ્યનો ધાત
 અને અપદી હોય તો દામપાત્ર આપે છે (૪૩)

અનામિકાન્યરંગવાયા, કનિષ્ઠા સ્યાન્નદારિકા ॥

રત્નગદ્ગિન્નદા પુમા માતૃપત્નો રહ્મન્થા ॥ ૪૪ ॥

અર્થ —જે મનુષ્યની અનામિકાની અત્ય (છેડી)
 રેખાની કનિષ્ઠા અધિષ્ઠા લાગી હોય, તો ધનવૃદ્ધિ થાય, અને
 મોનાજનો પણ પતો હોય (૪૪)

મયમાયાન્તરંગવાયા, અધિકા તર્જની યદિ ॥

મનુરમ્નામિતુ. પક્ષ, શ્રીષ વ્યયયતોન્યથા ॥ ૪૫ ॥

અર્થ —ચમકી અંગની ઠી છેડી રેખાથી બે તર્જની

(અંગુઠા પાસેની આંગળી) અધિક લાંબી હોય તો પતિનો પદ્મ તથા લક્ષ્મી ઘણી જાણવી. (૪૫)

અદ્ભુટ્સ્યાદ્ભુલીનાં વા, યદ્વૂનાધિકતા ભવેત્ ॥

ધનૈર્ધાન્યૈસ્તદા હીનો, નરઃ સ્યાદાયુષાપિ ચ ॥૪૬॥

અર્થઃ—અંગુઠો અને બીજી આર આંગળીઓ એમાં જો ન્યૂનાધિકપણું હોય તો મનુષ્ય ધન, ધાન્ય તથા આયુષ્યથી હીન થાય છે. (૪૬)

મણિવન્ધે યવશ્રેણ્ય—સ્તિસ્રશ્વેત્તન્નૃપો ભવેત્ ॥

યદિ તાઃ પાણિપૃષ્ઠેઽપિ, તત્તોઽધિકતરં ફલમ્ ॥૪૭॥

અર્થઃ—જો મણિબાંધ ઉપર ત્રણ જવની પંકડીઓ હોય, તો તે મનુષ્ય રાજા થાય, અને જો તે (જવની પંકડીઓ) હાથની પાછળ પણ હોય, તો રાજ્ય કરતાં પણ વધારે ફળ મળે. (૪૭)

દ્વામ્યાં ચ યવમાલામ્યાં, રાજમન્ત્રી ધર્મો બુધઃ ॥

એકયા યવપદ્મત્યા તુ, શ્રેષ્ઠો વહ્ન્યનોઽર્ચિતઃ ॥૪૮॥

અર્થઃ—જો મણિબાંધ ઉપર જવની બે પંક્તિ હોય તો રાજાનો મંત્રી, મોટો ધનવાન અથવા પંડિત થાય, અને એક પંક્તિ હોય તો લોકમાં શ્રેષ્ઠ, પૂજિત તથા મોટો ધનવાન થાય. (૪૮)

સૂક્ષ્માઃ સ્ત્રિગ્ધાંશ્ચ ગમ્ભીરાઃ, પ્રલમ્બા મધુપિદ્ગલાઃ ॥

અવ્યાવૃત્તા ગતચ્છેદાઃ, કરેરેપાઃ શુભા નૃણામ્ ॥૪૯॥

અર્થઃ—મનુષ્યના હાથની રેખા સૂક્ષ્મ, (પાતળી) સ્ત્રિ ગ્ધ (સ્નેહવાળી), ગંભીર (ઉડી), લાંબી, મધ્ય સરખી ભૂરા રંગની, પાછી ન વળેલી અને છેદરહિત એવી હોય તો શુભ જાણવી. (૪૯)

ત્યાગાય શ્રોણગમ્ભીરાઃ, મુસાય મયુષિદ્ગલાઃ ॥

સૂક્ષ્માઃ ત્રિયે મહેયુસ્તાઃ, સૌભાગ્યાય સમૂલકાઃ ॥૫૦॥

અર્થ — મનુષ્યના હાથની રેખા લાલ ઉઠી હોય તે ઉદારપણું આપે, મધ સરખી ભૂગરગની હોય તો સુખ આપે પાતળી હોય તો લક્ષ્મી આપે, અને મૂળથી છેડા મુધી છે રહિત હોય તો મૌભાગ્ય આપે (૫૦)

હિન્નાઃ સપહ્વા રૂક્ષા, ત્રિપમાઃ સ્થાનરુન્યુતાઃ ॥

વિરર્ણાઃ સ્ફુટિતાઃ કૃષ્ણા, નીલામ્તન્વ્યશ્ચ નોત્તમાઃ ॥૫૧॥

અર્થ — મનુષ્યની હાથની રેખા છેદાયલી, ફાટાવાળી લૂપી, આડીઅવળી, સ્થાનકથી ભ્રષ્ટ થએલી, ખરાબ વર્ણની ફટેલી, કાળી, નીલવર્ણની તથા પાતળી હોય તો ઉત્તમ નહીં (૫૧)

હેઘ સપટ્વા રેરસા, હિન્ના જીવિતસગયમ્ ॥

કટન્નં પરુષા દ્રવ્ય-વિનાશ ત્રિપમાર્પયેન્ ॥૫૨॥

અર્થ — ફાટાવાળી રેખા હલેરા આપે, છેદાયલી જીવિતનો સંશય કરે, કઠણ રેખા ખરાબ અન્ન આપે, અને આડી અવળી રેખા વિનાશ કરે (૫૨)

મણિવન્ગાત્પિતુલેસ્વા, કરમાદ્વિમવાયુષોઃ ॥

તેલ્લે દ્વે યાન્તિ તિસ્રોઽપિ, તર્જન્યદ્ગુપ્તકાન્તરમ્ ॥૫૩॥

અર્થ — મણિબંધથી પિતાની રેખા નીકળે, અને હરલથી (કનિષ્ઠા આગળીના નીચેના ભાગથી) ધનની એક અને આયુષ્યની એક એવી બે રેખા નીકળે, અને તે ત્રણે રેખા તર્જની અને અંગુઠા એ બેની વચ્ચે જાય (૫૩)

આયુર્લેખાવસાનાભિ-લેખાભિર્મણિવન્વતઃ ॥

સ્પષ્ટાભિર્ભ્રાતરઃ સ્પષ્ટે-તરાભિર્જામયઃ પુનઃ ॥૬૨॥

અર્થઃ—મણિબાંધથી આયુષ્યની રેખા સુધી જેટલી રેખાઓ સ્પષ્ટ હોય તેટલા ભાઈ બાણુવા, અને જેટલી અસ્પષ્ટ હોય તેટલી બહેનો બાણુવી. (૬૨)

અસ્પષ્ટાભિરદીર્ઘાભિ-ભ્રાતૃજામ્યાયુપહ્લુટિઃ ॥

યવૈરઙ્ગુષ્ઠમૂલસ્થૈ—સ્તત્સંખ્યાઃ સૂનવો નૃણામ્ ॥૬૩॥

અર્થઃ—ભાઈની તથા બહેનની રેખા બે અસ્પષ્ટ અને ટૂંકી હોય તો તેમનું (ભાઈ બહેનોનું) આયુષ્ય હુટિત બાણુવું. અંશુઠાના મૂળમાં જેટલા જવ હોય, તેટલા પુત્ર બાણુવા. (૬૩)

યવૈરઙ્ગુષ્ઠમધ્યસ્થૈ-વિદ્યાધ્યાતિવિભૂતયઃ ॥

શુક્લપક્ષે તથા જન્મ, દક્ષિણાઙ્ગુષ્ઠગૈશ્વ તૈઃ ॥૬૪॥

અર્થઃ—અંશુઠાના મધ્ય ભાગમાં જવ હોય તો તેથી વિદ્યા, ધ્યાતિ અને લક્ષ્મી મળે છે. તે (જવ) બે જમણા અંશુઠાના મધ્ય ભાગમાં હોય તો તે માણસનો શુકલ પક્ષમાં જન્મ થયો એમ બાણુવું. (૬૪)

કૃષ્ણપક્ષે નૃણાં જન્મ, વામઙ્ગુષ્ઠગૈર્ત્રયૈઃ ॥

વહુનામયૈવૈકસ્ય, યવસ્ય સ્યાત્સમં ફલમ્ ॥૬૫॥

અર્થઃ—ડાળા અંશુઠામાં જવ હોય તો તે માણસનો જન્મ કૃષ્ણ પક્ષમાં થયો એમ બાણુવું. એક અથવા ઘણા જવ હોય તો તે સર્વનું કૃણ સરખું હોય છે. (૬૫)

एकोऽप्याभिमुखः स्वस्य, मत्स्यः श्रोत्राद्धिकारणम् ॥

સપ્રણા કિ પુનસ્તૌ દ્વૌ, પાણિમૃગ્ધિયતૌ નૃણામ્ ॥૬૬॥

અર્થ — મનુષ્યના હાથના મૂળ ભાગમા જો એક-૨ મત્સ્ય સામા મુખનો હોય તો તેથી લક્ષ્મીની વૃદ્ધિ થાય, અને તે સપૂર્ણ મત્સ્ય હોય તો ૫૦૪ી લક્ષ્મીની વૃદ્ધિ થાય એમા શુ કહેવુ (૬૬)

शक्रो मकरः शङ्खः, पद्मः पाणौ स्वसमुग्रः ॥

ફલદઃ સર્વદેવાન્ત-કાલે પુનરસમુગ્રઃ ॥૬૭॥

અર્થ — શક્ર (મત્સ્યની એક ભતિ), મગર, શખ અને કમળ એ ચાર ચિન્હો હાથને વિષે પાનાની મનુષ્ય હોય તો મદેવ આશ ફળપ્રદ બાણવા, અને જો મનુષ્ય નહોય તો અતઃકાળે ગુણ ફળ દેનારા બાણવા (૬૭)

शत सहस्रं लक्षं च, कोटि दद्याद्यथा क्रमम् ॥

મીનાદયઃ કરે સ્પષ્ટા-દિગ્દશભિચારગોઽપદાઃ ॥૬૮॥

અર્થ — મત્સ્ય પ્રમુખ ચિન્હો ને હાથને વિષે સ્પષ્ટ હોય તો અનુક્રમે સો, હજાર, લાખ અને કોટિ દ્રવ્ય આપે છે પણ જો ઊંચ સિંગ તથા અસ્પષ્ટ વિગેરે હોય તો અસ્પષ્ટ ધન આપે છે (૬૮)

सिंहासजदिनेशभ्या, नन्वावर्तेन्दुतोरणैः ॥

પાણિરંગામ્યિર્તર્મન્યાઃ, સાર્વભૌમા ન સજય ॥૬૯॥

અર્થ — જો મનુષ્યના હસ્તગેષ્ઠામા સિંહાસન, સૂર્ય, નવાવર્ત, ચંદ્ર અને તોગણ હોય તો તે માણુમ માર્વભૌમ રાજા થાય એમા સશય નથી (૬૯)

અર્થ:—ઉપર કહેલી બન્ને રેખા જો મધ્યમા આંગળીની નીચે હોય, તો તે માણસ દરિદ્રી અને અધર્મી થાય; તથા તર્જની આંગળી અને ગૃહબંધ વચ્ચે રેખા આવેલી હોય તો તે યુગે મરણ આપનારી હોય. (૭૮)

અક્ષુષ્ટપિતૃરેશ્વાન્ત-મૃત્યુર્ગ્રેવા પદપદા ॥

અપત્યરેશ્વાઃ સર્વાઃ સ્યુ-ર્મત્સ્યાક્ષુષ્ટતલાન્તરે ॥ ૭૯ ॥

અર્થ—અંગુઠો અને પિતાની રેખા એમની વચ્ચે આડી રેખા હોય તો તે પદ આપનારી જાણુવી. તથા મત્સ્ય અને અંગુઠો વચ્ચે રહેલી રેખાઓ સંતતિની જાણુવી. [૭૯]

અક્ષુષ્ટસ્ય તલે यस્ય, રેષા કાકપદાકૃતિઃ ॥

તસ્ય સ્યાત્પશ્ચિમે કાલે, વિપત્તિઃ શૂલરોગતઃ ॥૮૦॥

અર્થ:—જેના અંગુઠાને તળે કાક પદ સરખી (કાગડાના પગસરખી) રેખા હોય, તે માણસ છેલ્લી અવસ્થામાં શૂળ રોગથી મરણ પામે. (૮૦)

ત્રિલઘ્વાન્યજ્જુલિમધ્યાનિ, દ્રવ્યસંચયેતદે ॥

તાનિ ચેચ્છિદ્રયુક્તાનિ, ત્યાગશીલસ્તતો નરઃ ॥૮૧॥

અર્થ:—ચારે આંગળીઓનાં આંતરાં જો છિદ્રવિનાનાં હોય એટલે ચારે આંગળીઓ ભેગી સીધીં જોડી રાખે તો જો વચ્ચે છિદ્ર ન દેખાય, તો તે પુરૂષ દ્રવ્યનો સંચય કરે એમ જાણવું. અને જો તેમ કરતાં વચ્ચે છિદ્ર દેખાય તો તે પુરૂષ દાતાર થાય એમ જાણવું. (૮૧)

તર્જનીમધ્યમારન્ધ્રે, મધ્યમાનામિકાન્તરે ॥

અનામિકાકાનિષ્ઠાન્ત-ચ્છિદ્રે સતિ યથાક્રમમ્ ॥૮૨॥

उन्मतः प्रथमे ज्येष्ठे, द्वितीये च तृतीयके ॥

भोजनावसरे दुःखं, केऽप्याहः श्रीमतामपि ॥८३॥

અર્થ — તર્જની અને મધ્યમ કેમની વચ્ચે છિદ્ર દેખાય તો આયુધના પહેલા તૃતીયાગ્ર (ત્રીજા ભાગમાં), મધ્યમાં અને અનામિકા એમની વચ્ચે છિદ્ર હોય તો આયુધના બીજા તૃતીયાશમાં તથા અનામિકા અને કનિષ્ઠા એમની વચ્ચે છિદ્ર હોય તો આયુધના ત્રીજા તૃતીયાશમાં શ્રીમાન્ લોકો પણ ભોજનને અવસરે દુઃખ પામે એવો ઠેકલાક આચાર્યોનો મત છે (૮૨) (૮૩)

आवर्ता दक्षिणाः श्रेष्ठाः, साङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वमु ॥

ताम्रस्त्रિગોच्छ्रિત્વાस्तુ—पर्वार्धोत्था नखाः शुभाः ॥८४॥

અર્થ — અંગુઠાના તથા બીજા ચારે આગળીઓના અગ્ર ભાગને વિષે જમણી બાજુએ લમરી ખાતા આવર્ત (લમરા) હોય તો તે શ્રેષ્ઠ જાણવા તથા રાતા, ત્રિગ્ધ (ચોપડેલા), અણીવાળા ઉંચા અને છેદા પર્વના (સાધના) અર્ધા ભાગથી નીચરેલા એવા નખ હોય તો તે શુભ જાણવા (૮૪)

भैरव्यतित्वमस्याभै—नेस्य पीतैः सरोगता ॥

पुष्पितैर्दुष्टशीलत्व, क्रौर्य व्याघ्रोपमैर्नखैः ॥ ८५ ॥

અર્થ — માણસના નખ સદેહ હોય તો યતિપણું, હાડકા ચરખા રંગના હોય તો દરિદ્રીપણું, પીળા હોય તો રોગ, ફૂલવાળા હોય તો કુસીળપણું અને વાઘના નખ સજ્જા હોય તો કૂરપણું વાચ એમ જાણવું (૮૫)

શુક્ત્યામૈઃ ક્યામલૈઃ સ્થૂલૈઃ, સ્ફુટિતાઘ્રૈશ્ચ નીલકૈઃ ॥

અત્રોત્પ્લવકૈશ્ચ, નરૈઃ પાતકિનોઽધમાઃ ॥૮૬॥

અર્થઃ—જે માણસના નખ છીપ સંરખાં, કાળાં બહાં
અથ ભાગમાં ફૂટેલાં, નીલવર્ણુ, નિસ્તેજ, લૂખાં અને વાંકાં
હોય તે અધમ પાપી સમજવા. (૮૬)

નરેષુ વિન્દવઃ શ્વેતાઃ, પાણ્યોશ્ચરણયોરપિ ॥

આગન્તવઃ પ્રગસ્તાઃ સ્યુ-રિતિ મોજનૃપોઽભ્યધાત ॥૮૭॥

અર્થઃ—હાથનાં તથા પગનાં પણ નખ ઉપર જે સફેદ
બિંદુઓ ઉત્પન્ન થઈ કેટલાક દિવસ રહી પછા નાશ પામતા
હોય તો તે શ્વેત છે, એમ ભોજનજન્યે કહ્યું છે. (૮૭)

તર્જન્યાદિનરૈર્મુઘ્રે-ર્જાતપ્રાત્રસ્ય તુ ક્રમાત્ ॥

અર્ધત્ર્યંશચતુર્થાંશા-પ્ટાંશા સ્યુઃ સહજાયુષઃ ॥૮૮॥

અર્થઃ—માણસની તર્જની, મધ્યમા, અનામીકા અને
કનિકા એ ચારે આંગળીમાં એક આંગળીનું જન્મથી માંડીને
નખ વાંકો હોય તો તે માણસ અનુક્રમે પચાશ વર્ષ, તેત્રીસ વર્ષ
અને ચાર માસ, પચીસ વર્ષ અને સાડાબાર વર્ષ સુધી
જીવે. (૮૮)

અઙ્ગુષ્ઠસ્ય નરે મુઘ્રે, ધર્મતીર્થરતો નરઃ ॥

કૂર્માન્નતેઽઙ્ગુષ્ઠનરે, નરઃ સ્યાદ્ધાગ્યવર્જિતઃ ॥૮૯॥

અર્થઃ—જેના અંગુઠનો નખ વાંકો હોય, તે માણસ ધર્મ
અને તીર્થ એમની સેવા કરે, તથા જેના અંગુઠનો નખ કાચળા
જેવો ઉઘો હોય, તે માણસ ભાગ્યહીન થાય. (૮૯)

અથ નવલક્ષણાનિ ।

નવલક્ષણલાવણ્ય-કૂલજાત્યાગ્રલંકૃતામ્ ॥

કન્યકાં નૃણ્યાટ્પ-વર્તીમવ્યદ્ભવિગ્રહામ્ ॥૧૦॥

અર્થ -- બાધુ-(બાઈ)-વાળી, મારા લક્ષણની, લાવણ્ય વતી, જો આ કુળની, ઉત્તમ જાતની, રૂપવતી અને જેના શરીરના અવયવમાં કંઈ ખામી નથી, એવી કન્યા પુરૂષે પચ્છબી (૬૦)

અષ્ટમાદર્પિતો યાવ-દૂર્ષમેકાદગ્ર ભવેન્ ॥

તાવત્કુમારિકા લોકે, ન્યાગ્યમુદ્ગાહમર્હતિ ॥૦ ૧॥

અર્થ --શ્રી અડધા વર્ષથી અગ્યાગ્રમાં વર્ષ સુધી લોકમાં કુમારી (કુવારી) કહેવાય છે માટે તેટલી મર્યાદામાં તે ગીતમર વિવાહ કરવા લાયક છે (૬૧)

પાદગુલ્ફો ચ જઙ્ઘે ચ, જાનુની મેંદ્રમુખ્કાં ॥

નાભિકર્ચ્ચો ચ જઠરં, હૃદય ચ સ્તનાન્વિતમ્ ॥૧૦॥

જમ્બુવાહુ તથૈવૌષ્ઠ-કચ્ચે દમ્બુવો તથા ॥

માલમૌલી દગ ક્ષેત્ર-ખેતાન્યાવાલ્પતાઙ્ગકે ॥૦ ૩॥

અર્થ --૧ પગ અને ઘૂટી ૨ જઙ્ઘ અને હાથ, ૩ લિંગ અને અડ ૪ નાભિ અને કટિ, ૫ પેટ ૬ સ્તન અને હૃદય, ૭ જમ્બુ (ગજાનો અને બાહુનો સાથો) અને બાહુ, હોઠ અને કોટ ૯ નેત્ર અને શ્રુતિ, ૧૦ કપાળ અને મસ્તક આ દમ ક્ષેત્ર બાધ્યાવસ્થાથી-ચરીત્રે ગ્રહે છે (૬૨) (૬૩)

एकैवल्यसंभृतं, लक्षणं वाण्यलक्षणम् ॥

દશર્થિદશર્થિર્વર્ષ—સ્ત્રીત્રેદિત્તે નિર્જ ફલમ્ ॥૧૪॥

અર્થ:—એકઁ એક દેવનાં શુભ અથવા અશુભ લક્ષણ સ્ત્રીઓને તથા પુરુષોને અનુક્રમે દસ દસ વર્ષે ફળ આપે છે. (૯૪)

यत्पादाङ्गुलयः क्षोणीं, कनिष्ठायाः स्पृशन्ति न ॥

एकद्वित्रिचतुःसंख्यान, क्रमात्सा मारयेत्पतीन् ॥१५॥

અર્થ:—જે સ્ત્રીના પગની કનિષ્ઠા પ્રમુખ ચાર આંગળીઓમાં કનિષ્ઠાથી માંડીને એક, બે, ત્રણ અર્થવા ચારે આંગળીઓ આલેતી વખતે ભૂમીને અડકતી ન હોય તો તે સ્ત્રી અનુક્રમે એક, બે, ત્રણ તથા ચાર ભત્રીયને મારે (૯૫)

यत्पादाङ्गुलिरेकापि, भवेद्धीनां कथं च न ॥

येन केनापि सां साकं, भवेत्कलहकारिणी ॥१६॥

અર્થ:—જે સ્ત્રીના પગની એકાદી આંગળી જે કોઈપણ રીતે ટૂંકી હોય તો તે સ્ત્રી જેની તેની જોડે કલહ કરનારી થાય. (૯૬).

अल्पवृत्तेन वक्रेण, शुष्केणलघुनापि च ॥

चिपिटेनातिरिक्तेन, पादाङ्गुष्ठेन दूषिता ॥१७॥

અર્થ:—જે સ્ત્રીના પગનો અંગુઠો થોડો ગોળ, વાંકો, સુકાયેલો, નાનો, ચપટો અથવા લાંબો અને બીજી આંગળીઓથી બુદ્ધો પડી જાયેલો હોય, તે સ્ત્રી દોષવાળી વાણી. (૯૭)

कृपणा स्या महापाणि—दीर्घपाणिस्तु कोपनः ॥

दुःशीलोन्नतपाणिश्च, निन्या विषमपाणिका ॥९८॥

अथ — २ स्त्रीना यगनी पाटली मोटी होय ते कृपण
थाय, लाभी होय ते क्रोधी थाय, उथी होय ते दुःस्थायिणी
थाय, उथी नीची होय ते निदनीय थाय (९८)

उच्छलद्भ्रूलिचरणा, सर्वस्थूलमहाङ्गुलिः ॥

बहिर्बिनिपतत्पादा, दीर्घपादप्रदेशिनी ॥९९॥

विरलाङ्गुलिकौ स्थूलौ, पृथू पादौ च विभ्रती ॥

सशब्दगमना स्थूल—गुल्फा स्वेदयुताधिका ॥१००॥

उद्धदपिण्डिका स्थूल—जङ्घा वायसजङ्घिका ॥

निर्मासपटकच्छाया—विशिष्टकृशजानुका ॥१०१॥

बद्धधारप्रस्नविका, शुष्कसकःकच्छापि ॥

चतुर्विंशतितो न्यूना—धिकाङ्गुलकटी नता ॥१०२॥

मृदद्गयवकूष्माण्डो—दरिकात्युच्चनाधिका ॥

दधती वर्लित रोमा—वर्तिन कुक्षिमुन्नतम् ॥१०३॥

अष्टादशाङ्गुलन्यूना—धिरुवक्षोरुहान्नरा ॥

तिलक लक्ष्म वा श्याम, दधना वामके स्तने ॥१०४॥

कुचे वराङ्गे पार्श्वेऽपि, वाम उच्चे मनावसति ॥

नारीप्रसापिनी नारी, दक्षिणे च नरप्रसुः ॥१०५॥

सङ्कीर्णपृथुलप्रोच्च—निर्मासासयुतापि च ॥

सुलोचनकुटिलस्कन्धा, निम्ननिर्मासकक्षिका ॥१०६॥

मेपवल्लुक्क्रीवा, दीर्घग्रीवा वकोपवृत् ॥
 व्याघ्रास्या श्यामचिबुका, हास्ये कूपकपोल्लिका ॥१०७॥
 श्यामश्वेतस्यूलजिह्वा-तिहासा काकतालुका ॥
 जम्बूतरुफलछाय-दशनावलिपीठिका ॥१०८॥
 आकैकराक्षी भार्जार-नेत्रा पारापनेक्षणा ॥
 कृष्णाक्षी चञ्चललोका-तिमौनां बहुभाषिणी ॥१०९॥
 स्यूलाधरशिरोवक्त्र-नासिका शूर्पकर्णिका ॥
 हीनाधरा प्रलम्बोष्ठी, मिलद्धूयुग्मका तथा ॥ ११० ॥
 अतिसंकीर्णविषम-दीर्घलोकमशभालका ॥
 अङ्गुलत्रितयादूना- धिकभालस्थलापि च ॥ १११ ॥
 भालेन खण्डरेखेण, रेखाहीनेन निन्दिता ॥
 सूक्ष्मस्थूलस्फुटिताग्र-कट्युलङ्घिकचोच्चया ॥ ११२ ॥
 एकस्मिन् कूपके स्यूल-बहुरोमसमन्विता ॥
 सपुष्पनखरा श्वेत-नखी शूर्पनखी तथा ॥ ११३ ॥
 उत्कटस्नायुदुर्दर्शा, कपिलद्युतिधारिणी ॥
 अतिश्यामातिगौरी वा-तिस्यूला चातितन्त्रिका ॥११४॥
 आतिदीर्घातिहस्ता च, विदमाङ्ग्यथिकाङ्गिका ॥
 हीनाङ्गी शौचविकला, सूक्ष्मकृकशकाङ्गिका ॥११५॥
 संचारिण्युरुगाघाता, धर्मविद्वेषिणी तथा ॥
 धर्मान्तररता वापि, नीचकर्मरतापि वा ॥ ११६ ॥
 अजीवन्मृतसवस्तोक-प्रसवस्वसृमातृका ॥

રસવત્યાદિવિજ્ઞાન-રહિતેત્કુમારિકા ॥ ૧૧૭ ॥

દુઃશીલા દુર્ભગા કન્યા, દારિદ્રા દુઃસ્વિતાવમા ॥

અલ્પાયુર્વિધવા કન્યા, સ્યાદેભિર્દુષ્ટલક્ષણૈઃ ॥ ૧૧૮ ॥

(વિસત્યા કુલકમ્ ।)

અર્થ —જે આલતા પગે ધૂળ ઉડાડે, જેના પગને અથડા ખીજી આગળીઓ કરતા બહુ જાડો હોય, જે આલતા પગ આનૂળાન્ત બહાર મૂકે, જેના પગની તર્જની ઘણી લાંબી હોય, જેના પગ છૂટી આગળીના, જાડા અને પડોળા હોય, આલતા જેના પગમાંથી ગખ્દ વાય, જેની ઘટ્ટી જાડી હોય, જેને પગે પરસેવો ઘણો વળતો હોય, જેના પગની પિંડી ઉંચી અને બધાયલી જેવી હોય, જેની જઘા જાડી અથવા કાગડા જેવી હોય, જેના હીચણ માસરહિત ત્રકાના તળ સરખા, હીલા સાધાના અને દૃશ હોય, જેની ક્ષયુનીતી ઘણીધાગનાળી હોય, જેની કેટ સડી, સાકડી અને પહોળાઇમાં ચોવીસ આગળથી વધારે અથવા ઓછી હોય, જેનું ઉદર (પેટ) મૃદગ, જવ અથવા ભૂન કોહળા જેવું હોય, જેની નાભિ (ડૂંટી) ઘણી ઉંચી હોય, જેની દૃષ્ટ કરચલીવાળી વાળના ભમરાવાળી અને ઉંચી હોય જેના બે જતનો વચ્ચે અદાર આગળથી ઓછુ અથવા અધિક અતર હોય, જેના ડાળા સ્તન ઉપર તિલ અથવા કઈ કાણુ ચિન્હ હોય, (સ્ત્રીનું ડાણુ સ્તન ડાબે ચોનિને બાગ, નથા ડાબે પામે) જે જમણા કરતા ઉચો હોય તો તે કન્યાને પ્રમવે છે, અને ઉપર કહેલા ત્રણે અવયવો જો ડાળા કરતા જમાડા ઉંચા હોય તો પુત્રને પ્રમવે છે માટે) જેનું ડાણુ સ્તન

ડાળો થોનિનો ભાગ અને ડાળો પાસો ઉંચો હોય, જેના
 ખભા સાંકડા. પહોળા, અને માંસરહિત હોય, જેના ખંધ
 ઉંચા તથા વાંકા હોય, જેની કાળ ઉંડી તથા માંસ વિનાની
 હોય, જેની હાડ મેંદા સરખી ટૂંકી અથવા ઘગલા સરખી
 કિંવા ઉંટ સરખી લાંબી હોય, જેનું મુખ વાઘસરખું હોય.
 જેની હડપચી કાળી હોય, હસતાં જેના ગાલમાં કુવા
 સરખા ખાડા પડતા હોય, જેની છત્ર કાળી, સફેદ અથવા
 જાડી હોય, જે બહુ હાસ્ય કરનારી હોય, જેનું તાળવું
 કાગડા સરખું ઉંચું હોય, દાંતના પેઢાં જાંબુ સરખા રંગના
 હોય, જેની નજર બહુ કટાક્ષ મારનારી હોય, જેની આંખ
 ણિલાડા તથા પારેવા સરખી અથવા કાળી અથવા ચંચળ
 હોય, જે ઘણું મૈાન રાખે અથવા બહુ ખડે, જેનો નીચલો
 હોઠ, માથું, મુખ તથા નાક એ જાડાં હોય, જેના કાન
 સૂપડા સરખાં હોય, જેના હોઠ ટૂંકા અથવા લાંબા હોય
 જેની બન્ને ભૂકુટીઓ સાથે મળેલી હોય, જેનું કપાળ
 ઘણું સાંકડું, ઉંચુંનીચું લાંબું, રોમસહિત, ત્રણ આંગળથી
 ઝોણું અથવા અધિક, ખંડિત રેખાવાળું અથવા તદન રેખા
 રહિત હોય, જેના માથાના કેશ(વાળ) લૂખા, જાડા અણીએ
 ફાંટાવાળા અને કેડથી પણ નીચે ઉતરે એટલા લાંબા હોય,
 જેના એક રોમકુપમાં એક કરતાં વધારે અને જાડા રોમ
 હોય, જેના નખ કૂલેલાં, સફેદ અથવા સૂપડા જેવાં હોય,
 જેની નસો આકરી હોવાથી જોઈ શકાય નહીં એવી હોય,
 જેના શરીરની કાંતિ ભૂરા રંગની હોય, જે ઘણી કાળી,
 ણી ગોરી, ઘણી જાડી, ઘણી પાતળી, ઘણી લાંબી, ઘણી
 ટૂંકી, ખડખડાં અંગવાળી હોય, જેના શરીરના આંગળી

પ્રમુખ અવયવ ઓછા અથવા અધિક હોય, જેની ચામડી લૂપ્તી તથા કઠણ હોય, જે ગરીબની પવિત્રતા ન જાળવતી હોય, જેના ગરીબ સગારીનોગ થયો હોય, જે સ્વધર્મનો દ્વેષ કરતી હોય, અથવા પરધર્મને વિષે આમજન થઈ હોય, જે નીચ કર્મમા પ્રીતિ રાખતી હોય, જેની માની, તથા બેનની સતતી જીવતી રહેતી ન હોય, અથવા થોડી થતી હોય, તથા જેને રસોઈ પ્રમુખ ગૃહકાર્યનું જ્ઞાન બગાડતું ન હોય એવી કન્યા ઉપર કહેલા અપલક્ષણથી દુગચારિણી, દુભાંગી, વાજણી, દરિદ્રા દુખી, અસ્પાયુધી, અધમ અથવા વિધવા થાય છે (૬૬-૧૧૮)

उपाङ्गमथवाङ्ग स्या-ग्रहीय बहुरोमकम् ॥

वर्जयेत्ता प्रयत्नेन, विषकन्यासहोदरीम् ॥ ११९ ॥

અર્થ—જેના હાથ પગ, પ્રમુખ અંગ તથા આગળી પ્રમુખ ઉપાંગ બહુ એમવાળા હોય તે કન્યાને વિષકન્યાની સગી બહેન સગી જાણીને પ્રયત્નથી વર્જવી (૧૧૯)

कटीकृकाटिकाश्रीर्षो-दरभालेषु मध्यगः ॥

नासान्ते च शुभो न स्या-दावर्तः सृष्टिगोऽपिसन् ॥ १२० ॥

અર્થ —ટેક, કોટ (ડોકુ), નન્તક, ઉદર અને કપાળ એમના મધ્ય ભાગમા તથા નાસિકાને ઘેટે ભમરો બીધો હોય તો પણ તે શુભ ન જાણે. (૧૨૦)

आवर्ता नामभागेषु, श्रौणा सदावृत्तयः ॥

न शुभास्तु शुभा भागे, दक्षिणाङ्गे च सृष्टित ॥ १२१ ॥

અર્થ —શ્રીઓના ઠાળે ભાગે ઉલટા ભમર હોય તો તે

શુભ ન જાણ્યાં. પણ જમણે ભાગે અને વિશેષે કરી કપાળને
જમણે ભાગે સીધા જમરા હોય તો શુભ જાણવા. (૧૨૧)

દેવોગ્ગનદર્શિલ-નક્ષત્રાણાં પતત્રિણામ્ ॥

શ્વપાકપ્રેષ્યમીપ્માનાં, સંજ્ઞયા વાનિતાં ન્યજેત્ ॥ ૧૨૨ ॥

અર્થ:—દેવતા, સૂર્ય, નદી પર્યંત, નક્ષત્ર, પક્ષી, અંડાળ,
સેવક તથા હોઈ પણ ભયંકર વસ્તુ એમનાં નામ ધારણ
કરનારી સ્ત્રી વર્જવી. (૧૨૨)

ધ્રગધ્રાન્યલતાગુહમ-સિંહચ્ચાદ્રપલાધિધામ્ ॥

ત્યજેન્નારીં ભવેદેષા, ર્દેરાચારદિયા યાતઃ ॥ ૧૨૩ ॥

અર્થ:—ભૂમિ, ધાન્ય, દત્તા, શુદ્ધ (નાતું વૃક્ષ) સિંહ,
પાદ અને કૂળ એમનાં નામ ધારણ કરનારી સ્ત્રી પ્રયત્નથી
વર્જવી. ધારણ, તેવી સ્ત્રી દુરાચારિણી હોય છે. (૧૨૩)

નાર્પણસ્ય સ્પૃશેત્કન્યા, અવિજ્ઞાતાઃ કદાચન ॥

નિગ્ધાન્તિ યેન યોગેસ્તાઃ, કદાચિદ્દક્ષનિર્મિતઃ ॥ ૧૨૪ ॥

અર્થ:—વિવેકી પુરૂષે પરીક્ષા કર્યા વિના અન્તણી કન્યા-
ઓને સ્પર્શ ન કરવો. ધારણ તે કન્યાઓ દક્ષ માણસે કરેલા
મંત્ર ઓપધ પ્રસુખના પ્રયોગથી વિપમય થઈને સ્પર્શ કરનાર
પુરૂષને મારી નાંખે છે. (૧૨૪)

મહોપવપ્રયોગેણ, કન્યા વિપમયી કિલ ॥

જાતેતિ શ્રૂયેત જ્ઞયા, તૈરેતૈઃ સાપિ ન્દક્ષણેઃ ॥ ૧૨૫ ॥

અર્થ:—“ દક્ષ માણસે કરેલા મોટા ઓપધના પ્રયો-
ગથી કન્યા વિપમયી થઈ” એમ સંભળાય છે. મોટે આગળ
કહેશે તે લક્ષણ ઉપરથી વિપકન્યા જાણવી. (૧૨૫)

યસ્યા* કેશાંશુકસર્ગાન્મ્લાયન્તિ કુસુમસ્રજઃ ॥

સ્નાનામ્માસિ વિપત્યન્તે, વન્ધવઃ ક્ષુદ્રજન્તવઃ ॥૧૨૬॥

મ્રિયન્તે મત્કુળાસ્તલ્પે, તથા યુક્તા ચ વાસસિ ॥

વાતશ્લેષ્મવ્યથામુક્તા, સદા પિત્તોદયાન્વિતા ॥૧૨૭॥

ભૌમાર્કજનિવારાણા, વારઃ કોઽપિ ભવેદ્યદિ ॥

તથા* લેપાગતભિષ-કૃત્તિકાનાં ભવેદ્યદિ ॥૧૨૮॥

દ્વાદશી ના દ્વિતીયા વા, સપ્તમી વા ભવેદ્યદિ ॥

તતસ્તત્ર સુતા જાતા, કીર્ત્યતે વિષકન્યકા ॥૧૨૯॥

અર્થ — જેના ઢેગના તથા વસ્ત્રના સ્પર્શથી કૂલની માળા કરમાઈ જાય, જેના રનાનના પાણીમા છુદ્ડ જીવ ધણા મરી જાય, જેના બિછાનામા માકડ મગલુ પામે, જેના વસ્ત્રમા જુઓ પણુ મરણુ પામે, જેને કફવાતનો વિકાર થતો નથી જેને હમેશા પિત્તવિકાર થાય, જેના જન્મ મમયે શનિ, રવિ તથા મંગળ એ ત્રણુમાથી એકવાર, આશ્લેષા, શતતારકા અને કૃત્તિકા એ ત્રણુમાથી એક નક્ષત્ર તથા દ્વિતીયા, સપ્તમી અને દ્વાદશી એ ત્રણુ તિથિમા એક તિથિ હોય, તે વિષકન્યા કહેવાય છે (૧૨૬) (૧૨૭) (૧૨૮) (૧૨૯)

ગુરુસ્વામિમુહરિઙ્ગ-સ્વજનાદ્વનયા સહ ॥

માતૃજામિસુતાત્વેન, વ્યવહર્તવ્યમુત્તમઃ ॥૧૩૦॥

અર્થ — ઉત્તમ પ્રકૃષ્ટોએ પોતાના ગુરુ, સ્વામિ, મિત્ર, શિષ્ય અને સગામળધી એટલાની સ્ત્રીઓની સાથે મા, બેન તથા પુત્રી પ્રમાણે વર્તણુ એટલે જે પોતાના કરતા પૃદ્ધ હોય તેને મા મમાન, બગબરીની હોય તેને બહેનસમાન અને

ન્હાની હોય તેને પુત્રીસમાન ગણવી. (૧૩૦)

સંવંધિની કુમારી ચ, લિङ્ગિની શરણાગતા ॥

વર્ણાધિકા ચ પૃજ્યન્વ-સંકલ્પેન વિલોક્યતે ॥ ૧૩૧ ॥

અર્થ:—ઉત્તમ પુરૂષોએ પોતાની સગી, કુંવારી, આધ્વી અથવા ભોગણી વિગેરે, શરણે આવેલી અને આપણા કરતાં ઉંચી જાતની એટલી સ્ત્રીઓને પૃજ્ય માનવી. (૧૩૧)

સદોષાં बहुलोभां च, बहुग्रामान्तरप्रियाम्

अनीक्षितसमाचारां, चञ्चलां च रजस्वलाम् ॥ ૧૩૨ ॥

अशौचां हीनवृत्तां चा-तिवृद्धां कौतुकप्रियाम् ॥

अनिष्टां स्वजनद्विष्टां, मगवां नाश्रयेत्स्त्रियम् ॥ ૧૩૩ ॥

અર્થ:—દોષવાળી, બહુ લોભી, ગામેગામે ફરનારી, દુરાચરણી, અંચળ, રજસ્વલા (છેટે બેઠેલી), અપવિત્ર, શીળનો ભંગ કરનારી, ઘણી વૃદ્ધ, નાટક પ્રમુખ કૌતુક બોલા ઘણી તત્પર, અણુગમતી, સ્વજનનો દ્વેષ કરનારી અને અહુંકારી એવી સ્ત્રીનો અંગીકાર ન કરવો. (૧૩૨) (૧૩૩)

परस्त्रीं विधवा भर्त्रा, त्यक्ता त्यक्तव्रतापि च ॥

રાજકુલપ્રતિવદ્ધા, વિવર્જ્યા યત્નતો બુધૈઃ ॥ ૧૩૪ ॥

અર્થ:—ઠાહ્યા પુરૂષોએ છવતા ધણીની સ્ત્રી, વિધવા પતિએ છોડી દીધેલી, આદરેલા વ્રતનો ત્યાગ કરનારી તથા રાજદ્વારે જનારી એટલી સ્ત્રીઓ યત્નથી વર્જવી. (૧૩૪)

दुर्गदुर्गतिदूतीषु, चैरचित्रैकभित्तिषु ॥

સાધુવાદદ્રુશસ્ત્રીષુ, પરસ્ત્રીષુ રમેત ન ॥ ૧૩૫ ॥

અર્થ — કાગઝુડે (બ દીપ્તાને) અથવા નરકે તેડી જનાર દ્વતીસરખી, વૈરૂપ ચિત્ર ચિત્તવામા ભીંતસગળી, અને યશસ્વી વૃક્ષ તોડવાને શસ્ત્ર-ગળી એવી પદ્મીઓને વિષે આમકિત ન કરવી (૧૩૫)

જગત્સમક્ષ સ્ત્રીપુસૌ, વિગ્રહે દક્ષિણ વર્ગ્મ ॥

અન્યોન્યાવ્યભિચારાય, દત્તઃ કિલ પરસ્પર્ગ્મ ॥૧૩૬॥

અર્થ — સ્ત્રી અને પુરૂષ બન્ને જણા વિવાહને સમયે ‘ધર્મ, અર્થ અને કામ એ ત્રણેનું આચરણ એક બીજાને છોડીને કરશુ નહીં’ એવી પ્રતિજ્ઞા કરી જગતની સમક્ષ માહોમાહે જમણા હાથ પડે છે (૧૩૬)

અનો વ્યભિચરન્તાં તૌ, નિજ પુણ્ય વિભુમ્પતઃ ॥

અન્યોઽન્યઘાતકૌ મ્યાતા, પરસ્ત્રીપુદ્ગલાવપિ ॥૧૩૭॥

અર્થ — માટે જો તે સ્ત્રીભતાર બન્ને જણા પોતે આપેલું વચન ન પાળે, એટલે વ્યભિચાર કરે તોતે પોતાનું પુણ્ય ખોઈ દે છે, અને માહોમાહે એક બીજાના ઘાત કરનારા થાય છે તેમજ સ્ત્રી પરપુરૂષની જોડે વ્યભિચાર કરે, ત્યારે તે પરપુરૂષની પરજોડી સ્ત્રીની ઘાત કરનારી થાય છે, અને પુરૂષ પદ્મીની જોડે વ્યભિચાર કરે ત્યારે પદ્મીના પતિનો ઘાત કરનાર થાય છે (૧૩૭)

ચાલા સ્વેલનર્કઃ કાલે, દત્તૈર્દિવ્યફલાશનૈઃ ॥

મોદતે યૌવનસ્થા તુ, વસ્ત્રાલ્કરણાદિભિઃ ॥૧૩૮॥

દૃષ્યેન્મયવયાઃ પ્રીદા, રતિક્રીડાસુ કૌશલૈઃ ॥

વૃદ્ધા તુ યવુગાર્પે-ગૌરવેણ તુ રજ્યતે ॥૧૩૯॥

અર્થ:—આળા (સોળ વર્ષ સૂધી ઉમરની) અવસરે આપેલાં રમકડાં અને સારાં ફળ, ફૂલ તથા સુખડી પ્રમુખથી પ્રસન્ન થાય છે. તરૂણ અવસ્થામાં આવેલી સ્ત્રી સારાં વસ્ત્રથી તથા આભૂષણોથી પ્રસન્ન થાય છે. મધ્યમ વયની પ્રૌઢ સ્ત્રી કામકીડામાં કુશળતા જોઈ પ્રસન્ન થાય છે. અને વૃદ્ધ સ્ત્રી મીઠાં વચનથી તથા આદર સત્કારથી પ્રસન્ન થાય છે. (૧૩૮)(૧૩૯)

ષોડશાઢ્યા ભવેદ્રાલા, ત્રિંશતાઢ્યતયૌવના ॥

પચ્ચપચ્ચાશતા મધ્યા, વૃદ્ધા સ્ત્રી તદનન્તરમ્ ॥૧૪૦॥

અર્થ:—સ્ત્રી સોળ વર્ષની થાય ત્યાં સુધી આળા કહેવાય, ત્રીસ વર્ષની થાય ત્યાં સૂધી તરૂણ કહેવાય, પચાસ વર્ષની થાય ત્યાં સૂધી મધ્ય વયની પ્રૌઢ કહેવાય, અને તે પછી વૃદ્ધ કહેવાય છે. (૧૪૦)

પત્રિની ચિત્રીણી ચૈવ, શક્તિની હસ્તિની તથા ॥

તત્તદિષ્ટવિધાનેના-નુકૂલ્યા સ્ત્રી વિચક્ષણૈઃ ॥૧૪૧॥

અર્થ:—વિચક્ષણ પુરુષોએ પત્રિની, ચિત્રિણિ, શંખિની અને હસ્તિની એ ચારે પ્રકારની સ્ત્રીઓને શાસ્ત્રમાં કહેલા ઇષ્ટ પ્રકારથી અનુકૂળ રાખવી. (૧૪૧)

હસ્તિની મયગન્ધા ચ, ડગ્રગન્ધા ચ ચિત્રિણી ॥

શક્તિની ક્ષારગન્ધા ચ, પચ્ચગન્ધા ચ પત્રિની ॥૧૪૨॥

અર્થ:—હસ્તિની સ્ત્રીનો ગંધ મધ્ય સરખો હોય છે, ચિત્રિણીનો ઉગ્ર હોય છે, શંખિનીનો ખારો હોય છે, અને પત્રિનીનો કમળ સરખો સુગંધ હોય છે. (૧૪૨)

અર્થ:—તાવવાળી નૃત્ય કરવાથી ઠીલા અવચવની, ચાલવાથી થાકેલી, છ માસની ગર્ભવતી અને પ્રસૂતિ થયાને જેને એકજ માસ થયો છે, એવી સ્ત્રી ભોગવવાં યોગ્ય નથી (૧૪૭)

वृक्षान्तरं गच्छन्, प्राङ्मिथ्योऽत्र वानरः ॥

मनो यत्र स्मरतत्र, ज्ञानं वश्यकं हृदः ॥૧૪૮॥

અર્થ:—જાણુ પુરૂષે એક વૃક્ષ ઉપરથી બીજે વૃક્ષે કૂદતો વાંદરો ચિંતવવો એટલે જેમ વાંદરો એક વૃક્ષ મૂકી બીજે વૃક્ષે જાય છે, તેમ મન એક વિષય મૂકીને બીજે વિષયે જાય છે, અને જ્યાં મન જાય ત્યાં કામદેવ સાથે છેજ. (માટે મન સ્થિર રાખવું.) એવો બોધ ઇંદ્રિયોને વશ કરનારે જાણવો. (૧૪૮)

कम्पनर्तनहास्याश्रु-भोक्षभोचैःस्मरादिकम् ॥

प्रमदा सुरतोन्मत्ता, कुरुते तत्र निःसहा ॥૧૪૯॥

અર્થ:—કામ વિકાર ખમવા અશક્ત થએલી અને સંભોગને અર્થે ઉન્મત્ત થએલી સ્ત્રી શરીર કંપાવે છે, નાચે છે, હસે છે, આંસુ ગાળે છે. અને જાંચે સ્વરે બોલે છે, ઇત્યાદિ લક્ષણ જાણવાં. (૧૪૯)

रतान्ते श्रुयतेऽकस्माद्, घट्टण्टानादस्त्वनुत्थितः ॥

येन तस्यैव पञ्चत्वं, पञ्चमास्या ततो भवेत् ॥૧૫૦॥

અર્થ:—જે પુરૂષ સ્ત્રીસંભોગ કરી રહ્યા પછી ઘંટા ન વાગતી હોય તો એ તેનો શબ્દ સાંભળે, તેનું પાંચ માસમાં મરણ થાય. (૧૫૦)

પક્ષાન્નિદાથે હેમન્તે, નિત્યમન્યર્તુષુ જ્યેષ્ઠાત્ ॥

સ્ત્રિય કામયમાનમ્ય, જાયતે ન વલક્ષયઃ ॥૧૫૧॥

અર્થ — પુરૂષ જો ગ્રીષ્મ^૧ ઋતુમાં પખવાડિએ, હેમન્ત ઋતુમાં પ્રતિદિવસે અને ઊંછ ઋતુમાં ત્રણ દિવસે સ્ત્રીસભોગ કરે તો તેના યજનો ક્ષય થાય નહીં (૧૫૧)

ઘ્રપદ્મસન્તશરદોઃ, પક્ષાદ્વર્ષાનિદાયયોઃ ॥

સેવેત કામિની કામં, હેમન્તે શિશિરે વત્સી ॥૧૫૨॥

અર્થ — યજમાન પુરૂષે વસત તથા શરદ એ એ ઋતુમાં ત્રણ દિવસે, વર્ષા અને ગ્રીષ્મ એ એ ઋતુ પખવાડિએ તથા હેમન્ત અને શિશિર એ એ ઋતુમાં ઈચ્છા માફક સ્ત્રીસભોગ કરવો (૧૫૨)

અતીર્ણ્યતિપ્રસન્નોઽતિ-દાનમત્યાગમસ્તથા ॥

ચત્વારોઽમી ન કર્તવ્યાઃ, કીમિભિઃ કામિનીષ્વપિ ॥૧૫૩॥

અર્થ — કામી પુરૂષે કામવતી સ્ત્રીઓને વિષે પણ ઘણી ઈર્ષ્યા (અદેખાઈ), ઘણો પ્રમગ, ઘણું દાન અને ઘણું જલુ આવલુ આ ચાર વાના ન કરવા (૧૫૩)

અતીર્ણ્યતો હિ રોષ^૧ સ્યા-દુદ્વેગોઽતિપ્રસન્નતઃ ॥

લોભોઽતિદાનતઃ સ્ત્રીણા-મત્યાગમાદલ્બજ્જતા ॥૧૫૪॥

અર્થ — જો પુરૂષ સ્ત્રીને વિષે ઘણી ઈર્ષ્યા રાખે તો તે

૧ — એવ વૈશાખ વસન્ત, જ્યેષ્ઠ આષ્ટ ગ્રીષ્મ, આવશ્ય ભાદ્રપદ વર્ષા, આશ્વિન કર્તિક ચતુર્થ, માર્ગશીર્ષ પોષ હેમન્ત અને માઘ ફાલ્ગુન શિશિર ઋતુ ગણીતી

કોઈ પામે, ઘણો પ્રસંગ કરે તો ઉદ્દેગ પામે, દ્રવ્યાદિક ધણું
આપે તો તેનો (સ્ત્રીનો) લોભ વધે, અને હુમેશાં જાવ આવઃ
કરે તો તે (સ્ત્રી) નિર્લજ્જ થાય (૧૫૪)

વિતન્વતીં ક્ષુતં જૃમ્ભાં. સ્નાનપાનાશનાનિ ચ ॥

મૂત્રકર્મ ચ કુર્વાણાં, કુર્વેષાં ચ રજસ્વલામ્ ॥૧૫૫॥

તથાન્યનરમંયુક્તાં, યગ્યેત્કાની ન કામિનીમ્ ॥

एवं हि मानसं तस्यां, विरज्येतास्य निश्चितम् ॥૧૫૬॥

અર્થ:—છીંક, ખગાસું, પાન, લોજન અને લઘુનીતિ
એમાં કાંઈ કરતી હોય, નદારે વેષ પહેરેલી હોય, (છોટે ખેઠેલી)
હોય, તથા કોઈ પુરૂષ સાથે વાર્તા કરતી હોય, એવી સ્ત્રીના
સાસું પુરૂષે જોવું નહીં. કારણ કે, તેમ કરવાથી પુરૂષનું મન સ્ત્રી
ઉપરથી ઉતરે છે. (૧૫૫) (૧૫૬)

અત્યાલોકાદનાલોકા-તથાનાલાપનાદપિ ॥

પ્રવાસાદતિમાનાન્ન, ત્રુલ્યતિ પ્રેમ યોષિતામ્ ॥૧૫૭॥

અર્થ:—વારે ઘડીએ જોવાથી, ખિલકુલ ન જોવાથી, ઘ.
ણું ખોલવાથી, ખીલકુલ ન ખોલવાથી, પરદેશ જવાથી, તથા
ઘણા અહંકારથી સ્ત્રીનો પ્રેમ ત્રુટે છે. (૧૫૭)

ન પ્રીતિવચનં દત્તે, નાલોકયતિ સુન્દરમ્ ॥

ઉક્તા યત્તે કુર્વં દ્વેષા-ન્મિત્રદ્વેષં કરોત્યલમ્ ॥૧૫૮॥

વિરહે હૃષ્યતિ વ્યાજા-દીર્ઘ્યામપિ કરોત્યલમ્ ॥

યોગે સીદતિ સાવાધં, વદનં મોઘ્યત્યથ ॥૧૫૯॥

શેતે શમ્યાગતા શીઘ્ર, સ્પર્શાદુર્લજિતે તરામ્ ॥

કૃતં કિમપિ ન સ્તૌતિ, વિરક્તેર્લક્ષણ સ્ત્રિયાઃ ॥૧૬૦॥

અર્થ — જે સ્ત્રીનો રાગ પુરૂષ ઉપરથી ઉતરી ગયો હોય તે સ્ત્રી પ્રેમસહિત વચન ન બોલે, સારી રીતે સામું બુવે નહીં, બોલાવ્યાથી ક્રોધ કરે, મનમાં દ્વેષ ગળી પુરૂષના મિત્રની ભેડે ધર્યા કરે, ભર્તારનો વિયોગ થવાથી પ્રમત્ત થાય, કાંઈ મિત્રથી અદેખાઈ ઘણી કરે, ભર્તારનો સયોગ થાય તો ખેદ પામે, મુખ ઘણું મરડે, ખીછાના ઉપર આવી તુરત ઉઘી જાય, ભર્તારનાં સ્પર્શ કરવાથી ઉદ્વેગ પામે, તથા ભર્તારે કરેલા કોઈપણ કામને વખાણે નહીં એ રાગગ્રહિત સ્ત્રીના લક્ષણ બાબતે (૧૫૮) (૧૫૯) (૧૬૦)

વિશ્રમ્ભોક્તિમુપાલમ્ભ-માદ્નિક વૈકૃત તથા ॥

રતિક્રીડાચ કામિન્યા, નાપરામુ પ્રકાશયેત્ ॥૧૬૧॥

અર્થ — સ્ત્રીના પ્રેમચન, અથવા તેણે હીમેલો આલ લો, તેનું કટાક્ષથી ભેવા પ્રમુખ, અને તેની ભેડે કરેલી રતિક્રીડા એ સર્વ ખીછા સ્ત્રી આગળ પુરૂષે મગટ કરવા નહીં (૧૬૧)

કામિન્યા વીક્ષ્યમાણાયા, જુગુપ્સાજનકં બુધ. ॥

શ્લેષ્મણેપાદિ નો કુર્યા-દ્વિરજ્યેત તથાહિ સા ॥૧૬૨॥

અર્થ — કાદ્યા માણસે સ્ત્રીના દેખતા નાકમાંથી સળેખમ કાઢવા પ્રમુખ દુગછા ઉપજાવે એવું કૃત્ય ન કરવું કારણ, તેથી સ્ત્રીનું મન પુરૂષ ઉપરથી ઉતરી જાય (૧૬૨)

દત્તે યા કન્યકા યમ્, માતા ભ્રાતા પિતાથગા ॥

દેવતેષુ તયા પૂજ્યો, ગતસર્વગુણોઽપિ સન ॥૧૬૩॥

અર્થ:—કન્યાના માળાપ અથવા ભાઈ તેને જે ભતારને આપે, તે (ભતાર) સર્વ ગુણરહિત હોય, તોપણ તેની તેણે (કન્યાએ) દેવતાની પેઠે સેવા કરવી. (૧૬૩)

પિતૃમર્તૃમૃતૈર્નાર્યો, વાલયૌવનવાર્ધકે ॥

રક્ષણીયાઃ પ્રયત્નેન, કલઙ્કઃ સ્યાત્કુલેઽન્યથા ॥૧૬૪॥

અર્થ:—માળાપણમાં પિતાએ, યુવાવસ્થામાં ભતારે અને વૃદ્ધાવસ્થામાં પુત્રે સ્ત્રીનું રક્ષણ કરવું. નહીંતો કુળને કલંક લાગે. (૧૬૪)

દક્ષા તુષ્ટા પ્રિયાલાપા, પતિચિત્તાનુગામિની ॥

કાલૌચિત્યાદ્વયયકરી, યા સા લક્ષ્મીરિવાપરા ॥૧૬૫॥

અર્થ:—જે સ્ત્રી ડાહી, સંતોષી, મધુર વચન બોલનારી, પતિનું ચિત્ત રાજી રહે તેમ આલનારી અને સમય જોઈને ખર્ચ કરનારી એવી હોય, તે એક લક્ષ્મીસમાન જાણવી. (૧૬૫)

શયિતે દાયિતે શેતે—ઽસ્માત્પૂર્વે તુ વિવૃધ્યતે ॥

મુક્તે મુક્તવતિ જ્ઞાત—સત્કૃત્યા સ્ત્રીમતલિકા ॥૧૬૬॥

અર્થ:—જે સ્ત્રી ભતાર સુધી રહ્યા પછી સુવે, પહેલાં જાગે, તેણે ભોજન કર્યા પછી પોતે કરે, અને ભતારની સેવા શી રીતે કરવી તે સારી પેઠે જાણે, તે સ્ત્રી શ્રેષ્ઠ જાણવી. (૧૬૬)

ન કૂત્સયેદ્વરં વાલા, શ્વસુરમ્મુરુવાંશ્ચ યા ॥

તામ્બૂલમપિ નાદત્તે, દત્તમન્યેન સોત્તમા ॥૧૬૭॥

અર્થ:—જે સ્ત્રી પોતાના ભતારના તથા સસુ, સસરે

પ્રિયેરે તેના પરિવારના દોષ ન બોલે, અને પરપુરૂષે આપેલા પાનના ખીડાને પણ સ્પર્ગ ન કરે, તે સ્ત્રી ઉત્તમ જાણવી (૧૬૭)

કુલસ્ત્રિયા ન ગન્તવ્ય-મુત્સવે ચત્વરેઽપિ ચ ॥

દેવયાત્રાક્રયાસ્થાને, ન તથા રક્ષાગારે ॥૧૬૮॥

અર્થ — કુલીન સ્ત્રીએ મેળામા, ચાટામા, યાત્રામા, કથા ચાલતી હોય ત્યાં તથા નાટક રંગના ઉત્તમરામા જવું નહીં (૧૬૮)

યા દૃષ્ટા પતિમાયાન્ત-મશ્યુત્તિષ્ઠિતિ સમ્રમાત્ ॥

તત્પાદન્યસ્તદાષ્ટિશ્ચ, દત્તે તસ્યાસન સ્વયમ્ ॥૧૬૯॥

ભાવિતા તેન સમીહ, નમ્રીભવતિ ચ ક્ષણાત્ ॥

સ્વયં સવિનય તસ્ય, પરિચર્યા કરોતિ ચ ॥૧૭૦॥

નિર્વ્યાજહૃદયા પત્યૌ, શ્વશ્રૂષુ વ્યક્તમન્તિમાક્ ॥

સદા નમ્રા નનાન્દૃષ્ટા, વદ્ધસ્તેહા ચ વન્ધુષુ ॥૧૭૧॥

સપત્નીપ્ત્રપિ સમીતિઃ, પરિવારેષુ વત્સલા ॥

સનર્મપેશલાલાપા, કમિતુર્મિત્રમણ્ડલે ॥૧૭૨॥

યા ચ તદ્દેપિષુ દ્વેષ-સમ્પ્લેપકલુપાશયા ॥

ગૃહશ્રીરિવ સા સાક્ષા-દ્રેહિની ગૃહમેધિનામ્ ॥૧૭૩॥

અર્થ — જે સ્ત્રી પતિને આવતા બેઠને ઉતાવળથી ઉઠે, અને તેના ચરણકમળે દૃષ્ટિ રાખી તેને પોતે આસન આપે બનાવે વાતચિત કરે ત્યારે તત્કાળ લજ્જાથી નમ્ર થાય, વિનય માથવી પોતે પતિની મેવા કરે, ભારત ઉપર ૪૫૮

છતે નેત્ર આંજવાં નહીં, આભૂષણ પહેરવાં નહીં, ગાવું નહીં, નાચવું નહીં, દાતણ કરવું નહીં, મસ્કરીનાં તથા આદ્યેપનાં વચન બોલવાં નહીં, સોગહાબાણ પ્રમુખ કીડા કરવી નહીં, ચિત્રામણ પ્રમુખ ભેવાં નહીં, ઉવટણું વિગેરે લગાડવું નહીં, તાંબૂલ તથા મિષ્ટાન્ન ખાવાં નહીં, તથા જેથી મનમાં પ્રીતિ ઉપજે તે સર્વ ન કરવું. (૧૮૦) (૧૮૧)

सदैव वस्तुनः स्पर्शः रजन्यां तु विशेषतः ॥

संध्यादनमुद्धमेषां, धातुपात्रे च भोजनम् ॥ १८२ ॥

माल्याञ्जने दिवास्त्रાપં દન્તકાષ્ટં વિલેપનમ્ ॥

સ્નાનં પુષ્ટાશનાદર્શા—લોકૌ મુશ્ચેદ્રજસ્વલા ॥ ૧૮૩ ॥

અર્થ:—રજસ્વલા (છેટે બેઠેલી) સ્ત્રીએ હુમેશાં તથા વિશેષે કરી રાત્રિએ કોઈ વસ્તુને અડકવું નહીં, સંધ્યાને સમયે દ્રવ્યું નહીં, નક્ષત્રો ભેવાં નહીં. ધાતુના પાત્રમાં લોજન ન કરવું, કૂલોની માળા ન પહેરવી, આંખો ન આંજવી, દિવસે નિદ્રા ન લેવી, દાતણ તથા સ્નાન ન કરવું ચંદન પ્રમુખ ન ચોપડવું, પુષ્ટિ આપે એવું અન્ન ન ખાવું, અને આરિસામાં ન ભેવું. (૧૮૨) (૧૮૩)

मृत्तिकाकाष्ठपाषाण-पात्रेऽश्वीयाद्रजस्वला ॥

देवस्थाने शकृद्रोष्ठ—जलेषु न रजः क्षिपेत् ॥ १८४ ॥

અર્થ—રજસ્વલા સ્ત્રીએ માટીના, લાકડાના અથવા પથ્થરના પાત્રમાં લોજન કરવું, તથા પોતાની ઋતુ દેવસ્થાન, ગાયતું છાણ, ગાયોનો વાડો, અને જળ એટલે ઠેકાણે ન નાંખવી. (૧૮૪)

સ્નાત્વૈકાન્તે ચતુર્થેઽહ્નિ, વર્જયેદન્યદર્શનમ્ ॥

સુગૃહ્નારા સ્વમર્તાર, સેવેત કૃતમદ્ગલા ॥૧૮૫॥

અર્થ — રજસ્વલા સ્ત્રીએ ચોથે દિવસે એકાન્તે નહાઈ પણ પુરુષને ન જોવું પણ મારો ગૃહનાર સજી, મગણિડ ડગી પોતાના ભર્તારને સેવવો (૧૮૫)

નિશાઃપોડશ નારીણા-મૃતુઃ સ્યાત્તાસુ ચાદિયાઃ ॥

તિસ્ત્રઃ સપ્તરપિ ત્યાજ્યાઃ પ્રોક્તા તુર્યાપિ કેન ચિત્ ॥૧૮૬॥

અર્થ — સ્ત્રીએની સોળ રાત્રિ સૂધી ઋતુ હોય છે તે સોળમા પહેલી ત્રણ રાત્રિ સલોગના મળધમા વર્જવી, એવો સર્વ આચાર્યોનો મત છે, પણ ઢેલલાક “ચોથી રાત્રિ પણ વર્જવી” એમ કહે છે (૧૮૬)

ચતુર્ધ્યાં જાયતે પુત્રઃ, સ્વલ્પાયુર્ગુણયજિતઃ ॥

વિદ્યાચારપરિશ્રષ્ટો, દરિદ્રઃ લેગભાજનમ્ ॥૧૮૭॥

અર્થ — ચોથીરાત્રિએ જો ગર્ભ રહે તો અલ્પ આયુ પ્યવાળો, ગુણરહિત, વિદ્યાથી તથા આચાર્યથી બાદ, દગિરી અને કલેશને લોગવનારો એવો પુત્ર થાય છે (૧૮૭)

પશ્ચમ્યા પુત્રિણી નારી, પૃષ્ઠગા પુત્રસ્તુ પુત્રવાન્ ॥

સપ્તમ્યામપ્રજા કન્યા, ચાષ્ઠમ્યામીશ્વરઃ સુતઃ ॥૧૮૮॥

અર્થ — પાચમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્રને જણ નારી કન્યા થાય, છઠી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્રવત પુત્ર થાય, સાતમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો વાઝણી કન્યા થાય, અને આઠમીએ ગર્ભ રહે તો સમર્થ પુત્ર થાય (૧૮૮)

નવમ્યાં મુમંગા નારી, દશમ્યાં પ્રવરઃ મૃતઃ ॥

एकादश्यामधर्मा स्त्री, द्वादश्यां पुरुषोत्तमः ॥ ॥૧૮૯॥

અર્થઃ—નવમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો મુંદર કન્યા થાય, દસમી રાત્રિએ રહે તો શ્રેષ્ઠ પુત્ર થાય, અગ્યારમી રાત્રિએ રહે તો અધર્મી કન્યા થાય, તથા બારમીએ રહે તો સત્ય રૂપ ઉત્પન્ન થાય. (૧૮૯)

त्रयोदश्यां सुता पापा, वर्णसंकरकारिणी ॥

प्रजायते चतुर्दश्यां, मुपूत्रो जगतीपतिः ॥૧૯૦॥

અર્થઃ—તેરમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો વર્ણસંકર કર નારી પાપી કન્યા થાય, ચૌદમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પૃથ્વીનું રાજ્ય કરે એવો મુપુત્ર થાય. (૧૯૦)

राजपत्नी महाभोगा, राजवंशकरा सती ॥

जायते पञ्चदश्यां तु, बहुपुण्या च मुव्रता ॥૧૯૧॥

અર્થઃ—પંદરમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો ઘણી લાગ્યશાળી રાજવંશ ચલાવનારી, રાજની રાણી, ઘણું સુખ લોગવનારી, બહુ પુણ્ય ઉપાર્જન કરનારી અને પતિવ્રતા એવી પુત્રી થાય. (૧૯૧)

विद्याविनयसंपन्नः, सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥

आश्रयः सर्वभूतानां, षोडश्यां जायते पुमान् ॥૧૯૨॥

અર્થઃ—સોળમી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો વિદ્વાન, વિનયી, સત્યવાદી, ઈંદ્રિયોને વશ રાખનાર અને સર્વ જીવને આશ્રય નાર એવો પુત્ર થાય. (૧૯૨)

સમાયા નિશિપુત્રઃ સ્યા-દ્વિપમાયા તુ પુત્રિકા ॥

સ્ત્રીણામૃતુરતે કાર્ય, ન ચ દન્તક્ષતાદિકમ્ ॥ ૧૯૩ ॥

અર્થ — ચોથી, છઠી ઇત્યાદિ બેકી સખ્યામા આવતી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્ર થાય, અને પાચમી, સાતમી ઇત્યાદી એકી સખ્યામા આવતી રાત્રિએ ગર્ભ રહે તો પુત્રી થાય. સ્ત્રી ઋતુવાળી હોય ત્યારે તેની સાથે સભોગ કરતા હાત અથવા નખ મારવા નહીં (૧૯૩)

દિવા કાર્યો ન સભોગઃ, સુધિયા પુત્રમિચ્છતા ॥

દિવાસભોગસજાતો, જાયતેજ્વલાદ્ભકઃ ॥ ૧૯૪ ॥

અર્થ — પુત્રની ઇચ્છા કરનાર શુદ્ધિયાળી પુરૂષે દિવસે સભોગ કરવો નહીં કારણ દિવસે સભોગ કરવાથી ઉત્પન્ન થએલો પુત્ર નિર્બળ થાય છે (૧૯૪)

પુત્રાર્થમેવ સંભોગઃ, શિષ્ટાચારવર્તા મતઃ ॥

ઋતુન્નાતા પતિરાદ્ધી, ગમ્યા નારી નરોત્તમઃ ॥ ૧૯૫ ॥

અર્થ — પુત્રને અર્થે જ સ્ત્રી સભોગ કરવો એવો શ્રેષ્ઠ પુરૂષોનો મત છે. માટે ઋતુવતી સ્ત્રી સ્નાન કરી પવિત્ર થાય ત્યારે જ ઉત્તમ પુરૂષોએ તેની જોડે સભોગ કરવો (૧૯૫)

અન્યો વ્યસનિનાં કામ, સર્વધર્માર્થસાધકઃ ॥

સાદિઃ પુનઃ સ્ત્રિયઃ સેવ્યાઃ, પરસ્પર્ગમત્રાચયા ॥ ૧૯૬ ॥

અર્થ — ધર્મનો અને ધનનો અર્થના નાશ કરી નાખે એવો વિલક્ષણ કામવિકાર વ્યસની પુરૂષોને હોય છે. પણ ઉત્તમ પુરૂષોએ તો ધર્મનો તથા ધનનો નાશ ન થાય તેવી રીતે સ્ત્રીઓનું સેવન કરવું (૧૯૬)

દૃષ્ટ એવ ધ્રુવં પુણ્યે, નારી સ્યાન્મૈથુનોચિતા ॥

સેવ્યા પુત્રાર્થમાપન્ન-પન્ચાશદ્વત્સરં પુનઃ ॥૧૯૭॥

અર્થ:—શ્રી કન્યાએ પુષ્પવતી (ઋતુવંતી) થાય, ત્યારેજ મૈથુનને ઉચિત થાય. શ્રી પુષ્પવતી થયા પછી તેની પંચાવન વર્ષની ઉમર થાય ત્યાં સુધી પતિએ પુત્રને અર્થે તેને લોગવવી. (૧૯૭)

વલક્ષયો ભવેદ્દુર્ધ્વ, વર્ષેભ્યઃ પન્નસપ્તતેઃ ॥

સ્ત્રીપુંસયોર્ન યુક્તં ત-ન્મૈથુનં તદનન્તરમ્ ॥૧૯૮॥

અર્થ:—પુરૂષે પોતની પંચોતેર વર્ષની ઉમર થાય ત્યાં સુધી મૈથુન સેવવું. બીજર કહેલી શ્રીની તથા પુરૂષની મર્યાદાને શ્રી અથવા પુરૂષ ઉલ્લંઘન કરે તો તેમનું બળક્ષય પામે છે. માટે શ્રીએ પંચાવન વર્ષ પછી અને પુરૂષે પંચોતેર વર્ષ પછી વિષયલોગ ન કરવો. (૧૯૮)

સ્ત્રિયાં પોઢશવર્ષાયાં; પન્ચવિંશતિહાયનઃ ॥

બુદ્ધિમાનુદ્યમં કુર્યા-દ્વિશિષ્ટમુતકામ્યયા ॥૧૯૯॥

અર્થ:—પચીશ વર્ષની ઉમરના બાણ પુરૂષે સોળ વર્ષની કન્યાની સાથે સુપુત્રને અર્થે સંલોગ કરવો. (૧૯૯)

તદા હિ પ્રાપ્તવીર્યૌ તૌ, સુતં જનયતઃ પરમ્ ॥

આયુર્વલસમાયુક્તં, સર્વેન્દ્રિયસમન્વિતમ્ ॥ ૨૦૦ ॥

અર્થ:—કારણ, તે વખતે બન્ને શ્રી ભર્તાર પરિપક્વ (પાકટ) વીર્યના હોવાથી આયુષ્ય બળ તથા સર્વે ઇન્દ્રિયો એ ત્રણે વાનાંથી પરિપૂર્ણ એવા પુત્રને ઉત્પન્ન કરે છે. (૨૦૦)

ન્યૂનપોદશવર્ષાં, ન્યૂનાઢપચ્ચવિગતિઃ ॥

પુમાન્ય જનયેદ્ધર્મ, સ પ્રાયેણ ત્રિપત્રતે ॥ ૨૦૧ ॥

અર્થ —૫૨ીશ વર્ષથી ઓછી ઉમરનો પુરૂષ એળ વર્ષથી ઓછી ઉમરની સ્ત્રી માટે મલોગ કે જે તે ગર્ભ પ્રાયે ગર્ભાશયમાજ નાશ પામે છે (૨૦૧)

અલ્પાયુર્વલ્હનો વા, દારિદ્ર્યોપદ્રુતોઽવગા ॥

કુષ્ઠાદિરોગી યદિ વા, ભવેદ્વા વિકલેન્દ્રિયઃ ॥ ૨૦૨ ॥

અર્થ —અથવા તે મરતિ, અલ્પઆયુષ્યવાળી, નિર્ગળ, દરિદ્રી, કુષ્ઠ પ્રમુખ રોગવાળી તથા અપગ થાય છે (૨૦૨)

પ્રસન્નચિત્ત એકાન્તે, મજેન્નારી નરાં યત.

યાદૃશ્મનાઃ પિતાધાને પુત્રસ્તત્સન્દગો ભવેત્ ॥ ૨૦૩ ॥

અર્થ —પુરૂષે પ્રસન્ન ચિત્તથી એકા તમા સ્ત્રી સેવવી જાય, તે મમયે પિતાનુ જેલુ મન હોય તેવી સતતિ થાય છે (૨૦૩)

મજેન્નાર્ગી શુચિ પ્રીતઃ, શ્રીગ્વળ્હાદિભિરન્મદઃ ॥

અશ્રાદ્ધમોર્જી તૃષ્ણાદિ-વામ્યા પરિગર્જિતઃ ॥ ૨૦૪ ॥

અર્થ —જે દિવસે શ્રાદ્ધનુ ભોજન ન થયું હોય, તથા તૃપા, કુષા, પ્રમુખની ગરીરે વેદના ન હોય, ત્યાં કામી પુરૂષ ચદન દેશર પ્રમુખ વસ્તુનો ગરીરે લેપ કરી, પવિત્ર વધ પ્રીતીથી સ્ત્રીને ભોગવે (૨૦૪)

સાવિશ્રમવચોભિશ્ચ, પૂર્વમુદ્ઘાસ્ય મટ્કમામ્ ॥

સમકાલ્પતન્મૂલ-કમલક્રોઢરેતસમ્ ॥ ૨૦૫ ॥

પુત્રાર્થં રમયેદ્દીમાન્ , વહ્દક્ષિણનાસિકમ્ ॥

પ્રવહ્દામનાડિસ્તુ, કામયેતાન્યદા પુનઃ ॥૨૦૬॥ યુગ્મમ્ ॥

અર્થ:—પુરૂષે દક્ષિણ નાસિકા વહેતી હોય ત્યારે વિલાસના વચનોથી સ્ત્રીને કામવિકાર ઉપજાવીને સ્ત્રી ઇન્દ્રિયના ક્રમ જાકાર મૂળ પ્રદેશમાં વીર્ય સમકાળે મિશ્ર થાય તેવી રીતે પુત્રને અર્થે સંલોગ કરવો. અને પુત્રીની ઇચ્છા હોય તો કાળી નાસિકા વહેતી હોય ત્યારે સંલોગ કરવો. (૨૦૫) (૨૦૬)

ગર્ભાધાને મધ્યા વર્જ્યા, રેવત્યપિ યતોજ્નયોઃ ॥

પુત્રજન્મદિને મૂલા-શ્લેષે સ્તસ્તે ચ દુઃસ્વદે ॥૨૦૭॥

અર્થ:—ગર્ભ ધારણને અવસરે મધ્યા તથા રેવતી એ બન્ને નક્ષત્ર વર્જવાં. કારણ કે, તેથી પુત્રના જન્મના અવસરે મૂળ તથા આશ્લેષા નક્ષત્ર આવે છે. અને તે નક્ષત્રો બહુ દુઃખ દેનારાં છે. (૨૦૭)

રત્નાનીવ પ્રશસ્તેઽહિ, જાતાઃ સ્યુઃ સૂનવઃ શુભાઃ ॥

અતો મૂલમપિ ત્યાજ્યં, ગર્ભાધાને શુભાર્થિભિઃ ॥૨૦૮॥

અર્થ:—ઉત્તમ દિવસે ઉત્પન્ન થએલા પુત્રો રત્નોની માફક સારા નીપજે છે. માટે કલ્યાણના અર્થી પુરૂષોએ ગર્ભાધાનને સમયે મૂળ નક્ષત્રનો પણ ત્યાગ કરવો. (૨૦૮)

આધાનાદશમે જન્મ, દશમે કર્મ જન્મભાત્ ॥

કર્મભાત્ પञ્ચમે મૃત્યુઃ, કુર્યાદેષુ ન કિં ચન ॥૨૦૯॥

અર્થ:—ગર્ભાધાન નક્ષત્રથી દશમું જન્મનક્ષત્ર, જન્મ નક્ષત્રથી દશમું કર્મનક્ષત્ર અને કર્મ નક્ષત્રથી પાંચમું મૃત્યુનક્ષત્ર

ઝડેવાય છે માટે એ ચારે નક્ષત્રોને વિષે કાઈ પણ કાર્ય ન કરવું (૨૦૯)

પાપાઃ પદ્મચાયગાઃ સૌમ્યા-સ્તનુત્રિકોણકેન્દ્રગાઃ ॥

સ્ત્રીસેવાસમયે સૌમ્ય-યુક્તેન્દુઃ પુત્રજન્મદઃ ॥ ૨૧૦ ॥

અર્થ — સ્ત્રીના સભોગને સમયે પાપગ્રહ (ગુલિ, શનિ, મંગળ, શુક્ર, કેતુ) ત્રીજે, છઠે અથવા અગ્યારમે સ્થાને હોય, સૌમ્યગ્રહ (બુધ, ગુરુ, શુક્ર, ચંદ્ર) પહેલે, ચોથે, સાતમે, દસમે, પાંચમે અથવા નવમે સ્થાને હોય, અને ચંદ્રમા શુભ ગ્રહના યોગમા હોય તો પુત્રજન્મ થાય છે (૨૧૦)

પુરાણે રજસિ લીળે, નવાસૃક્કશુક્રસંચયે ॥

સ્ત્રીના ગર્ભાશયે જીવઃ, સ્વકર્મપણો વિગેત્ ॥ ૨૧૧ ॥

અર્થ — ઋતુ સળધી પુરાણુ લોહી નાશ પામે, અને નવા ઋતુના લોહીનું તથા વીર્યનું મિશ્રણ થાય, ત્યારે સ્ત્રીના ગર્ભાશયમા પોતાના કર્મના વશથી ભ્રુવ અવતરે છે (૨૧૧)

નારી રક્તેઽધિકે શુક્રે, નરઃ સામ્યે નપુસકઃ ॥

અતો વીર્યવિટ્પ્રદયર્યઃ, વૃણ્યયોગાન્નશ્રયેત્પુમાન્ ॥ ૨૧૨ ॥

અર્થ — સભોગને સમયે સ્ત્રીનું લોહી અધિક હોય તો કન્યા થાય, અને પુરૂષનું વીર્ય અધિક હોય તો પુત્ર થાય છે, અને જો સ્ત્રીનું લોહી અને પુરૂષનું વીર્ય મળ્યું હોય તો નપુસક મતલબ થાય છે માટે પુરૂષે વીર્યની વૃદ્ધિને અર્થે વૃધ્ધ (વીર્યની વૃદ્ધિ કરનાર વસ્તુનું સેવન વિગેરે) ઉપાય કરવા. (૨૧૨)

યત્કિંચિન્મધુર મ્નિગ્ધ, વૃઢ્ઢણ વલગર્મનમ્ ॥

મન પ્રહ્લાટન ચૈવ, તત્સર્વં વૃણ્યમુચ્યતે ॥ ૨૧૩ ॥

અર્થ:—જે કોઈ વસ્તુ મધુર, ચીકણી, પુષ્ટિ કરનારી, બાળને વધારનારી અને મનને હર્ષ ઉપજાવનારી હોય, તે સર્વ (વસ્તુ) વૃષ્ય કહેવાય છે. (દૂધ, ચણક, કૌંચખીજ પ્રમુખ વસ્તુ વૃષ્ય જાણવી.) (૨૧૩)

પિતુઃ શુક્રં જનન્યાશ્ચ, શોણિતં કર્મયોગતઃ ॥

આસાદ્ય કુરુતે જીવઃ, સદ્યો વપુરુપક્રમમ્ ॥૨૧૪॥

અર્થ:—જીવ પિતાના વીર્યને અને માતાના લોહીને કર્મયોગથી પામીને તત્કાળ પોતાનું શરીર તૈયાર કરવા માંડે છે. (૨૧૪)

ભવેદતદહોરાત્રૈઃ, સપ્તભિઃ સપ્તભિઃ ક્રમાત્ ॥

કલલં ચાર્બુદં ચૈવ, તતઃ પેશી તતો ઘનઃ ॥૨૧૫॥

અર્થ:—પિતાનું વીર્ય તથા માતાનું લોહી એકત્ર થયા પછી સાત દિવસમાં તેનું કલલ (એક રૂપ) થાય છે, પછી સાત દિવસે કલલનું અર્બુદ (પપોટા જેવો આકાર) થાય છે, તે પછી સાત દિવસે અર્બુદની પેશી (કોથળી જેવો આકાર) બને છે, અને તે પછી સાત દિવસમાં પેશીનો ઘન (અંદરથી નીકળતો ભાગ) થાય છે. (૨૧૫)

પ્રથમે પ્રાસિ તત્તાવ-ત્કર્પન્યૂનં પલં ભવેત્ ॥

દ્વિતીયેઽભ્યધિકં કિંચિ-ત્પૂર્વસ્માદથ જાયતે ॥૨૧૬॥

અર્થ:—તે ગર્ભ પહેલે મહિને દોઢસો ચણાહી જેટલો તોલમાં હોય છે. અને બીજે મહિને પહેલાં કરતાં થોડો વધારે થાય છે. (૨૧૬)

જનન્યાઃ કુન્તે ગર્ભ-સ્મૃતીયે મામિ દોદ્ધમ્ ॥

ગર્ભાનુભારતશ્ચત-દુત્પત્યેત શુભાશુભમ્ ॥૨૭૭॥

અર્થ —તે ગર્ભ ત્રીજે મહિને માતાને દોદ્ધજો ઉપજાવે છે તે (દોદ્ધજો) ગર્ભના પ્રભાવથી અર્થાત્ જેવો ગર્ભ હોય તે પ્રમાણે શુભ અથવા અશુભ ઉપજે છે (૨૭૭)

પુનાન્નિ દોદ્ધે જાતે, પુમાન્તીમત્કે પુનઃ ॥

સ્ત્રી સ્ત્રીયાદે પુનઃ સ્ત્રીય, સ્વમેઽપ્યેય વિનિર્નિદેશેત્ ॥૨૭૮॥

અર્થ —પુરુષ જાતિની વસ્તુનો દોદ્ધજો થાય તો પુત્ર થાય, સ્ત્રી જાતિની વસ્તુનો થાય તો પુત્રી થાય, અને નપુરુષ જાતિની વસ્તુ ઉપજે થાય તો નપુરુષ થાય ગર્ભ-ત્રીજે આવતા સ્વપ્નનું ક્ષણ પાંચ એકીનેજ લાગુ (૨૭૮)

ભટ્ટણાનેદદાદાયુઃ, કુપિતોઽન્તઃ કલ્પસમ્ ॥

મયો વિનાશયદ્રભે, વિમ્પ કુસ્તેઽય્યા ॥૨૭૯॥

અર્થ —દોદ્ધજો પૂર્વે ન થાય તો તેથી ગર્ભિણીના શરીરની અદ્ય વાયુ કુપિત થઈ ગર્ભના નાશ કરે છે અથવા તેને (ગર્ભને) કટ્ટપ કરે છે (૨૭૯)

માતૃદ્ધાનિ તુર્યં તુ, મામે મામન્યત્વચ્ચ ॥

વાણિશાન્તિમેઽશ્વઃ, જાયને વચ્ચ પચમે ॥૨૮૦॥

અર્થ —તે ગર્ભ ત્રીજે મહિને માતાના શરીરને માતૃદ્ધાન કહે છે, અને પાંચ મહિને તે ગર્ભમાંથી વાયુના બે, પાંચ મહિને અને સાત મહિને કોઈ સ્ત્રી પાંચ અક્ષર બચાવે છે (૨૮૦)

પષ્ઠે તૂપચિનાત્યુચ્ચ-રાત્મનઃ પિત્તશોણિતે ॥

સપ્તમે પૂર્વમાનાત્તુ, પેશી પચ્ચશતીયુષા ॥૨૨૧॥

અર્થ:—તે ગર્ભ છઠે મહિને પોતાના પિત્તને તથા લોહીને વધારે છે, અને સાતમે મહિને પૂર્વ કહેલી પેશી તોલથી આગળ કરતાં પાંચસો ગણી થાય છે. (૨૨૧)

કરોતિ નાભિમ્ભવાં, નાડીસપ્તશતીં તથા ॥

નવસંખ્યાઃ પુનસ્તત્ર, ધમની રચયત્યસૌ ॥૨૨૨॥

અર્થ:—વળી તે ગર્ભ નાભિથી નીકળતી સાતસો નાડીઓ અને નવ ધમનીઓ ઉત્પન્ન કરે છે. (૨૨૨).

નાડ્યઃ સપ્ત શતાનિ સ્યુ-વિંશત્યૂનાનિ યોપિતામ્ ॥

ભવેયુઃ પંઢદેહે તુ, ત્રિંશદૂનાનિ તાન્યપિ ॥૨૨૩॥

અર્થ:—સ્ત્રીના શરીરમાં છસો એંશી નાડીઓ હોય છે, અને નપુંસકના શરીરમાં છસો શિત્તેર હોય છે. એટલે પુરૂષ કરતાં સ્ત્રીના શરીરમાં વીસ અને નપુંસકના શરીરમાં ત્રીશ એાધી હોય છે. (૨૨૩)

નવ સ્રોતાંસિ પુંસાં સ્યુ-રેકાદશ તુ યોપિતામ્ ॥

દન્તસ્થાનાનિ કસ્યાપિ, દ્રાત્રિંશત્પુણ્યશાલિનઃ ॥૨૨૪॥

અર્થ:—પુરૂષના શરીરે સ્રોત (દ્વાર) નવ હોય છે, અને સ્ત્રીના શરીરે અગ્યાર હોય છે. તથા કોઈ ભાગ્યશાળી પુરૂષનેજ અત્રીશ દાંત હોય છે. (૨૨૪)

સંધીન્ પૃષ્ઠકરણ્ડસ્ય, કુરુતેઽષ્ટાદશ સ્ફુટમ્ ॥

મત્યેક્ષ્મન્ત્રયુગ્મં ચ, વ્યામપચ્ચકમાન્ત્વમ્ ॥૨૨૫॥

અર્થ — જીવ પૃષ્ઠકરડના (પીઠના અસ્થિના) અહાર
માધા કરે છે તથા પ્રત્યેક જીવ જન્મે મળીને પાચ વામ
લેટલુ લાખુ આતરડાનુ જોડુ કરે છે (૨૨૫)

કરોતિ દ્વાદશાઙ્ગે ચ, પાશુલીના કરણકાન્ ॥

તથા પાશુલિકાષ્ઠુ, મયસ્યઃ સૂત્રધારવન્ ॥ ૨૨૬ ॥

અર્થ — ગર્ભમા રહેલો જીવ અદર રહેલા કુતારની પેઠે
શરીરે બાર પામળીના કંડક તથા છ પામળીઓ જનાવે
છે (૨૨૬)

લક્ષ્મીના રોમકૂપાના, કુરુતે કોટિમત્ર ચ ॥

અર્ધતુર્યા રોમકોટી-રિતસઃ સસ્પશ્નમૂર્ધજાઃ ॥ ૨૨૭ ॥

અર્થ — ગર્ભમા રહેલો જીવ કોડમા એક લાખ ચોહા
આર્થાત્ નવાણુ લાખ રોમકૂપ (રોમના કુવાઓ) તથા
માથાના અને દાઢી મૂછના સર્વે મળી સોડા ત્રણ કોડ રોમ
ઉત્પન્ન કરે છે (૨૨૭)

અષ્ટમે માસિ નિષ્પન્ન-પ્રાયઃ સ્પાત્સકલોડ્પ્યસૌ ॥

તર્થાજોરુદ્ધમાહાર, શૃક્લાત્યેષ વિગેષતઃ ॥ ૨૨૮ ॥

અર્થ — ગર્ભ આઠમે મહિને ધણો ખરો પરિપૂર્ણ થાય
છે, અને વિશેષે કરી ચોજ આહાર અહણુ કરે છે (૨૨૮)

ગર્ભે જીવો વસન્તેવ, વાસરાણા ઇતદ્રયમ્ ॥

અગ્નિઃ સપ્તસપ્તયા, દિવસાર્જેન ચ દુવમ્ ॥ ૨૨૯ ॥

અર્થ — એવી રીતે જીવ ગર્ભાવાસમા જન્મે ત્રી
ચિતેને (૭૮૫) દિવસ રહે છે (૨૨૯)

ગર્મસ્ત્વયોમુખો દુઃસ્વી, જનપીપ્પ્લસંમુખઃ ॥

વદ્વાઙ્ગલિલ્લાટે ચ, પચ્યતે જઠરાગ્નિના ॥૨૩૦॥

અર્થ:—ગર્ભમાં રહેલો જીવ માતાની પીઠ તરફ નીચે સુખ કરી બે હાથ માથે બેસી ઘણા દુઃખમાં રહે છે. તથા માતાના જઠરાગ્નિથી પરિપકવ થાય છે. (૨૩૦)

અસૌ જાગર્તિ જાગ્રત્યાં, સ્વપત્યાં સ્વાપિતિ સ્ફુટમ્ ॥

મુશ્વિત્યાં મુશ્વવાન દુઃસ્વી, દુઃસ્વત્યાં ચ માતરિ ॥૨૩૧॥

અર્થ:—ગર્ભમાં રહેલો જીવ માતા બગે ત્યારે બગે છે, ઉઘે ત્યારે ઉઘે છે, તે સુખી હોય ત્યારે પોતે સુખ પામે છે, અને તે દુઃખી થાય ત્યારે પોતે દુઃખી થાય છે. (૨૩૧)

પુરુષો દક્ષિણે કુક્ષૌ, વામે સ્ત્રી યમલૌ દ્વયોઃ ॥

જ્ઞેયં તૂદરસ્તનવ્યસ્થં, નપુંસકમસંશયમ્ ॥૨૩૨॥

અર્થ:—પુરુષબલિનો ગર્ભ જમણી બાજુએ હોય છે, સ્ત્રી બલિનો ડાબી બાજુએ, બેહુ ધન્ને બાજુએ અને નપુંસક બલિનો ગર્ભ કુખના મધ્ય ભાગમાં રહે છે. (૨૩૨)

ગણ્ડાન્તો મૂલમશ્લેષા, વિપ્રમસ્થાનગા ગ્રહાઃ ॥

કુદિનં માતૃદુઃસ્વં ચ, ન સ્યુર્ભાગ્યવતાં જનૌ ॥૨૩૩॥

અર્થ:—ભાગ્યશાળી મનુષ્યના જન્મને સમયે ગંડાન્ત, મૂળ નક્ષત્ર, અશ્લેષા નક્ષત્ર, અવળે સ્થાને પડેલાં ગ્રહ તથા અરાબ દિવસ ન હોય. તેમજ જણતાં માતાને દુઃખ પણ થાય નહીં. (૨૩૩)

પિતૃર્માતૃર્ધનસ્ય સ્યા—ત્રાશાયાધિત્રય ક્રમાત્ ॥

શુભા મુલ્કસ્ય તુર્યાધિ-અશ્લેષાયા વ્યતિક્રમાત્ ॥૨૩૫॥

અર્થ —મૂળ નક્ષત્રનો પહેલો, ખીન્ને તથા તથા ત્રીજો પાચો અનુક્રમે પિતાનો માતાનો તથા ધનનો નાશ કરે છે, અને ચોથો પાચો શુભ જાણુવો આશ્લેષા નક્ષત્રનો પહેલો પાચો શુભ જાણુવો, અને ખીન્ને, ત્રીજો તથા ચોથો પાચો અનુક્રમે પિતાનો, માતાનો તથા ધનનો નાશ કરે છે, એમ જાણુવુ (૨૩૪)

આઘઃ પષ્ટસ્યારિંશો, દ્વિતીયો નવમોઽષ્ટમઃ ॥

અષ્ટાવિંશશ્ચ મૂલમ્ય, મુહૂર્તો દુઃસ્વદા જર્ણા ॥૨૩૬॥

અર્થ —મૂલ નક્ષત્રના ત્રીમ ^૧ મુહૂર્તમા પહેલો ખીન્ને, છઠો, આઠમો, નવમો, ત્રેવીસમો અથવા અઠાવીસમો મુહૂર્ત જન્મને મમયે હોય તો તે દુ ખદાયી જાણુવો (૨૩૫)

મૌમાર્કશનિવારાશ્વે-દસંપૂર્ણ ચ મં તથા ॥

મદ્રા તિથિસ્ત્રિયસયોગે, પરજાતઃ પુમાન્ ભવેત્ ॥૨૩૬॥

અર્થ —જો જન્મસમયે ગ્વિ, મગજ, શનિ એમાથી એકવાર, અપૂર્ણ નક્ષત્ર અને ભદ્રા તિથિ (ખીજ, માતમ જાગસ) એ ત્રણેનો યોગ આવે તો ઉત્પન્ન થએલી સતતિ વ્યભિચારથી થએલી જાણુવી (૨૩૬)

૧ —ચંદ્રને એક નક્ષત્ર ભોગવતાં આશરે સાઠ પડી લાગે છે નક્ષત્રના ભોગજાનના ચોથા ભાગને પાચો કરે છે તે રીતે જોતા આશરે ૫૬૨ પડીને એક પાચો થાય છે

૨ —એક નક્ષત્રનો ભોગજાગ આશરે સાઠ પડી લાગે તો સાઠ પડીતા ત્રીમ મુહૂર્ત થાય છે આ ઉપરથી ^૧ જાનમા આશરે ૩. ૫ પડીને એક મુહૂર્ત કરેવાય છે

ગુરુને પ્રેક્ષતે ભ્રમં, સાર્કેન્દુ ચ તથા વિમ્બઃ ॥

સત્કરેન્દુયુતોર્કથે-ચતુર્થે મે પરાત્મજઃ ॥૨૩૭॥

અર્થઃ—જો લગ્ને રવિ તથા ચંદ્રમા હોય, લગ્નનો સ્વામી તથા ગુરુ લગ્નને બુદ્ધે નહીં, અને ચતુર્થ સ્થાને ચાપગ્રહની સાથે ચંદ્રમા તથા રવિ હોય તો પરપુરુષથી ચએલી સંતતિ બાણવી. (૨૩૭)

યદિ દન્તૈઃ સમં જન્મ, યદિ વા દશનાઃ શિશોઃ ॥

સ્યુર્મધ્યે સપ્તમાસસ્ય, કુંભનાશસ્તદા ધ્રુવમ્ ॥ ૨૩૮ ॥

શાન્તિકં તત્ર કર્તવ્યં, દુર્નિમિત્તધિનાશકમ્ ॥

અર્થઃ—જો દાંતસહિત બાળકનો જન્મ થાય, અથવા સાત મહિનાની અંદર બાળકને દાંત આવે, તો નિશ્ચયથી કુંભનો નાશ થાય છે. માટે તે અપલક્ષણના નાશને અર્થે શાંતિક, પૌષ્ટિક કર્મ કરવું. (૨૩૮)

જન્મપ્રમૃત્તિતો દન્તાઃ, પૂર્ણાઃ સ્યુર્વત્સરદ્યુ ॥૨૩૯॥

સપ્તમાદશવર્ષાન્તે-ર્નિપત્યોઘન્તિ તે પુનઃ ॥

અર્થઃ—જન્મદિવસથી માંડી બે વર્ષ પુરાં થાય તેટલી સુદતમાં બાળકને પૂરા દાંત આવે છે. તથા સાતમા વર્ષથી માંડી દસ વર્ષની અંદર સર્વે દાંત એકવાર પડી પાછા ઉગે છે. (૨૩૯)

રાજા દ્વાત્રિંશતા દન્તૈર્-ર્ભોગી સ્યાદેકહીનયા ॥૨૪૦॥

ત્રિંશતા તનુવિત્તોઽષ્ટા-ર્વિંશત્યા સુખિતઃ પુમાન્ ॥

પુલોન્નત્રિંશતા નિઃસ્વો, હીનૈર્દન્તૈરતોઽધમઃ ॥૨૪૧॥

અર્થ — જત્રીંગ દાત જેને હોય તે રાજા થાય, એકત્રીંગ જેને હોય તે ભોગી થાય, ત્રીંગ જેને હોય તે ઘોડા પેસાવાળો થાય, અઠાવીંગ જેને હોય તે સુખી થાય, એગણત્રીશ જેને હોય તે દરિદ્રી થાય, અને અઠાવીશ કરતાં એછા હોય તે નીચ માણુમ થાય (૨૪૦) (૨૪૧)

કુન્દપુષ્પોપમાઃ શ્લક્ષ્ણાઃ, મિત્રા દમ્ભપીઠિકાઃ ॥

તીક્ષ્ણદણ્ઠ ધના દન્તા, ધનભોગસુખપ્રદાઃ ॥ ૨૪૨ ॥

અર્થ — કુદના (ડાલરના) કુલ મરખા, ઝીણા સુવાળા, લાલ પેઢાવાળા, તીક્ષ્ણ દાઢાવાળા અને ધન (નકર), એવા જાતો ધન, ભોગ અને સુખ આપનારા બાણુવા (૨૪૨)

શ્વરદ્વીપિરદા ધન્યાઃ, પાપાશ્ચાશ્વરદાસ્તથા ॥

દ્વિપક્લિવિરલ્લપામ—કરાલ્યાસમદન્તકાઃ ॥ ૨૪૩ ॥

અર્થ — ગધેડાના તથા વાઘના દાતમરખા માણુસના દાત હોય તો તે શ્રેષ્ઠ બાણુના પણ બે હારથી ઉગેલા, ડટા છૂટા, ઠાળા, વિકરાળ અને ખડખડા અથવા નાના મોટા દાત હોય, તો તે પાપકાઠી અને દુ ખદાયી બાણુવા (૨૪૩)

- નેત્રેયમદ્ભ્રમાધાય, પરિજ્ઞાય તદામ્પદમ્ ॥

વિમૃશ્ય જન્માસન્ન, કૃન્વા દ્વારનિયન્ત્રણમ્ ॥ ૨૪૪ ॥

દૃષ્ટ્વેવનમસ્કાર—નણપમૃતિર્ભીઃ શુચિઃ ॥

રમ્યામન્ત્રપત્રિયાય, શ્રમ્યાયા પૃથુતાગ્રુપિ ॥ ૨૪૫ ॥

'પ્રસવૃતપરીગાન', સર્વાદારવિવર્જકઃ ॥

વામપાર્શ્વેન કુર્ચીત, નિદ્રા મદ્રાભિભાણુક ॥ ૨૪૬ ॥

(ત્રિભિવિશેષકમ્ ।)

અર્થ:—કલ્યાણના ઇચ્છક પુરૂષે સ્ત્રીસંલોગ કર્યા પછી મળમૂત્રની શંકા હોય તો ટાળવી, શંકા ન હોય તો મળ મૂત્રનો ત્યાગ કરવાનું સ્થાનક ક્યાં છે તે જોઈ રાખવું, સર્વ આહારનો ત્યાગ કરવો, પાસે જળ રાખવું, બારણાં બંધ કરવાં, પવિત્ર થઈ ઇષ્ટ દેવને નમસ્કાર કરી અપમૃત્યુની બીક ટાળવી, પછી પોતે પવિત્ર થઈ રક્ષામંત્રથી પવિત્ર કરેલી પહોળી શય્યા (ખિછાના) ઉપર સારી રીતે ઓઢી ડાળે પાસે સુઈ રહેવું. (૨૪૪) (૨૪૫) (૨૪૬)

અનાદિપ્રભવા જીવે, તમોદેતુસ્તમોમયી ॥

પ્રાત્તુર્યાત્તમસઃ પ્રાયો, નિદ્રા પ્રાદુર્ભવેન્નિશિ ॥ ૨૪૭ ॥

અર્થ:—જીવને અનાદિ કાળથી લાગતી આવેલી નિદ્રા પોતે તમોગુણી હોવાથી અંધકારના બહુલતાવાળા રાત્રિના સમયેજ પ્રાયે પ્રગટ થાય છે. (૨૪૭)

શ્લેષ્માવૃત્તાનિ સ્ત્રોતાંસિ, શ્રમાદુપરતાનિ ચ ॥

યદાક્ષાણિ સ્વકર્મભ્ય-મ્તદા નિદ્રા શરીરિણામ્ ॥ ૨૪૮ ॥

અર્થ:—જે સમયે સંજ્ઞાવાહક ઓત (નાડીઓ) કંક્રી-લરાય છે, અને ઇંદ્રિયો શ્રમથી (થાકથી) પોતાનું કામ બંધ રાખે છે, ત્યારે પ્રાણિયોને નિદ્રા આવે છે. (૨૪૮)

નિવૃત્તાનિ યદાક્ષાણિ, વિષયેભ્યો મનઃ પુનઃ ॥

ન નિવર્તેત વીક્ષન્તે, તદા સ્વપ્નાન્ શરીરિણઃ ॥ ૨૪૯ ॥

અર્થ:—ત્યારે સર્વે ઇંદ્રિયો થાકી જવાથી પોતાનું કામ બંધ કરે છે, પણ મન પોતાનું કામ કર્યાજ કરે, ત્યારે પ્રાણિયોને સ્વપ્નાં આવે છે. (૨૪૯)

અત્યાસત્ત્યાનવસરે, નિદ્રા નૈવ પ્રશસ્યતે ॥

एषा सौरयायुषी काल-रात्रिवत्प्रणिहन्ति च ॥२५०॥

અર્થ — અતિ આસક્તિથી તથા અવસર વિનાની નિદ્રા સારી ન બાલુવી કાળુ કે, તે નિદ્રા કાળરાત્રિ માફક સુખનો અને આયુષ્યનો નાશ કરે છે (૨૫૦)

संवर्धयति संवेह, युक्त्या निद्रा सुखायुषी ॥

अनवच्छिन्नसंताना, मुधाकुल्येव वीरुयः ॥२५१॥

અર્થ — વિચ્છેદ (ખડ) વગર સુક્તિથી આપેલી અ-મૃતની નીકથી જેમ વેલડી સુખમા ઘણા કાળ સુધી જીવે છે, તેમ સુક્તિથી નિદ્રા લેવામા આવે તો તેથી સુખ અને આયુષ્ય વધે છે (૨૫૧)

रजन्या जागरो रूक्षः, स्निग्धः स्वापश्च वासरे ॥

रूक्षस्निग्धमहोरात्र-मासीनप्रचलायितम् ॥२५२॥

અર્થ — રાત્રિએ ઉભાગરો કરવો તે રૂક્ષ (ઢળો) છે, અને દિવસે સુષુ તે સ્નિગ્ધ (ચીકણુ) છે દિવસે બેઠી ગહેણુ અને રાત્રિએ ઉઘન કરવો તે રૂક્ષ સ્નિગ્ધ છે (૨૫૨)

क्रोधभीशोकमयस्त्री-भारयानाध्वकर्माभिः ॥

परिक्रान्तंरतीसार-भ्वासहिष्कादिરोगिभिः ॥२५३॥

वृद्धबालावल्ग्वर्णः, क्षुत्तृदशूलादिविह्वलः ॥

अजीर्णिममुसैः कार्षी, दिवाम्त्रાપોऽपि कर्हिचित् ॥२५४॥

धातुसाम्य वपुःपुष्टि-स्तेषा निद्रागमाद्वેત્ ॥

रसः स्निग्धो घनः श्लेष्मा, मेदस्त्वह्नि शयीत न ॥२५५॥

અર્થ — ક્રોધ, ભય, શોક, મત્રપાન, સ્ત્રીમત્સેવ, લાર

ઉપાડયો, વાદનમાં બેસવું અને માર્ગ ચાલવો એવા કારણથી
 થાકી ગયેલા; અનિશ્ચય, શ્વાસ, હિંકકા (હિંકકી), પ્રમુખ રોગથી
 પીડાયેલા, ઘરડા, ખાગડ, દુર્ગંધ, માંદગી વિગેરે ભોગવવાથી
 ક્ષીણ થયેલા; ક્રુધા, તૃપ્તા, શૂન્ય વિગેરેથી પીડાયેલા અને અણ
 ઈ પ્રમુખ રોગથી ઉપદ્રવ પામેલા એટલા મનુષ્યોએ દિવસે
 પણ કોઈ વળતે સુઈ રહેવું. કારણ, તેમના શરીરમાં
 વિષમ થયેલા ધાતુ તેમ કરવાથી સમ થાય છે, શરીરને પુષ્ટિ
 મળે છે, રસ ધાતુ સ્નિગ્ધ (ચીકણો) થાય છે, અને શુદ્ધ કંદ
 થતો થાય છે. પણ જેના શરીરમાં મેદ બરાથો હોય તે મનુષ્યે
 દિવસે ન સુવું. (૨૫૩) (૨૫૪) (૨૫૫).

વાતોપચયરોગ્યાભ્યાં, રજન્યાશ્ચાલ્યભાવતઃ ॥

દિવા સ્થાપઃ મુસ્તો ગ્રીષ્મે, સૌજન્યદા શ્લેષ્માપિત્તકૃત્ ॥૨૫૬॥

અર્થઃ ગ્રીષ્મ ઋતુમાં શરીરમાં વાયુનો સંચય થાય
 છે, હવા રૂક્ષ હોય છે, અને રાત્રિ ટૂંકી થાય છે. એ ત્રણ
 કારણથી તે ઋતુમાં દિવસે સુવું સુખકારક છે, પણ બીજી
 ઋતુમાં તેમ કરવાથી કંદપિત્તનો વિકાર થાય છે. (૨૫૬)

દિવા સ્થાપો નિરન્નાના-મપિ પાપાણપાચકઃ ॥

રાત્રિજાગરકાલાર્થ, મુક્તાનામપ્યસૌ હિતઃ ॥૨૫૭॥

અર્થઃ—મનુષ્ય જે કાંઈપણ ખાધા વગર દિવસે સુઈ
 રહે તો, તેના પેટમાં કદાપિ પાપાણ હોય તો તે પણ પચી
 જાય. રાત્રિએ ઉજાગરો કરવો હોય તો દિવસે જમ્યા પછી
 પણ સુઈ રહેવું હિતકારિ છે. (૨૫૭)

યાતેઽસ્તાચલચૂલિકાન્તરમુવં દેવે રવૌ યામિની-

યામાર્ષેષુ વિધેયમિત્યભિદેધે સમ્યગ્મયો સત્ત્વસુ ॥

યમ્પિન્નાચરિતે ચિરાય દધતે મૈત્રીમિવાકૃત્રિમા,
જાયન્તે ચ વર્ણવદાઃ શુચિત્રિયા ધર્માર્થકામાઃસ્ફુટમ્ ॥૨૫૮॥

શતિ શ્રીજિનદત્તસુરિચિરચિતે વિવેકવિલાસે દિનચર્યાયા
પચ્ચમ ઉલ્લાસ ॥ ૫ ॥

અર્થ — સૂર્ય અસ્ત પામ્યા પછી રાત્રિના સાત ચોથ-
ડિયા સુધીનું કૃત્ય મે એવી રીતે આરી પેઠે કહ્યું શુદ્ધ
મનવાળા મનુષ્યોને તે કૃત્ય આચરવાથી ધર્મ, અર્થ અને
કામ એ ત્રણે પુરૂષાર્થ મિત્ર જેવા પ્રગટપણે વશ થઈ જાય
છે (૨૫૮)

શતિ શ્રીજિનદત્તસરિકૃત વિવેકવિલાસની ગૂર્જરલાપાનો
પાચમો ઉલ્લાસ સંપૂર્ણ,

અથ પઠ્ય ઉલ્લાસઃ ।

(અથ ઋતુચર્યા ।)

કાલમાહાત્મ્યમસ્ત્યેવ, સર્વત્ર વલ્લભત્તરમ્ ॥

નત્ત્વોચિત્યાત્તદાહાર-વિહારાદિ સમાચરેન્ ॥૧॥

અર્થ — (આ ઉલ્લાસના ઋતુચર્યા કહે છે અથાત્ કઈ
ઋતુમાં કઈ રીતે વર્તવું તે વિચાર કરીને કહે છે) સર્વ ઠેઠાણે
કાળનું માહાત્મ્ય પોતાનું જાણજીણ ધરાવે છે માટે
ઋતુને ઉચિત પુરે તેવી રીતે આહાર, વિહાર પ્રમુખ
કરવા (૧)

(અથ વસન્તચર્યા)

વસન્તેઽભ્યાધિકં ક્રુદ્ધઃ, ઍલપ્માગ્નિં હન્તિ જાઠરમ્ ॥

તસ્માદત્ર દિવાસ્વાપં, કફકૃદ્વસ્તુ ચ ત્યજેત્ ॥૨॥

અર્થ:—(પ્રથમ વસન્તઋતુમાં શી રીતે વર્તવું તે કહે છે.) વસન્તઋતુમાં કફનો આતશય પ્રકોપ થાય છે, અને તેથી જઠરાગ્નિ મંદ પડે છે, માટે એ ઋતુમાં દિવસે નિદ્રા ન લેવી, અને કફ કરનારી સર્વ વસ્તુ વર્જવી. (૨)

વ્યાયામધૂકવલ-ગ્રહણોદ્વર્તનાઙ્ગનમ્ ॥

વમનં ચાત્ર કર્તવ્યં, કફોદ્રેકાનિવૃત્તયે ॥૩॥

અર્થ:—વસન્ત ઋતુમાં કફના પ્રકોપની શાંતિને અર્થે વ્યાયામ અને ધૂમપાન કરવાં, મુખમાં ઔષધનો કવલ (કાળી ચો) લેવો, ઉવટાણું ચોપડવું, આંખો આંજવી, અને ઔષધથી વમન (ઉલટી) કરવું. (૩)

મોજ્યં શાલ્યાદિ ચાસ્નિગ્ધં, તિક્તોષ્ણકટુકાશ્ચિતમ્ ॥

અતિશીતં ગુરુ સ્નિગ્ધં, પિચ્છિલમદ્રવં નતુ ॥૪॥

અર્થ:—ઘણું સ્નિગ્ધ નહીં, તથા જેની અંદર તીખો તથા કડવો રસ છે, એવું, શાલી (ચોખા) પ્રમુખ અન્ન ઉંડું છતાં જ લક્ષણ કરવું. પણ ઘણું ટાઢું, પચતાં ઘણો કાળલાગે એવું, ઘી વીંચેરે સ્નિગ્ધ વસ્તુ જેની અંદર બહુ છે એવું, ચીકણું, કાચું તથા પાતળું અન્ન આ ઋતુમાં લક્ષણ ન કરવું. (૪)

ઍલેષ્મગ્નાન્યુપયુજીત, માત્રયા પાનકાનિ ચ ॥

સ્વં કૃષ્ણાગુરુકાઘ્મીર—વન્દનૈશ્વ વિલેપયેત્ ॥૫॥

અર્થ—આ ઋતુમા કકનો નાશ કરનારા પાનકનો (સરખત વિગેરેનો) પરિમિત (માફક) ઉપયોગ કરવો તથા પોતાના શરીરે મલયાગરનો, કેશરનો તથા ચદનનો લેપ કરવો (૫)

પવનો દક્ષિણશ્વત-મજ્જરી મટિકાસ્રજઃ ॥

ધ્વનિર્ઘટ્ટપિકાના ચ, મયૌ કસ્યોત્સનાય ન ॥૬॥

અર્થ—વસત ઋતુમા દક્ષિણ દિશાનો પવન, આળાની મજ્જરી (મહોર) મટિકા પુષ્પની (મોગરાની) માળાઓ, તથા ભ્રમરના અને કોકિલનાં મધુર સ્વર કોના મનને હ્રાપ્ત ઉપજાવતા નથી (૬)

(અથ ગ્રીષ્મચર્યા ।)

ગ્રીષ્મે મુજ્જીત સુસ્વાદુ, શીત મ્નિગ્ર દ્રવ લગુ ॥

યદત્ર રસમુષ્ણાશુ-ચાર્કર્ષન્યવનેરપિ ॥૭॥

અર્થ—(હવે ગ્રીષ્મ ઋતુમા શી રીતે વર્તવું તે કહે છે) ગ્રીષ્મ ઋતુમા મધુર, શીતળ, મ્નિગ્ર (ચોપડેલું), પાતળ અને હલકું અન્ન ભક્ષણ કરવું કારણ, તે ઋતુ મૂર્ચ ભૂમીના પશુ મર્ચ રમને ખેંચી લે છે (૭)

પય શાલ્યાદિકં સર્પિ-રથ મસ્તુ મગર્કરમ્ ॥

અત્રાર્શ્રીયાદ્રસાલાશ્ચ પાનકાનિ દિમાનિ ચ ॥૮॥

અર્થ—આ ઋતુમા બેસવું દ્રઢ, શાલિ (ચોખા) પ્રમુખ આન્ય અને પૂત ભક્ષણ કરવું, દહીં અવવા દાઝ ઉપર આવેલું પાણી ગરમ નાખીને પીવું, તથા ગ્માલા (શ્રીખડ) વિગેરે અને ઠંડા પાનક (સરખત વિગેરે) ઉપયોગમા લેવા (૮)

પિવેજ્યોત્સ્નાહતં તોયં, પાટલાગન્ધવન્નુસ્મ ॥

મધ્યાદિં કાયમાને વા, નયેદ્ધારાગૃહેઽથવા ॥૧૮॥

અર્થ:—આ ઋતુમાં ચંદ્રમાના કિરણથી શીતળ થએલું અને પાટલા પુષ્પના સુગંધથી મનને હરણ કરનારું જળ પીવું જોયોરનો સમય ઉદ્યાનમાં ઉભાં કરેલાં. ઝુપડામાં અથવા પાણીના કુવારા પાસે ગાળવો. (૬)

ચલ્લમાઙ્ગલતાસ્પર્શા—તાપથ્વાત્ર પ્રશામ્યતિ ॥

વ્યજનં સલિલાદ્રિં ચ, હર્ષોત્કર્ષાય જાયતે ॥ ૧૦ ॥

અર્થ:—આ ઋતુમાં પોતાની પ્રીતિ સ્ત્રીના અંગરૂપ વેલડીને સ્પર્શ કરવાથી તાપની શાંતિ થાય છે. તથા જળથી ભીંજી-વેલો વીંઝણો ઘણોજ હર્ષ ઉપજાવે છે. (૧૦)

સૌધોત્સજ્ઞે સ્ફુરદ્વાયૌ, મૃગાઙ્ગદ્યુતિમણ્ડિતે ॥

ચન્દનદ્રવલિપ્તાઙ્ગો, ગમયેદ્યામિનીં પુનઃ ॥ ૧૧ ॥

અર્થ:— આ ઋતુમાં પવનથી આનંદ ઉપજાવતી તથા ચંદ્રમાના કિરણથી શોભતી આગાશીમાં શરીરે સુગંધી ચંદનનો લેપ કરીને રાત્રિનો સમય ગાળવો. (૧૧)

દુર્વલાઙ્ગસ્તથાત્યમ્લ—કદૂષ્ણલવણાન્ રસાન્ ॥

નાચાદ્વયાયામમુદ્દામ—અવસાયં મુધીસ્ત્યજેત્ ॥૧૨॥

અર્થ:—બુદ્ધિશાળી પુરૂષે આ ઋતુમાં શરીરમાં જળ-ઓછું થતું હોવાથી અતિ ખાટો, કડવો અને ખારો એ ત્રણ રસ તથા ઉન્હું અન્ન ભક્ષણ ન કરવાં અને વ્યાયામ (કસરત) ન તથા ઘણો ઉદ્યમ પણ ન કરવો. (૧૨)

મદ્દીકાહ્યપાનાનિ, સિતાશુકવિલેપને ॥

ધારાગૃહાણિ ચ ગ્રીષ્મે મદ્યન્તિ મુર્નાનાપિ ॥ ૧૩ ॥

અર્થ — દ્રાણના મનોહર પાનકે (મગ્નત વિગેરે), મદ્દેદ તથા હલકા વસ્ત્રે, મદ્દેદ વિલેપન (અદન વિગેરે અને ધારા ગૃહ (પ્રવાગઓ) એટલી વસ્તુ આ ઋતુમાં મુનિઓને પણ મદ્દ (ગામ વિકાવ) ઉત્પન્ન કરે એવી છે (૧૩)

(અથ વર્ષર્નુચર્યા ।

પ્રાટપિ પ્રાણિના દોષાઃ, શ્રુભ્યન્તિ પવનાદયઃ ॥

મેઘવાતમગાપ્ય-જલર્શાફરયોગતઃ ॥ ૧૪ ॥

અર્થ -- (હવે વર્ષા ઋતુમાં શી ગીતે વર્તે તે કહે છે) વર્ષા ઋતુમાં વાદળોના પવનથી, ભૂમિની અદૃશ્ય નીજળતી બાકથી તથા જળના બિંદુથી મનુષ્યના વાત વિગેરે દોષ ક્રુપિત થાય ॥ (૧૪)

એતે ગ્રીષ્માતિપાતાદ્દિ, ક્ષીણાદ્ગાના ભવન્ત્યલ્પ ॥

ધાતુગામ્યકસ્તસ્મા-દ્વિધિઃ પ્રાવૃપિ મુજ્યતે ॥ ૧૫ ॥

અર્થ — ગ્રીષ્મ ઋતુનો તાપ પ્રમુખ ખમનાથી દુર્ગંધ થએલા લોકોના વાત વિગેરે દોષો ઘણા ક્રુપિત થાય છે માટે આ ઋતુમાં વાત, પિત્ત, કફ, રક્ત, પ્રમુખ ધાતુ લેશી ગાય ત્રિધિમાં ગેરે, બગડે નહીં, એવા અમધાન ઉપાય કરવા (૧૫)

નૃપવ્યોમ્નોઃ પયઃ પેય, ન સરસારિતા પુનઃ ॥

નાચયાયાતલ્પમ-દાનામ્મ ર્જિદનં ર્જેન ॥ ૧૬ ॥

અર્થ:—આ ઋતુમાં કુવાનું તથા પુનર્વસુ નક્ષત્ર બેઠા પછીનું વરસાદનું જળ પીવું, પણ તળાવનું અથવા નદીનું ન પીવું; તથા ધૂંઅરમાં, તંડકામાં અથવા પરગામ ન જવું, અને જળકીડા પણ ન કરવી. (૧૬)

વસેદ્વેગ્મનિ નિર્વાતે, જલોપદ્રવવર્જિતે ॥

સ્ફુરચ્છકટિકાક્ષારે, કુઙ્કુમોદ્વર્તનાશ્ચિતઃ ॥૧૭॥

અર્થ:—આ ઋતુમાં ધનવાન પુરૂષે શરીરે કેશરનો લેપ કરીને પવનનો અથવા જળનો ઉપદ્રવ જ્યાં ન હોય, તથા યગધગતા અંગારાની સઘડી જ્યાં રાખેલી હોય એવા ઘરમાં રહેવું (૧૭)

કેશપ્રસાદનાસક્તો, રક્તઘૂપિતવસ્ત્રધૃત્ ॥

મિતાગી ચાત્ર યસ્તસ્ત્રે, સ્મૃહ્યન્તિ સ્વયં સ્ત્રિયઃ ॥૧૮॥

અર્થ:—જે પુરૂષ આ ઋતુમાં કેશને સુગંધી તેલ લગાડી સાફ કરી રાખે, રાતા અને અંદન, લોળાન વિગેરેના ધૂપથી સુગંધી થએલાં વસ્ત્રો પહેરે, તથા પરિમિત લોજન કરે, તેને સ્ત્રીઓ પોતાની મેળે આહે છે. (૧૮)

(અથ શરદ્વૃત્તુર્ચર્ચા ।)

શરત્કાલે સ્ફુરત્તેજઃ-પુલ્લસ્યાર્કસ્ય રશ્મિભિઃ ॥

તપ્તાનાં દુષ્યતિ પ્રાયઃ, પ્રાણિનાં પિત્તમુલ્વણમ્ ॥૧૯॥

અર્થ:—(હવે શરદ્વૃત્તુમાં શી રીતે વર્તવું તે કહે છે.) શરદ્વૃત્તુમાં આકારા સૂર્યના કિરણોના તાપથી તપાયલા મનુષ્યોનું પિત્ત પ્રાચે કુપિત થાય છે. (૧૯)

પાનમત્ર ચ તત્તસ્મિન્, મધુરં લઘુ શીતલમ્ ॥

સતિક્તકટુક સેવ્ય, ક્ષુપ્તિતેનાશુ માત્રયા ॥ ૨૦ ॥

અર્થ —આ ઋતુમા જાણુ પુરૂષે કુધા લાગે કે તુરત મધુર, હલકુ, શીતળ, ચોડુ કડવુ તથા લીધુ અન્નપાન પરિમિત એવુ (૨૦)

રક્તમોહો વિરેકશ્ચ, શ્વેતે માલ્યવિલેપને ॥

સરોવારિ ચ રાત્રૌ ચ, જ્યોત્સ્નામત્ર સમાશ્રયેત્ ॥ ૨૧ ॥

અર્થ —આ ઋતુમા રક્તમે ક્ષ કરવો (ક્ષેપ જોલાવવી), જુલાળ લેવો, મદ્દેહ ફૂલોની માળા પહેરવી, સદેહ ચદનનો રાત્રીરે લેપ કરવો, સરોવરનુ નિર્મળ જળ પીવુ, તથા રાત્રિએ ચાદણીમા બેસવુ (૨૧)

પર્વાનિલમવશ્યાય, વપિ વ્યાયામમાતપમ્ ॥

ક્ષાર તૈલં ચ યત્નેન, ત્પજેદત્ર જિતેન્દ્રિયઃ ॥ ૨૨ ॥

અર્થ —જિતેન્દ્રિય પુરૂષે આ ઋતુમા પૂર્વ દિશાનો પવન, ધૂ અર, દહી, વ્યાયામ (કમરત), તડકો, ખારી વસ્તુ તથા તેલ એટલાનો પ્રયત્નથી ત્યાગ કરવો (૨૨)

સૌરમોદારસારાણિ, પુષ્પાણ્યામલકાનિ ચ ॥

ક્ષીરમિત્તાર્વકારાશ્ચ, શરવદ્ભસ્ય પૃષ્ઠે ॥ ૨૩ ॥

અર્થ —આ રૂતુમા સુગંધિ પુષ્પો, આમળા, દૂધ તથા જોલડીથી બનતી ગોળ, આકર પ્રમુખ વસ્તુ શરીરને પુષ્ટિ આપે છે (૨૩)

(અથ હેમન્તર્તુચર્યા ।)

હેમન્તે શીતવાહુલ્યા-દ્રજનીદૈર્ઘ્યતસ્તથા ॥

વદિઃ સ્યાદધિકસ્તસ્માદ, યુક્તં પૂર્વાહ્નભોજનમ્ ॥૨૪॥

અર્થ:—(હવે હેમન્ત ઋતુમાં શી રીતે વર્તવું તે કહે છે) હેમન્ત ઋતુમાં ટાઢ ઘણી હોવાથી તથા રાત્રિ લાંબી હોવાથી જઠરાગ્નિ પ્રદીપ્ત થાય છે, માટે આ સમયમાં જ્યોર પહેલાં જમવું ઉચિત છે. (૨૪)

અમ્લસ્વદૂષ્ણસુસ્નિગ્ધ-મત્ત ક્ષારં ચ યુજ્યતે ॥

નૈવોચિતં પુનઃ કિંચિં-દ્વસ્તુ જાઙ્ઘ્યવિધાયકમ્ ॥૨૫॥

અર્થ:—આ ઋતુમાં ખાટું, મીઠું, ઉન્નું, ચીકણું તથા આડું અન્નપાન સેવવું ઉચિત છે. પણ જે કોઈ વસ્તુ જઠરાગ્નિ ને ભારે પડતી હોય તે લેવી અનુચિત છે. (૨૫)

કૃયાદભ્યક્તમદ્ગસ્ય, તૈલેનાતિસુગન્ધિના ॥

કુઙ્કમોદ્વર્તનં ચિત્રં, નવ્યં વાસો વસીત ચ ॥ ૨૬ ॥

અર્થ:—આ ઋતુમાં અતિ સુગંધિ તેલથી શરીરને મર્દન કરવું, કેશરતું ઉવટણું લગાડવું, અને નવું વસ્ત્ર પહેરવું. (૨૬)

સવનીયં ચ નિર્વાતં, કર્પૂરાગરુષ્ટપિતમ્ ॥

મન્દિરં માસુરાદ્ધાર-શકટીમાસુરં નૈરઃ ॥ ૨૭ ॥

અર્થ:—આ ઋતુમાં મનુષ્યોએ પવન વિનાનું, કર્પૂર તથા કૃષ્ણાગર અદનના ધૂપથી સુગંધિ અને ધગધગતા અંગારની સઘડીથી દીપતું એવા ઘરમાં રહેવું. (૨૭)

પ્રવર્તી સાદ્ગરાગા ચ, પીનોન્નતપયોધરા ॥

શીત હરતિ શય્યા ચ, મૃદ્વપ્પસ્પર્ગગાલિની ॥૨૮॥

અર્થ — આ ઋતુમા શરીરે સુગંધી અગગગ (ઉવદણુ) લગાડેલી તથા પુષ્ટ અને ઉંચા સ્તનથી ચિત્તને ખેંચનારી તદ્દણુ સ્ત્રી અને ઢોમળ તથા ઉષ્ણ સ્પર્ગ વાળી શય્યા (ખિછાતુ) એ બંને ટાઢ દૂર કરે છે (૨૮)

(અથ ગિગિર્તુચર્યા ।)

ઉત્તરાગાનિલાદ્રૂક્ષ, શીતમત્ર પ્રવર્તેતે ॥

શિશિરેડ્વપ્પસ્વિલ કૃત્ય, જ્ઞેય હેમન્તરઘ્નૈઃ ॥૨૯॥

અર્થ — (હવે શિગિર ઋતુમા શીંગેતે વર્તેલુ તે જો છે) શિશિર ઋતુમા ઉત્તર દિગાના પવનથી લૂપી ટાઢ પડે છે માટે બાણ પુરૂષોએ આ ઋતુમા પણ હેમન્ત ઋતુ માફક જ સર્વ કૃત્ય બાણુ (૨૯)

ઋતુગતામિતિ સર્વ કૃત્યમેતન્નયોક્ત,

નિલિલ્જનશરીરે ક્ષેપસિદ્ધયર્થમુચેઃ ॥

નિપુણમતિરિદ યઃ સેવતે તસ્ય ન સ્યાદ્ ,

વપુષિ ગદસમૂહઃ સર્વદાવ્યર્ગપતી ॥ ૩૦ ॥

શતે બીજિનદત્તસૂરિવિરચિતે બીજિવિવેકાવલાસ ઋતુચર્યાયા

'પદ્ય ઉદ્ધાસ ॥ ૬ ॥

અર્થ — એવી રીતે ઋતુઓમા કરવા યોગ્ય સર્વ કૃત્ય સકળ મનુષ્યોના શરીરે પ્રગળને અર્થ મે દર્શાવે મનુષ્ય નિપુણ બુદ્ધિથી જોવા કરતા પગાલે વર્તે, તેના શરીરે રો ।

નો સમુદાય કે જે હમેશાં મનુષ્યોની પાસેજ રહેલો છે,
તે કોઈ સમયે પણ પ્રગટ થાય નહીં. (૩૦)

ઈતિ શ્રીજિનદ-તત્પરિવિરચિત વિવેકવિલાસની ગુજર
ભાષાનો ઋતુચર્યા નામે છઠ્ઠો ઉદ્ધાસ સંપૂર્ણ. (૬)

અથ સપ્તમ ઉદ્ધાસઃ ।

(અથ વર્ષચર્યા ।)

દુષ્પ્રાપ્યં પ્રાપ્ય માનુષ્યં, કાર્યં તત્કિંચિદુત્તમઃ ॥

મુહૂર્તમેકમપ્યસ્ય, યાતિ નૈવ યથા વૃથા ॥૧॥

અર્થઃ—(હવે સંપૂર્ણ વર્ષમાં શીરીતે વર્તવું તે કહે છે.)

ઉત્તમ મનુષ્યોએ આ દુર્લભ નરભવ પામીને એવું કાંઈક
કાર્ય કરવું, કે જેથી પોતાનો એક ક્ષણ પણ નકામો ન
ભય. (૧)

દિવા યામચતુષ્કેણ, કાર્યં કિમપિ તન્નરૈઃ ॥

નિશ્ચિન્તહૃદયૈર્યેન, યામિન્યાં સુપ્યતે સુખમ્ ॥૨॥

અર્થઃ—મનુષ્યોએ દિવસના ચારે પહોરમાં એવું કાંઈ
કૃત્ય કરવું, કે જેથી રાત્રિએ નિશ્ચિન્તપણે સુખે નિદ્રા
આવે. (૨)

તત્કિંચિદષ્ટભિર્માસૈઃ, કાર્યં કર્મ વિવેકિના ॥

એકત્ર સ્થીયતે યેન, વર્ષાકાલે યથાસુખમ્ ॥૩॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષે આઠ માસમાં એવું કાંઈ કૃત્ય
કરવું, કે જેથી વર્ષાકાળના ચોમાસામાં સુખે એક ઠેકાણે
રહેવાય. (૩)

યૌવન પ્રાપ્ય સર્ગર્થ-સાર્થસિદ્ધિનિચ્છનમ્ ॥

તત્કુર્યાન્મતિપાન્યેન, સર્ગર્થે મુલ્લભ્યશ્રુતે ॥૪॥

અર્થ — બુદ્ધિશાળી પુરૂષે મર્થ કાર્યો જેથી સારી કરી શકાય, એવી યૌવન દરમિયાન પાળીને એવા કાર્યો કરવાં, કે જેથી વૃદ્ધાવસ્થામાં સુખ મળે (૪)

અર્જનીય કઠારદ્ધિ-સ્તરિક્ષિત્તન્મનામુના ॥

મુલ્લભાસાગ્રતે યેન, શુદ્ધ જન્માન્તરં પુનઃ ॥૫॥

અર્થ — કઠાવાળા મનુષ્યોએ આ વાતમાં એવી પ્રવૃત્તિ કરવાની, કે જેથી મરણ પામ્યા પછી પવિત્ર જન્મ નિશ્ચયથી મળી ગયે (૫)

પ્રતિવર્ષ સદર્પણા, નિઝચિત્તાનુમાનતઃ ॥

પ્રજનીયાઃ સર્ગર્માણો, ર્માચાર્યાશ્ચ ધીમતા ॥૬॥

અર્થ — બુદ્ધિશાળી પુરૂષે પ્રતિ વર્ષ પોતાની પ્રાણિ પ્રભાતે આધર્મીની અને પોતાના ધર્માચાર્યની દર્શની પૂજા કરવી (૬)

ગૌત્રવૃદ્ધા યગશક્તિ, મમન્યા મદુમાનનઃ ॥

વિરેયા તીર્થયાગા ચ, પ્રતિવર્ષ વિરિચિના ॥૭॥

અર્થ — વિવેકી પુરૂષે પોતાના કુળમાં જન્મના માન્ય છે પુરૂષે રાજ્ય ભંજનો શક્તિ પ્રમાણે પ્રતિવર્ષ અદુમાનવી સહાર કરવો, તથા તીર્થયાગ પણ કરવી (૭)

પ્રતિસવન્મ વ્રાજ, શાશ્વત્તં ગુરુ પુરઃ ॥

શ્રેષ્ઠમાનો — શ્રેષ્ઠાન્કરઃ ॥૮॥

અર્થ:—તેમજ પ્રતિવર્ષે શુદ્ધ પાસે જ્યાં પ્રાયશ્ચિત્ત
(આલોચણ) લેવું કારણ છે, તેથી શુદ્ધ થએલો પોતાનો
આત્મા આરિસા સરખો નિર્મળ થાય છે. (૮)

જાતસ્ય નિયતો મૃત્યુ-રિતિ જ્ઞાપયિતું જને ॥

પિત્રાદિદિવસઃ કાર્યઃ, પ્રતિવર્ષે મહાત્માયિઃ ॥ ૯ ॥

અર્થ:—“જન્મેલા મનુષ્યને અવશ્ય મરવું છે.”

એવું લોકમાં જણાવવાને અર્થે મહાત્મા પુરુષોએ પોતાના
પિતા, માતા વિગેરેનો દિવસ (શ્રાદ્ધ) પ્રતિ વર્ષે કરવો. (૯)

इति स्फुटं वर्षविधेयमेत-लोकोपकाराय मयाभ्यधायि ॥

જાયેત લોકદ્વિતયેઽપ્યવશ્યં, યત્કુર્વતાંનિર્મલતા જનાનામ્ ૧૦.

અર્થ:—મેં આ રીતે પ્રતિવર્ષે કરવાં યોગ્ય કૃત્ય લોકો
પ્રકારને અર્થે પ્રગટ કર્યું. એ કૃત્ય કરનારા મનુષ્યો આ
લોકમાં તથા પરલોકમાં અવશ્ય પવિત્ર થાય છે. (૧૦)

ઇતિ શ્રીજિનદ-તસૂનિકૃત વિવેકવિલાસની ગૂર્જરભાષાનો
વર્ષચર્યા નામે સાતમો ઉદ્ધાસ સંપૂર્ણ.

અથાષ્ટમ ઉદ્ધાસઃ ।

(અથ-જન્મચર્યા)

(તત્ર-પ્રથમં વસતિયોગ્યદેશકમઃ)

સદ્ધર્મદુર્ગસુસ્વામિ-વ્યવસાયજલેન્ધ્રને ॥

સ્વજાનિલોકરમ્યે ચ, દેશે પ્રાયઃ સદા વસેત્ ॥ ૧ ॥

અર્થ:—(આ ઉદ્ધાસમાં આખા મનુષ્યભવનો શી

રીતે વર્તવું તે કહે છે તેમા પ્રથમ રહેવા યોગ્ય દેશનું
સ્વરૂપ દેખાડે છે) જે દેશમા મારો ધર્મ, દુર્ગ (કિલ્લો),
મારો રાજા, ઉગ્રમ, જળ અને ધન (લાકડા) એ છ વાન
સારા હોય, તથા પોતાની જ્ઞાતિના લોકો વમતા હોય, તે
દેશમા ધર્મી પુરૂષે પ્રાપ્તિ સદા રહેવું (૧)

ગુણિનઃ સૂતૃત્ત શૌચં, પ્રતિષ્ઠા ગુણગૌરવમ્ ॥

અપૂર્વજ્ઞાનલાભથ, યત્ર તત્ર વસેત્સુધીઃ ॥૨॥

અર્થ —ત્યા ગુણી લોકો વમતા હોય, તથા સત્ય
વ્યવહાર, પવિત્રતા, પ્રતિષ્ઠા (આજર), ગુણનો આદર અને
અપૂર્વ જ્ઞાનનો લાભ એટલા વાના હોય, ત્યા બુદ્ધિશાળી
પુરૂષે રહેવું (૨)

સમ્યક્દેશસ્ય સીમાદિ-સરૂપં સ્વામિનમ્તથા ॥

જ્ઞાતિમિત્રપિપ્પાત્ર-મવતુદ્ધત્ર વસેન્નરઃ ॥૩॥

અર્થ —વિવેકી મનુષ્યે ત્યા રહેવું હોય તે દેશની
મીમા વિગેરે, ત્યાના ગતની રીતભાત, પોતાની જ્ઞાતિભતિ,
તથા પોતાના મિત્ર અને શત્રુ વિગેરે વસ્તુઓનું સ્વરૂપ
ખરેખર ખાગ્ગીને પડી ત્યા રહેવું (૩)

વાત્સરાજ્ય મયેત્ર, દ્વૈગ્ય યત્ર વા મયેન્ ॥

સ્ત્રીરાજ્ય મર્ગગ્ય વા, યત્ર મ્યાત્ર નો વસેન્ ॥૪॥

અર્થ —ત્યા બાળકે અથવા મૂર્ખ રાજા હોય, એ રાજા
હોય, અથવા સ્ત્રીનું રાજ્ય હોય, ત્યા વિવેકી પુરૂષે વસવું
નહી (૪)

સ્વવાસદેશભેમાય, નિમિત્તાન્યવલોકયેત્ ॥

તસ્યોત્પાતાદિકં વંદ્ય, ત્યજેત્તં પુનરુદ્યમી ॥૫॥

અર્થ:—પોતાના આવાસના (વસવાના સ્થાનકના) અને સમગ્ર દેશના કલ્યાણને અર્થે નિમિત્ત (શુકન પ્રમુખ) જોવાં, જો તેમાં ઉત્પાત વિગેરે જણાય તો તે આવાસનો અથવા દેશનો ઉદ્યમી યુરૂપે તુરત ત્યાગ કરવો. (૫)

(અથ નિમિત્તક્રમઃ ।)

પ્રકૃતસ્યાન્યથાભાવ, ઉત્પાતઃ સ ત્વનેકથા ॥

સ યત્ર તત્ર દુર્ભિક્ષં, દેશરાજ્યપ્રજાલયઃ ॥૬॥

અર્થ:—જે વસ્તુ જેવા સ્વરૂપમાં હુમેશાં રહે છે, તેમાં ફેરફાર થવો, તે ઉત્પાત કહેવાય છે. તેના અનેક પ્રકાર છે. તે (ઉત્પાત) જ્યાં થાય, ત્યાં દુર્ભિક્ષ, દેશનો તથા રાજ્યનો ભંગ અને પ્રજાનો નાશ થાય છે. (૬)

દેવાનાં વૈકૃતં ભક્ત-ચિત્રેષ્વાયતનેષુ ચ ॥

ધ્વજશ્ચોર્ધ્વમુખો યત્ર, તત્ર રાષ્ટ્રાદ્યુપપ્તવઃ ॥૭॥

અર્થ:—જ્યાં ચિત્રામણની અથવા મંદિરમાંની પ્રતિમાઓના સ્વરૂપમાં કાંઈ ફેરફાર અથવા ભંગ થાય તથા ધ્વજ ગિચ્છી ચઢતી દેખાય, ત્યાં રાષ્ટ્ર વિગેરેને ઉપદ્રવ થાય. (૭)

જલસ્થલપુરારણ્ય-જીવાન્યસ્થાનદર્શનમ્ ॥

શિવાકાકાદિકાક્રન્દઃ, પુરમધ્યે પુરચ્છિદ્ધે ॥ ૮ ॥

અર્થ:—જ્યાં જળચર જીવ ભૂમીએ અને ભૂચર જીવ જળમાં, નગરના જીવ જંગલમાં અને જંગલી જીવ નગરમાં

સ્વાભાવિક રીતે દેખાય, તથા શિયાળિયા અને કાગડા બહુ કોલાહલ કરે, તે નગરનો નાશ થાય (૮)

છત્રપાકારસેનાદિ-દાહાર્યૈર્નૃપભીઃ પુનઃ ॥

અસ્રાણા જ્વલનં કોશા-ત્રિર્ગમઃ સ્વયમાઢવે ॥ ૯ ॥

અર્થ — છત્ર, કોટ સેના (લડકર) વિગેરેને જો અગ્નિને ઉપદ્રવ થાય, તો રાજાને ભય ઉત્પન્ન થાય તથા હુથીઆને બળતા દેખાય, અથવા પોતાની મેળે મ્યાનમાથી બહાર નીકળે તો સત્રામ થાય (૯)

અન્યાયકુસમાચારો, પાશ્વળ્ડાત્રિકતા જને ॥

સર્વમાકસ્મિક જાત, વૈકૃતં દેગનાગનમ્ ॥ ૧૦ ॥

અર્થ — જો મનુષ્યોમા અન્યાય, દુઝત્યાર અને પાખ-ડીપણુ વૃદ્ધિ પામે, તો દેશનો નાશ થાય તથા કોઈ પણ દેશકાર એકાએક થાય તો પણ તેથી દેગભગ થાય (૧૦)

પ્રાવૃષ્યૌન્દ્ર ધનુર્દુષ્ટ, નાહિ સૂર્યસ્ત સમુશ્વમ્

રાત્રી દૃષ્ટ સદા શેષ-કાલે વર્ણવ્યવસ્થયા ॥ ૧૧ ॥

અર્થ — વપાડાગમા ઇંદ્રધનુ'ય (કમાન) જો દિવસે સૂર્યની સમુખ દેખાય, તો તેમા કાંઈ દોષ નથી. પણ તેજ રાત્રિએ દેખાય, તો અશુભ જાણવું, તથા બાકીને વખતે દેખાય તો તેના રંગ પ્રમાણે શુભ અથવા અશુભ જાણવું (૧૧)

સિતરક્તપીતકૃણ, સુરેન્દ્રસ્ય ધનુર્યદિ ॥

ભવેદ્વિપાદિવર્ણાના, ચતુર્ણાં નાશન ક્રમાત્ ॥ ૧૨ ॥

અર્થ:—તે ઈંદ્રધનુ'ય ને સફેદ, રાતું, પીણું તથા કાળું દેખાય, તો અનુક્રમે પ્રહ્મણુ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય તથા શૂદ્રનો નાશ થાય. (૧૨)

અકાલે પુષ્પિતા વૃક્ષાઃ, ફાલિતાશ્ચાન્યમ્ભૂમુજે ॥

અલ્પેઽલ્પં મહતિ પ્રાજ્યં, દુર્નિમિત્તે ફલં વદેત્ ॥ ૧૩ ॥

અર્થ:—જે અકાળે વૃક્ષોને ફૂલ અથવા ફળ આવે તો રાજકાંતિ થાય. ઉપર કહેલાં દુષ્ટ નિમિત્ત (ઉત્પાત) અલ્પ હોય તો અલ્પ અને ઘણું હોય તો ઘણું ફળ કહેવું (૧૩)

અશ્વત્થોદુમ્બરચટ્-પ્લક્ષાઃ પુનરકાલતઃ ॥

વિપ્રક્ષત્રિયવિદ્શૂદ્ર-વર્ણાનાં ક્રમતો મિયે ॥ ૧૪ ॥

અર્થ:—અશ્વત્થ (પીપળો) ઉદુંબર (ઉંબર) વડ અને પ્લક્ષ (પીંપરો) એ ચાર વૃક્ષો અકાળે ફૂલ, ફળ પામે તો અનુક્રમે પ્રાહ્મણુ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય તથા શૂદ્ર એ ચારે વર્ણોને ભય ઉત્પન્ન થાય. (૧૪)

વૃક્ષે પત્રે ફલે પુષ્પે, વૃક્ષઃ પુષ્પં ફલં દલમ્ ॥

જાયતે ચેત્તદા લોકે, દુર્મિત્તાદિ મહાભયમ્ ॥ ૧૫ ॥

અર્થ:—જે વૃક્ષ ઉપર વૃક્ષ, પત્ર ઉપર પત્ર, ફળ ઉપર ફળ, અને ફૂલ ઉપર ફૂલ ઉગેલું દેખાય, તો જગત્માં મોટો ભય ઉપજાવનારું દુર્લિક્ષ (દુકાળ) વિગેરે થાય. (૧૫)

ગોધ્વનિર્નિશિ સર્વત્ર, કલિર્વા દર્દુરઃ શિર્ષી ॥

શ્વેતકાકશ્વઘૃત્રાદિ-ભ્રમણં દેશનાશનમ્ ॥ ૧૬ ॥

અર્થ — જોગત્રિશે મર્વ જગોએ જાયનો શબ્દગભજાય,
 ત્યા ત્યા કલક (વદનાક) વાય, દેહમને શિખા ઉત્પન થએલી
 રેખાય, નેમજ અદ્દ કાગડા, શ્વાન (કુતરા) અને ગીધ વિગેરે
 પગિયો આમતોમ ભમ્યા કરે તો દેશનો નાશ થાય (૧૬)

अष्टयज्ञा प्रत्याना-मज्ञा कर्णिमदः ॥

नृणां यदि स्पेक्षा, नित्यं नृणां ॥ १७ ॥

અર્થ — જે પૂજવા યોગ્ય પુરુષોની પૂજા ન થાય, અને ન પૂજવા યોગ્ય પુરુષોની પૂજા થાય, ક્ષાયણીના જાડાથાળ નાશી મદ અદે, ત્રિપાશિયુ દિવને અદે ઠદે, અને નત્રિજો તિત્તર પશી જોયે, તો જગતના ભય ઉપન થાય (૧૭)

सम्यग् गगनश्चापि. मयता यदा गमेन ॥

भक्त्यै वा नमसि जीतो. दधिपात्रि सदा भवेत् ॥ १८ ॥

અર્થ—જો મનમે ગણિતું બુદ્ધત્વ રાખ, તેજ મનમે
તે પિ માં જો કોઈ મીલે નાખાવો હવ બુદ્ધ, તો દુઃખિય
(દુઃખ) વિશે થાય (૧૨)

भगवन्निम्नजाति-धीवशः समरः शिरो. ॥

मृत्युं न च तर्हि मुनि-वर्जितं जायते मीमांसु ॥२७॥

[illegible]

पाणिन्यस्य वृत्तादिषु, विभिन्नैः शब्दैः ॥

काव्यशक्तिं यद्व्यञ्जयते, सोऽयं भावदानं ॥२८॥

અર્થ:—ગિલાડાં, સર્પ અને માછલી એ ત્રણ જીવ શિવાય શેષ જીવો જે પોતાની જાતિના જીવનું માંસ ભક્ષણ કરે, તથા કાગડા વિગેરે પણ જે પોતાનું ભક્ષ્ય સંતાડે, તેો ધાન્યનો નાશ થાય. (૨૦)

અન્તઃપુરપુરાનીક—કોશ્યાનપુરોથસામ્ ॥

રાજપુત્રપ્રકૃત્યાદે—રપિ રિષ્ટફલં ભવેત્ ॥ ૨૧ ॥

અર્થ:—અંત.પુર (જનનગાનો), નગર સેના, કોશ (ભંડાર), વાહન (હાથી ઘોડા વિગેરે), પુરોહિત (રાજાનો શુર), રાજા, રાજપુત્ર તથા પ્રધાન વિગેરે રાજાનો પરિવાર એટલાને ઉત્પાતનું ક્ષણ થાય. (૨૧)

પક્ષમાસર્તુષ્માસ—વર્ષમધ્યે ન ચેત્ફલમ્ ॥

રિષ્ટં તદ્વચર્થમેવ સ્યા—દુત્પન્ને શાન્તિરિષ્યતે ॥ ૨૨ ॥

અર્થ:—પળવાડિયામાં, એક માસમાં, બે માસમાં, છ માસમાં અથવા એક વર્ષમાં જે ઉત્પાતનું ક્ષણ ન થાય, તે તે ઉત્પાત વ્યર્થ જાણીલો. અને ક્ષણ થાય તેો શાંતિ કરવી હિતકારી છે, (૨૨)

દૌસ્થ્યે ભાવિનિ દેશસ્ય, નિમિત્તં શત્રુનાઃ સુરાઃ ॥

દેવ્યો જ્યોતિષમન્ત્રાદિ, સર્વે આભિચરેચ્છુભમ્ ॥ ૨૩ ॥

અર્થ:—દેશની માઠી અવસ્થા થવાની હોય, તેો નિમિત્ત શુકન, દેવતા, દેવીઓ, જ્યોતિષ તથા મંત્રવિગેરે શુભ હોય તેો પણ વિપરીત ક્ષણ આપે છે. (૨૩)

પ્રવાસયાન્તિ પ્રથમં, સ્વદેવાન્ પરદેવતાઃ ॥

દર્શયાન્તિ નિમિત્તાનિ, મજ્ઞે ભાવિનિ નાન્યથા ॥ ૨૪ ॥

અર્થ — દેશ આદિકનો નાશ થવાનો હોય, ત્યાગ પાન્કા દેવતાઓ પોતાના દેવતાઓને કાઢી નાખે છે, અને દુષ્ટ ઉત્પાત દેખાડે છે પણ દેશાદિકનો ભગ થવાનો ન હોય તો એમ થતું નથી (૨૪)

વિનાશ્યા ધરણી પુષ્ય, પ્રવૃક્ષા પ્રવૃક્ષા મધ્યા ॥

કૃત્તિકા ચેતિ નક્ષત્ર-ગગ્નેય મણ્ડલ મતમ્ ॥૨૫॥

અર્થ — ૧ વિશાખા, ૨ ભરણી, ૩ પુષ્ય, ૪ પૂર્વા કાંતુની, ૫ પૂર્વા ભાદ્રપદા, ૬ મધ્યા અને ૭ કૃત્તિકા આ આત નક્ષત્રો “અભિમુખ” એવા નામથી કહેવાય છે (૨૫)

ચિત્રા હસ્તોઽશ્વિની સ્વાતિ-મૃગશીર્ષ પુનર્વસુઃ ॥

ઉત્તરા ફાલ્ગુનીત્યેત-દ્વાયત્વ્ય મણ્ડલ મિદુઃ ॥૨૬॥

અર્થ — ૧ ચિત્રા, ૨ હસ્ત, ૩ અશ્વિની, ૪ સ્વાતિ, ૫ મૃગશીર્ષ, ૬ પુનર્વસુ અને ૭ ઉત્તરા ફાલ્ગુની એ આત નક્ષત્રો “વાયુમુખ” એવા નામથી કહેવાય છે (૨૬)

પ્રવૃક્ષાદોક્તગમાદ્રા-શ્રેણાદ્રી મૂત્રેન્વતી ॥

અનતારેતિ નક્ષત્ર-ચૈત્ત્વ મણ્ડલ મતેન્ ॥૨૭॥

અર્થ — ૧ પૂર્વાષાઢા, ૨ ઉત્તરભાદ્રપદા, ૩ અશ્લેષા, ૪ આર્દ્રા, ૫ મૃગા, ૬ દેવતી અને ૭ ગતતાનકા એ આત નક્ષત્ર “વૃશ્ચિકમુખ” એ નામથી કહેવાય છે (૨૭)

અનુગમાભિજિત્વ્યેષ્ઠો-ત્તરાષાઢા ચનિષ્ઠિકા ॥

રોમિની શ્રવણોઽષ્ટેભિ-કૃત્તિકાદેન્દ્રમણ્ડલમ્ ॥૨૮॥

અર્થ — ૧ અનુભા, ૨ અભિજિત, ૩ હૃત્વેષા, ૪ ઉત્તર

પાદા, ૫ ધનિષ્ઠા, ૬ રોહિણી અને ૭ શ્રવણ એ સાત નક્ષત્ર
“ મહેન્દ્ર મંડળ ” એવા નામથી કહેવાય છે. (૨૮)

માસૈરષ્ટભિરામેયે, દ્વામ્યાં વાયવ્યકે પુનઃ ॥

માસેન વારુણે સપ્ત-રાત્રાન્માહેન્દ્રકે ફલમ્ ॥ ૨૯ ॥

અર્થ:—અશ્વિમંડળનું ફળ આઠ માસે, વરુણમંડળનું એક
માસે અને મહેન્દ્રમંડળનું સાત રાત્રિએ થાય છે. (૨૯)

ભૂમિકમ્પો રજોઽવૃષ્ટિ-દિગ્દાહોઽકાલઋષણમ્ ॥

ઇત્યાદ્યાકસ્મિકં સર્વ—મુત્પાત ઇતિ કીર્ત્યતે ॥૩૦॥

અર્થ:—ધરતીકંપ, ધૂળની વૃષ્ટિ, દ્વિશાઓમાં દાહ,
અકાળે વર્ષાદ ઇત્યાદિક આણુચિંત્યું થાય, તે સર્વ “ઉત્પાત”
એવા નામથી કહેવાય છે. (૩૦)

ઈત્યનીતિપ્રજારોગ-રગાદ્યુત્પાતજં ફલમ્ ॥

મળ્ડલાલ્યાસમં પ્રાંયો, વહ્નિવાય્ઞાદિકં તથા ॥૩૧॥

અર્થ:—ધતિ ^૧ અનીતિ, પ્રજના શરીરમાં રોગ, સંઘ્રામ
ઇત્યાદિક ઉત્પાતનાં ફળ મંડળના નામ પ્રમાણે જાણવાં, જેમ
ઉત્પાત અગ્નિ મંડળમાં હોય તો અશ્વિનો ઉપદ્રવ, વાયુ
મંડળમાં હોય તો વાયુનો ઉપદ્રવ થાય, ઇત્યાદિક જાણવું.
(૩૧)

ઉત્પાતોઽપિ ચ માહેન્દ્રે, વારુણે મળ્ડલે ચ યઃ ॥

સ શુભઃ પુનરિત્યૂચે, તસ્મિન્ સર્વે શુભં વદેત્ ॥૩૨॥

૧:—વૃણી વૃષ્ટિ, વૃષ્ટિનો બિલકુલ અભાવ, તીડતો ઉપદ્રવ,
ઉંદરનો ઉપદ્રવ, સર્પાદિકનો ઉપદ્રવ, સ્વસૈનનો ઉપદ્રવ અને પર
સૈન્યનો ઉપદ્રવ એ સાત ધતિ કહેવાય છે.

અર્થ:—જો કંઈ સંક્રાંતિ (દક્ષિણાયન) અને મકર સંક્રાંતિ (ઉત્તરાયણ) રવિવારે, શનિવારે અથવા મંગળવારે થાય, તો મોંઘવારી, અનિવૃદ્ધિ, દુનઃકાળ, ચુદ્ધ વિગેરે થાય. (૩૬)

મૃગકર્કાજગમીને—પ્વર્કો વામાંઘ્રિણા નિશિ ॥

અદ્વિ સપ્તસુ શેષેષુ, પ્રચલેદક્ષિણાંઘ્રિણા ॥૩૭॥

અર્થ:—મકર, કંઈ, મેષ, વૃષભ અને મીન એ પાંચ રાશિમાં સૂર્ય રાત્રિએ હોયે પડે, અને બાકીના સાત રાશિઓમાં જમણે પડે ચાલે છે. (૩૭)

સ્વે સ્વે રાશૌ સ્થિતે સ્વાસ્થ્યં, ભવેદૌસ્થ્યં વ્યતિક્રમે ॥

ચિન્તનીયસ્તતો યત્ના—દ્રાગ્યહઃપ્રોક્તસંક્રમઃ ॥૩૮॥

અર્થ:—રાત્રિએ અને દિવસે કહેલો સંક્રાંતિકાળ યતનથી વિચારવો. કારણ કે, તે પોતપોતાની રાશિમાં હોય તો સ્વાસ્થ્ય કરનારો છે, અને વિપરીત હોય તો હુઃખદાયી છે. (૩૮)

આર્દ્રાન્ત્યાંઘ્રો તથા સ્વાતૌ, સતિ રાહૌ યદા શર્શા ॥

રોહિણીશકટસ્થાન્ત—ર્યાતિ દુર્ભિક્ષકૃત્તદા ॥૩૯॥

અર્થ:—આર્દ્રા નક્ષત્રના છેલ્લા પાયામાં અથવા સ્વાતિ નક્ષત્રમાં રાહુ છતાં જો ચંદ્રમા રોહિણીશકટનો ભેદ કરે, તો તેથી દુર્ભિક્ષ (દુકાળ) પડે. (૩૯)

૧:—આકાશમાં ગાળા સરખા આકારના તારાઓ શગણુ માસમાં સૂર્ય આશ્રમતંજ પાશ્વમ દિશાએ દેખાય છે. તેને રોહિણી-શકટ કહે છે.

મૌમસ્યાશ્ચો ગુરુચ્ચેત્સ્યા-દુર્વધોઽપિ શનેશ્વરઃ ॥

ગ્રહાણાં મુગલ મ્રેય-મિદં જગદરિપ્તકૃત્ ॥૪૦॥

અર્થ —એ મગળ નીચે ગુરુ અને ગુરુ નીચે શની હોય તો “ મુમલ ” નામે યોગ વાય છે તે જગતમા અનર્થ ઉત્પન્ન કરનારો જાણવો (૪૦)

શનિર્મીનિ ગુરુઃ કર્કે, તુલાયામપિ મદ્મઃ ॥

યાવચ્ચરિત લોકસ્ય, તાવત્કપરપરા ॥૪૧॥

અર્થ —શનિમીન રશિમા, ગુરુ કર્ક રશિમા અને મગળ તુલા રશિમા, હોય ત્યાં સુધી જગતમા કપટ ઉપર કપટ આગ્યા કરે (૪૧)

ગુરોઃ સપ્તાન્ત્યપચ્ચદ્વિ-સ્થાનગા મીક્ષકા અપિ ॥

શનિરાહુકુજાદિત્યાઃ, મત્યેક દેશમજ્જનમ્ ॥૪૨॥

અર્થ —જે શનિ, રાહુ, મગળ અને સૂર્ય એ ચાર ગ્રહ પાંચમે અને બીજે સ્થાને પોતે આવે અથવા તેમની દૃષ્ટિ એ સ્થાનો ઉપર આવે, તો ઉપર કહેલા ચાર ગ્રહોમા એકેક ગ્રહ પછુ દેશનો ભાગ કરી શકે (૪૨)

શુક્રાર્કિમૌમજીવાના-મેકોઽપીન્દુ મિનાતિ ચેત્ ॥

પતત્સુમટકોટીમિઃ, પ્રેતપ્રીતા તદાજિમૂઃ ॥ ૪૩ ॥

અર્થ —શુક્ર, શનિ, મગળ અને ગુરુ એમા કોઈપણ ગ્રહ જો ચંદ્રમાના મહળને ભેદે, તો કોડો સુલટો સ આમમાં પડે અને તેથી સ આમની ભૂમિ કોડો પ્રેતોનો (મરદાનો) બલિ મળવાથી અત્યુદ્ધ ગાય (૪૩)

કુમ્ભમીનાન્તરેષ્ટમ્યાં, નવમ્યાં દશમીદિને ॥

ગોઠિણી ચેત્તદા વૃષ્ટિ-રત્ના મધ્યાધિકા ક્રમાત્ ॥૪૮॥

અર્થ:—કુંભ અને મીન સંક્રાંતિની વચ્ચે રોહિણી નક્ષત્ર આવે છે, તે બે આઠમને દિવસે આવે તો અદ્ય, નવમ દિવસે આવે તો મધ્યમ અને દસમને દિવસે આવે તો અધિક વૃષ્ટિ થાય. (૪૪)

શાકલ્લિખો યુતો દ્વાભ્યાં, ચતુર્ભક્તોઽવશેષિતઃ ॥

સમાદ્ધે હલ્પકા વૃષ્ટિ-વિષમે પ્રચુરા પુનઃ ॥૪૫॥

અર્થ:—શકને ત્રણ ગણો કરી તેમાં બે ઉમેરવા અને તે સંખ્યાને આરે ભાગતાં બે સમ સંખ્યા બાકી રહે તો અદ્ય વૃષ્ટિ અને વિષમ સંખ્યા બાકી રહે તો ઘણી વૃષ્ટિ બાકી રહે. (૪૫)

મેઘાશ્વતુવિંધારતેષાં, દ્રોણાદ્વઃ પ્રથમો મતઃ ॥

આવર્તઃ પુષ્કરાવર્ત-સ્તુર્યઃ સંવર્તકસ્તથા ॥૪૬॥

અર્થ:—મેઘ (વાદળા) ચાર પ્રકારના છે. તેમાં પહેલાનું નામ દ્રોણ, બીજાનું આવર્ત, ત્રીજાનું પુષ્કરાવર્ત અને ચોથાનું સંવર્તક. (૪૬)

આપાદે દશમી કૃષ્ણા, સુભિક્ષાય સરોહિણી ॥

एकादशी तु मध्यस्या, द्वादशी दुःखदायिका ॥૪૭॥

અર્થ:—આપાદ વદિ દસમને દિવસે રોહિણી નક્ષત્ર હોય તો સુભિક્ષ (સુકાળ) થાય, અગ્યારમને દિવસે હોય તો મધ્યમ વૃષ્ટિ પ્રાય, અને બારમને દિવસે હોય તો દુકાળ પડે. (૪૭)

રવિરાશે: પુરો ભૌમો, દૃષ્ટિમૃષ્ટિનિરોચક:

ભૌમાયા ચામ્પગાશ્વન્દ્ર-ચોત્તરો દૃષ્ટિનાગન: ॥૮૮॥

અર્થ —સૂર્ય જે રાશિએ હોય, તે રાશિથી આગળ મગળ હોય તો તે વૃષ્ટિને હરકત કરનારો છે તથા મગળ વિગેરે શ્રદ્ધ સૂર્યની રાશિના દક્ષિણ ભાગે અને ચંદ્ર જે ઉત્તર ભાગે હોય તો તેથી વૃષ્ટિનો નાશ થાય છે (૪૮)

રેવતીરોહિણીપુણ્ય-મગ્નોત્તરપુનર્વસુ ॥

સેવતે ચેન્મહાસૂનુ-રૂન તજગદમ્બુદં: ॥૪૯॥

અર્થ —રેવતી, રોહિણી, પુષ્ય, મઘા, ઉત્તરા અને પુનર્વસુ એ નક્ષત્રોને વિષે મગળ હોય તો જગત્મા વૃષ્ટિ અટક થાય (૪૯)

ચિત્રાસ્વાતિવિશાસ્વાષ્ટ, યસ્મિન્માસે ન વર્ષણમ્ ॥

તન્માસે નિર્જલા યેષાં ઇતિ ગર્ગમુનેર્વચ: ॥૫૦॥

અર્થ —જે માસમા ચિત્રા, સ્વાતિ અને વિશાખા એ નક્ષત્રોમા વૃષ્ટિ ન થાય, તે માસમા વાદળા પાણી વિનાના થાય એવું ગર્ગમુનિનું વચન છે (૫૦)

અશ્લેષાયા યદા ભદ્રે, કર્કે સંત્રમતે રવિ: ॥

તદા ચ પ્રચ્છરા વૃષ્ટિ-રિત્પૂચે વાડયો મુનિ: ॥૫૧॥

અર્થ —સૂર્યની કર્ક રાશિએ સંક્રાંતિ થાય છે, તે દિવસે અશ્લેષા નક્ષત્ર હોય તો ઘણી વૃષ્ટિ થાય, એવું વાડવ મુનિનું વચન છે (૫૧)

તુલાસક્રાન્તિપદ્મ ચે-ત્સ્વસ્યા: સ્વસ્યાસ્તિથેશ્ચલેત્ ॥

તદા દુ:સ્થ જગત્સર્ગ, દુભિસદમરાદિભિ: ॥૫૨॥

અર્થ:—જો તુલા, વૃશ્ચિક, ધન, મકર, કુંભ અને મીન
એ છ સંક્રાંતિયો પોત પોતપોતાની તિથિથી ચલિત થાય, તો
દુકાળ આદિકથી સર્વ જગતને પીડા થાય. (૫૨)

દીપોત્સવદિને ધૌમ-વારો વહ્નિમયાવહઃ ॥

સંક્રાન્તીનાં ચ નૈકચ્ચે, શુભકર્માદિકં ન દિ ॥ ૫૩ ॥

અર્થ:—દિવાળીને દિવસે જો મંગળવાર આવે, તો
અગ્નિનો ઉપદ્રવ થાય, અને સંક્રાંતિ સમીપ આવેલી હોય
તો શુભ કાચ વિગેરે ન થાય. (૫૩)

અસ્તસ્યાનં રવેર્જ્યેષ્ઠ—જામાયાં વીક્ષ્ય ચિહ્નિતમ્ ॥

તદુત્તરેણ ચૈદિન્દો—સ્તસ્તચ્છુભદં વદેત્ ॥ ૫૪ ॥

અર્થ:—જ્યેષ્ઠ વહ્નિ અમાવાસ્યાને દિવસે સૂર્યના આથ-
મવાતું સ્થાનક ચિન્હ કરી રાખવું, અને સુદી બીજને
દિવસે ચંદ્રના જો સૂર્યથી ઉત્તર ભાગે આથમે તો શુભ
ફળ કહેવું. (૫૪)

યાવતી મુક્તિરાષાઢે, શુક્લપ્રતિપદાદિને ॥

પુનર્વસોશ્વતુર્માસ્યાં, વૃષ્ટિઃ સ્યાત્તાવતી શુભા ॥ ૫૫ ॥

અર્થ:—આષાઢ સુદિ પ્રતિપદાને દિવસે પુનર્વસુ નક્ષત્રનો
જેટલો ભાગ હોય તેટલી આમાસામાં વૃષ્ટિ થાય એમ
જાણવું. (૫૫)

(અથ વાસ્તુશુદ્ધગૃહક્રમઃ ।)

વૈશાખે શ્રાવણે માર્ગે, ફાલ્ગુને ક્રિયતે ગૃહમ્ ॥

શેષમાસેષુ ન પુનઃ, પૌષો વારાહસંમતઃ ॥ ૫૬ ॥

અર્થ—(હવે વાસ્તુની (ઘરની ભૂમિની) પરીક્ષા કરી ઘરની ગ્યના કરવાનો પ્રકાર કહે છે) વૈશાખ, શ્રાવણ, માર્ગશીર્ષ અને ફાલ્ગુન એ ચાર માસમા નવુ ઘર કરવુ ખીલ માસમા ન કરવુ વરાહમિહિરના મત પ્રમાણે પાપ માસમા પણ ઘર કરવુ (૫૬)

મૃગસિંહકર્કકુમ્ભે-ર્જકે પ્રાવમત્યમુત્ત્વં ગૃહમ્ ॥

વૃષાજાલિતુલાસ્યે તૂ-દગ્ધક્ષિણમુલ શુભમ્ ॥૫૭॥

કન્યાયા મિથુને મીને, વનસ્યે ચ રવાં સતિ ॥

નૈવ કાર્ય ગૃહ કૌચિ-દિદમપ્યભિધીયતે ॥૫૮॥

અર્થ—કર્ક, મિહ, મકર અને કુલ એ ચાર રાશિ-માની ગમે તે એક રાશિને વિષે સૂર્ય હોય ત્યારે પૂર્વ અથવા પશ્ચિમ દિશા સમુખ ઘર કરવુ મેષ, વૃષભ, તુલા અને વૃશ્ચિક એ ચારમાની કોઈ પણ રાશિને વિષે સૂર્ય હોય ત્યારે ઉત્તર અથવા દક્ષિણ દિશા સમુખ ઘર કરવું. મિથુન, કન્યા, ધન અને મીન એ ચારમાની કોઈ પણ રાશિને વિષે સૂર્ય હોય ત્યારે નવુ ઘર ન કરવુ એવું કેટલાક અથકારોનો મત છે (૫૭) (૫૮)

સુયોગર્ષે સુતારાશ, સ્થિરાશમાધિકાયકમ્ ॥

અદ્વિદ્વિદશકત્રિત્રિ-કોણપદ્માષ્ટકં શુભમ્ ॥૫૯॥

અર્થ—જ્યાં યોગ, નક્ષત્ર તથા તારા એ ત્રણે સારા, લગનાશ સ્થિર અને વ્યય કરતા આય અધિક હોય, તથા દ્વિદ્વિદશ (ખીઆખાડ), ત્રિત્રિજોણ ત્રપુપાય અથવા ત્રણ-નવ અને પદ્માષ્ટક (છ આડ) એ ત્રણ માહા યોગ ન હોય તે ઘર શુભ બાણુ (૫૯)

શોકો ધાન્યં મૃતિપશુહતી દ્રવ્યવૃદ્ધિર્વિનાશો,
 યુદ્ધં મૃત્યુક્ષતિરથ ધનં સ્ત્રી ચ વેદ્ધર્મયં ચ ॥
 લક્ષ્મીપ્રાપ્તિર્ભવતિ ભવનાગમ્યકર્તુઃ ક્રમેણ,
 ચૈત્રાદૃષ્ટે મુનિગિતિ ફલં વાસ્તુશાસ્ત્રોપદિષ્ટમ્ ॥૬૦॥

અર્થ:—ચૈત્રમાં નવું ઘર બાંધે તો શોક થાય, વૈશા-
 ખમાં ધાન્ય, જેઠમાં મરણ, આષાઢમાં પશુઓનો નાશ,
 શ્રાવણમાં ધનની વૃદ્ધિ, ભાદરવામાં વિનાશ, આ-
 સોમાં યુદ્ધ (કળયો), કાર્તિકમાં સેવકનો નાશ,
 માર્ગશીર્ષમાં ધનની વૃદ્ધિ, પૌષમાં સ્ત્રીની પ્રાપ્તિ,
 માહમાં અગ્નિનો ભય અને ફાગણમાં લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ
 થાય. એવી રીતે વાસ્તુ શાસ્ત્રના અનુસારથી ઘર બાંધવાનું
 ફળ પૂર્વાચાર્યે કહ્યું છે. (૬૦)

પુણ્યધ્રુવમૃદુસ્વાતિ-હસ્તવાસવવારુણે ॥

પ્રથમો વેદ્યનાં સૂત્ર-પ્રારંભઃ સાન્નિરિપ્યતે ॥૬૧॥

અર્થ:—પુષ્ય, હરત, સ્વાતિ, વિશાખા, જ્યેષ્ઠા, શત-
 તારકા, રોહિણી, ઉત્તરા, ઉત્તરાષાઢા, ઉત્તરાભાદ્રપદા, મૃગ,
 ચિત્રા, અનુરાધા, રેવતી એટલા નક્ષત્રોમાંનું કોઈ પણ નક્ષત્ર
 હોય ત્યારે, ઘરનું પ્રથમ સૂત્ર- (પહેલી આંકણી) માંડવું.
 એવો વિદ્વાનોનો મત છે. (૬૧)

સમાધિકવ્યયં કર્તુઃ, સમનામ યમાંશકમ્ ॥

કુમાસધિજ્ઞ્યવારં ચ, ગૃહં વર્જ્યં પ્રયત્નતઃ ॥૬૨॥

અર્થ:—આય જેટલા અથવા આયથી અધિક વ્યયને
 અને પોતાના કાણીની સાથે મળતા નામને ધારણ કરનાર,

ચમના અશમા આવેલુ, તથા દુષ્ટ માત્ર, દુષ્ટ નક્ષત્ર, દુષ્ટ વાર
ઉપર બધાવેલુ એવા ઘરનો પ્રયત્નથી ત્યાગ કરવો (૬૨)

મિસ્તારેણ હતં દૈર્ઘ્ય, વિમજેદદૃષ્ટિસ્તથા ॥

યચ્છેપં સ મયેદાયઃ, સ વ્વજાદ્યારવ્યયાદૃષ્ઠા ॥૬૩॥

અર્થ — લગાઇનો અને પહોળાઇનો શુભાકાર કરી
આવેલી મધ્યાને આઠે ભાગવી એમ કરતા શેષ રહે તે આય
કહેવાય તે (આય) ધ્વજ આદિક આઠ પ્રકારથી ઓળખાય
છે (૬૩)

ત્ર્યજો મૂષો દરિઃ શ્વા ગૌઃ, સ્વેરમૌ વાયસોઽષ્ટમઃ ॥

પૂર્વાદિદિશ્તુ ચાષ્ટાના, વ્વજાદીમામવસ્યિતિઃ ॥૬૪॥

અર્થ — ઉપર કહેલી મધ્યાને આઠે ભાગતા એક શેષ
રહે તો ધ્વજ, બે રહેતો ધ્રુમ, ત્રણ રહે તો સિહ, ચાર રહે તો
શ્વાન, પાંચ રહે તો વૃષભ, છ રહે તો ગર્દભ, સાત રહે
તો ગજ અને સમ ભાગ આવે તો કાક એ આઠે આયની
અનુક્રમે પૂર્વ દિશાથી માડી આઠ દિશાઓને વિષે સ્થિતિ
જાણવી (૬૪)

સ્વે સ્વે સ્થાને વ્વજઃ શ્રેષ્ઠો, ગજઃ સિદ્ધસ્તથૈવ ચ ॥

ત્ર્યજઃ સર્વગતો દેવો, તૃપ નાન્યત્ર દાપયેન્ ॥૬૫॥

અર્થ — ધ્વજ, ગજ અને સિહ એ ત્રણ આય પોત
પોતાને સ્થાનકે શ્રેષ્ઠ જાણવા ત્ર્યજ સર્વ ઠેકાણે દેવો, પણ
વૃષભ અન્ય ઠેકાણે ન દેવો (૬૫)

તૃપઃ સિદ્ધો ગજઐવ, સ્વેત્રે સ્વર્ગકોદ્વયોઃ ॥

દ્વિપઃ પુનઃ પ્રયોક્તવ્યો, વાપીકૂપસરસ્તુ ચ ॥૬૬॥

અર્થ:— વૃષભ, સિંહ અને ગજ એ ત્રણ આય જેટ (ગામડું), ઈર્વટ (હુંગરની તલાટીએ આવેલું ગામડું) તથા કોટ એ ત્રણને વિષે આપવા. તેમજ ગજ નામે આય વાપી (વાવ), કૃષ (કુવા), અને તળાવ એને વિષે આપવો. (૬૬)

આસનાયુધયોઃ સિંહઃ, શયનેષુ ગજઃ પુનઃ ॥

વૃષો ભોજનપાત્રેષુ, છત્રાદિષુ પુનર્ધ્વજઃ ॥૬૭॥

અર્થ:—આસન અને આયુધ (હથિયાર) એ બેને વિષે સિંહ આય, શયનને વિષે ગજ આય, ભોજન પાત્રને વિષે વૃષભ આય અને છત્ર આદિકને વિષે ધ્વજ આય દેવો. (૬૭)

અગ્નિવેઞ્મસુ સર્વેષુ, ગૃહે વહ્નયુપજીવિનામ્ ॥

ધૂમં નિયોજયેત્કિં ચ, શ્વાનં મ્લેચ્છાદિજાતિષુ ॥૬૮॥

અર્થ:— ધૂમ આય પાકસ્થાનમાં (રસોડામાં) તથા અગ્નિ ઉપર પોતાની આજીવિકા કરનારા લોહાર પ્રમુખને ઘેર આપવો. તથા મ્લેચ્છ આદિક જાતિને વિષે શ્વાન આય દેવો. (૬૮)

સ્વરો વેશ્યાગૃહે શસ્ત્રો, ધ્વાઙ્ક્ષઃ શેષકુટીષુ ચ ॥

વૃષઃ સિંહો ગજશ્વાપિ, પ્રાસાદપુરવેઞ્મસુ ॥૬૯॥

અર્થ:—વેશ્યાને ઘરે ગર્દભ આય, બાકી રહેલી સર્વ કુટીને વિષે (ઝુપડાને વિષે) કાક આય, તથા પ્રાસાદ (દેવ-મંદિર અથવા રાજમહેલ) અને નગરના ઘર એ બંનેને વિષે વૃષ, સિંહ તથા ગજ આય દેવો. (૬૯)

આયામે વિસ્તારહતે, યોડ્ઙ્ઙઃ સજાયતે કિલ ॥

સ મૂલરાશિવિજ્ઞેયો, ગૃહસ્ય ગણકઃ સદા ॥૭૦॥

અર્થ — લગ્નાધનો અને પંદોળાધનો ગુણાકાર કરે છને જે સખ્યા આવે છે તે ઘરની મૂળરાશિ જ્યોતિષીએ નિરતર જાણવી (૭૦)

અષ્ટાભિર્ગુણિતે મૂલ-રાશાવસ્મિન્વિશારદૈઃ ॥

સપ્તવિંશતિભક્તે ચ-ચ્છેપ તદ્ગ્રહમ ભવેત્ ॥૭૧॥

અર્થ — મૂળ રાશિને આઠથી ગુણી સત્તાવિશે ભાગ દેતા જે શેપ રહે તે ઘરનું નક્ષત્ર જાણવું (૭૧)

નક્ષત્રાદ્ઙ્ઙેષ્ટાભિર્ભક્તે, યોડ્ઙ્ઙઃ સ સ્યાદ્ગ્રહે વ્યયઃ ॥

પૈશાચો રાક્ષસો યક્ષઃ, સ ત્રિગા સ્મર્યતે વ્યયઃ ॥૭૨॥

અર્થ — નક્ષત્રની સખ્યાને આઠે ભાગતા જે શેપ રહે તે ઘરના વિપયમાં વ્યય જાણવો તે વ્યય પૈશાચ, રાક્ષસ અને યક્ષ એવી રીતે ત્રણ પ્રકારનો છે (૭૨)

પૈશાચસ્તુ સમાયઃ સ્યા-દ્રાશસસ્ત્રાધિકે વ્યયે ॥

આયાદ્યૂનતરો યક્ષો, વ્યયઃ શ્રેષ્ઠોઽષ્ટમા ત્વયમ્ ॥૭૩॥

અર્થ — વ્યય, આય જેટલો આવે તે તે પૈશાચ, આય કરતા અધિક આવે તે ગદ્ય અને આય કરતા ઓછો આવે તે યક્ષ કહેવાય છે એ ત્રણમાં યક્ષ વ્યય શ્રેષ્ઠ જાણવો હવે આઠ પ્રકારનો વ્યય કહે છે (૭૩)

જ્ઞાન્તઃ પારસ્તથોત્પ્રોતઃ, શ્રેયાનન્દો મનોહરઃ ॥

શ્રીવત્સો વિભવશાપિ, ચિન્ત્યાત્મેત્યષ્ટધા વ્યયઃ ॥૭૪॥

અર્થ:—ઉપર કહેલી રીતે નક્ષત્રની સંખ્યાને આઠે ભાગતાં શેષ એક બાકી રહેતો શાંત નામે, બે શેષ રહે તો પોર નામે, ત્રણ શેષ રહે તો, ઉદ્યોત નામે ચાર શેષ રહે તો શ્રેયાનદ નામે, પાંચ શેષ રહે તો મનોહર નામે, છ શેષ રહે તો શ્રીવત્સ નામે, સાત શેષ રહે તો વિભવ નામે, અને સમભાગ આવે તો ચિંત્ય નામે વ્યય જાણવો. (૭૪)

સૂત્રરાશો વ્યયે ક્ષિપ્તે, ગૃહનામાક્ષરેષુ ચ ॥

તનો હરેત્રિભિર્ભાગં, ચચ્છેપં સોઽશકો ભવેત્ ॥૭૫॥

ઇન્દ્રો યમશ્ચ રાજા ચા—પ્યંશકાશ્ચ ત્રયસ્તિવમે ॥

અર્થ:—મૂળ રાશિમાં વ્યયની અને ઘરના નામાક્ષરની સંખ્યા ઉમેરવી. અને ત્રણે ભાગતાં જે શેષ રહે તે અંશ જાણવો. એક શેષ રહેતો ઇન્દ્રનો, બે શેષ રહે તો યમનો અને સમ ભાગ ત્રૂટે તો રાજાનો અંશ જાણવો. (૭૫)

ગૃહમસ્વામિમૈવ્યસ્ય, ભક્તસ્ય નવધિઃ પુનઃ ॥૭૬॥

ચચ્છેપં સા ભવેત્તારા, તારાનામાન્યમૂનિ ચ ॥

જન્મ સંપદ્વિપત્કેમ; પ્રત્યરિઃ સાધનાતિ ચ ॥૭૭॥

નૈધની મૈત્રિકા ચૈવ, તથા પરમમૈત્રિકા ॥

ચત્ત્વારઃ પદ્ નવ શ્રેષ્ઠાઃ, સપ્ત પચ્ચ ત્રયોઽધમાઃ ॥૭૮॥

અર્થ:—ઘરના નક્ષત્રની અને ઘરધણીના નક્ષત્રની સંખ્યા એકત્ર કરી તેને નવે ભાગતાં શેષ રહે તે તારા કહેવાય છે. તેનાં નામ આ પ્રમાણે—નવનો ભાગ દેતાં એક શેષ રહે તો જન્મનામે તારા, બે શેષ રહે તો સંપત્તનામે,

ત્રણ શેષ રહે તો વિષત્ નામે, ચાર શેષ રહે તો દ્વેષ નામે,
પાચ શેષ રહે તો પ્રત્યરિ નામે, છ શેષ રહે તો સાધની
નામે, સાત શેષ રહેતો નૈધની નામે, આઠ શેષ રહે તો
ત્રેત્રિકા નામે અને નવ શેષ રહે તો પરમત્રેત્રિકા નામે તારા
જાણવી એ નવ તારાઓમા ચોથી, છઠી અને નવમી શ્રેષ્ઠ,
ત્રીજી, પાચમી અને સાતમી અધમ અને ળાકી મધ્યમ
જાણવી (૭૬) (૭૭) (૭૮)

રાક્ષસામરમત્યારિય-ગણનક્ષત્રકાદિકમ્ ॥

દ્વેષ જ્યોતિર્મતરયાત-મિદમત્રેતિ નોદિતમ્ ॥૭૦॥

અર્થ — રાક્ષસ, દેવતા, મનુષ્ય નામના ગણ તથા
નક્ષત્ર આદિક જ્યોતિષ શાસ્ત્રમા પ્રસિદ્ધ છે, માટે અહીં
કહ્યું નથી એમ જાણવું (૭૯)

તુમ ધન્ય જય નન્દ, સ્વર કાન્તં મનોગમમ્ ॥

સુમુખ દુર્મુખ ક્રૂર, સુખ્ય મનદ ક્ષયમ્ ॥૮૦॥

આક્રન્દ વિપુલ ચૈવ, વિજય ચૈત્યમૃર્ધિદાઃ ॥

ગૃહસ્થ સ્વસ્થ નામ્નોઽપિ, સત્ત્વ ચ ધેવેત્ફલમ્ ॥૮૧॥

અર્થ — ૧ તુમ (સ્થિરતા રાખનાર), ૨ ધન્ય (યશ
દેનાર), ૩ જય, (જય દેનાર), ૪ નન્દ (આનન્દ દેનાર),
૫ મુખ (સ્નેહ તોડનાર), ૬ મનન્ત (સુદરતા ઉપજાવનાર),
૭ મનોગમ (મનને પ્રીતિ ઉપજાવનાર), ૮ સુમુખ (સારા
મુખતુ), ૯ દુર્મુખ (ખરાબ મુખતુ), ૧૦ ક્રૂર (ભય ઉપ-
જાવનાર), ૧૧ સુખ્ય (પરિવારને વધારનાર), ૧૨ ધન
(ધન દેનાર), ૧૩ ક્ષય (નાશ કરનાર), ૧૪ આક્રન્દ (શોક

ઉપજાવનાર), ૧૫ વિપુલ (વૃદ્ધિ કરનાર), અને ૧૬ વિજય (ધણે જય આપનાર) એવા નામથી ઘરના સોળ ભેદ છે. ઘરનાં તથા પોતાના નામનાં પણ એ નામ સ્વરૂપાં રૂળ જાણવાં. (૮૦) (૮)

યો ગુરુણાં ચતુર્ણાં સ્યા-ત્પ્રસ્તારઞ્છન્દસાં કૃતઃ

પોઢશાન્ત ઇમે મેદઃ, સ્યુસ્તનામાન્યાલેન્દકૈઃ ॥૮૨॥

અર્થઃ—ચાર ગુરુ વર્ણનો જે સોળ પ્રકારનો છંદશાસ્ત્રમાં (પિંગળમાં) પ્રસ્તાર કર્યો છે. તેવાજ ઘરના આ સોળ ભેદ જાણવા. અને ઉપર કહેલા સોળ નામ અલિંદક (દરવાજા આગળનો ચોક) ઉપરથી થાય છે. (૮૨)

પૂર્વસ્યાં શ્રીગૃહં કાર્ય-માયેઽયાં તુ મહાનસમ્ ॥

શયનં દક્ષિણસ્યાં ચ, નૈઋત્યામાયુધાદિકમ્ ॥ ૮૩ ॥

મુજિક્રિયા પશ્ચિમાયાં, વાયવ્યાં ધાન્યસંગ્રહઃ ॥

ઉત્તરસ્યાં જલસ્થાન-મૌશાન્યાં દેવતાગૃહમ્ ॥ ૮૪ ॥

અર્થઃ—ઘરમાં પૂર્વ દિશાએ લક્ષ્મીનું સ્થાનક (ભાંડા ગાર) કરવું, અગ્નિકોણે પાકશાળા (રસોડું) કરવી, તથા દક્ષિણ દિશાએ સુવાનું, નૈઋત્ય કોણે હથિયાર વિગેરે રાખવાનું,

૧:—ચાર ગુરુ વર્ણના સોળ પ્રસ્તાર આ રીતે—(૧)ડડડડ ધ્રુવ, (૨)ડડડધન્ય, (૩)ડડડ જય (૪)ડડડ નન્દ, (૫)ડડડ ખર, (૬)ડડડ કાંત, (૭) ડાડ મનોરમ, (૮)ડાડ સુમુખ, (૯)ડડડા દુર્મુખ (૧૦)ડડા ક્રૂર, (૧૧)ડાડા સુપક્ષ, (૧૨)ડાડ ધનદ, (૧૩)ડડા ક્ષય, (૧૪)ડા આકંદ, (૧૫)ડાા વિપુલ, અને (૧૬)ડાા વિજ. અહીં એ (૬)ચિન્હ ગુરુવર્ણનું અને આ (૧)ચિન્હ લઘુ વર્ણનું સમજવું.

પશ્ચિમ દિશાએ ભોજન કરવાનું, વાયવ્ય કોણમાં ધાન્યના સંગ્રહનું, ઉત્તર દિશાએ જળનું અને ઇશાન કોણમાં દેવનું સ્થાનક કરવું (૮૩) (૮૪)

(અપરં ચ) ગૃહસ્ય દક્ષિણે વહ્નિ-તોયગોમયદીપભૂઃ ॥

વામે પ્રત્યગ્નિગો મુક્તિ-વાન્યાર્થારોહદેવભૂઃ ॥૮૫॥

અર્થ — વળી ઝહું છે કે, ઘરના દક્ષિણ ભાગમાં પાક શાળા (રંગોડું), પાણીચારૂ અને છાણનું તથા દીપક રાખવાનું સ્થાનક કરવું ડાબી બાજુએ પશ્ચિમ દિશામાં ભોજન કરવાનું ધાન્ય અને ધન રાખવાનું તથા દેવનું સ્થાનક કરવું (૮૫)

पूर्वादिदिग्बिनिर्देशो, गृहद्वारव्यपेक्षया ॥

भास्करोदयदिकपूर्वा, न विज्ञेया यथा क्षुते ॥૮૬॥

અર્થ — જેમ છીંડમાં જે દિગાએ મુખ હોય તે પૂર્વ દિશા લેવાય છે, તેમ ઘરની બાણતમાં પણ જે દિગાએ ઘરનું દ્વાર હોય તે પૂર્વ દિશા તથા તેની અપેક્ષાએ બીજી દિશાઓ જાણવી પણ જે દિશાએ મૂર્ચ હોય છે, તે પૂર્વ દિશા અહીં ન લેવી (૮૬)

गृहेषु हस्तसत्यान, मयकोर्णवर्धयिते ॥

समाः स्तम्भाः समाः पट्टा, विपमाश्च क्षणाः पुनः ॥૮૭॥

અર્થ — ઘર માપવું હોય તો હાથની મજબા મધ્ય ખુણાથી કરાય છે ઘરના થાબડા તથા પાટિયાસમસજ્યામાં રાખવા, અને ઘરના ખણ (ખડ) વિષમ સજ્યામાં રાખવા (૮૭)

આયે નષ્ટે સુખં ન સ્યા-ન્મૃત્યુઃ પદ્માષ્ટકે પુનઃ ॥

દ્વિદ્વાદશે ચ દારિદ્ર્યં, ત્રિત્રિકોણેઽઙ્ગજક્ષયઃ ॥૮૮॥

અર્થ—ધરને વિષે આય જેવો ભેદજે તેવો ન હોય તો સુખ ન થાય, તથા છ-આઠ હોય તો મરણ દ્વિદ્વાદશ (ખીઆઆરૂં) હોય તો ધનનો ક્ષય અને ત્રણ-પાંચ તથા ત્રણ-નવ હોય તો પુત્રનો નાશ થાય. (૮૮)

યમંજિ મૃદ્ધિમૃત્યુઃ સ્યા-ન્મૃત્યુઃ સપ્તમતારકે ॥

નિસ્તેજાઃ પશ્ચમે તારે, વિપત્તારે તૃતીયકે ॥૮૯॥

અર્થ—ધરને વિષે યમનો અંશ હોય તો ઘર ધણીનું ધણીનું મરણ થાય, સાતમી (નૈઘની) તારા હોય તો પણ મરણ થાય, પાંચમી (પ્રત્યરિ) તારા હોય તો ઘર ધણીનું તેજ જાય, ત્રીજી (વિપત્) તારા હોય તો આપદા આવી પડે. (૮૯)

ન્યૂનાધિક્યે ચ પટ્ટાનાં, તુલાવેધ ઉપર્યધઃ ॥

एकक्षणे नीचोच्चत्वे, पट्टाનાं तालुवेधता ॥ ९० ॥

भूवैषम्यात्तले वेधो, द्वारवेधश्च घोटके ॥

एकास्मिन्संमुखे द्वाभ्यां पुन-नैव कदाचन ॥ ९१ ॥

અર્થ—ધરનાં ઉપરના અથવા નીચેનાં પાટિયાં જે ઓછાં અથવા અધિક હોય તો તુલાવેધ કહેવાય છે. એક ખણમાં (ખંડમાં) જે પાટિયાં ઉંચાં નીચાં હોય તો તાલુવેધ કહેવાય, ઘરની જમીન ઉંચી નીચી હોય તો તલવેધ કહેવાય, અને એકજ ઘોડો સંમુખ (સામે) હોય તો દ્વારવેધ કહેવાય, પણ બે ઘોડા સામા હોય તો દ્વારવેધ ન કહેવાય. (૯૦)(૯૧)

વાસ્તોર્વાસિ શીર્ષે ચ, નાર્મો ચ મ્નયોર્દ્વયોઃ ॥

ગૃહસ્થાનાનિ ધર્માણિ, નૈષ્ઠ સ્તમ્ભાટિ સૂચયન્ ॥ ૧૨ ॥

અર્થ —વાસ્તુની છાતી, મન્નક, નાળિ અને જે મ્તન
એ પાચ ધર્મા મર્મસ્થાન કહેનાય છે, માટે એ પાચ ધર્મા
નકોને વિષે થાભલા વિશેર ન ગણના (૬૨)

સ્તમ્ભકપદ્મકોનાચ-ચિદ્ દ્વાર શુભ નદિ ॥

ગૃહોર્ચા દ્વિગુણા ભૂમિ, ત્યજન્વા તે સ્પુર્ન વેદયા ॥૧૩॥

અર્થ —થાભલો, કુવો, વૃક્ષ, ખૂળો તથા માર્ગ ધર્મા
દ્વારની વચ્ચે આવે તો તે ઠારવેધ કહેનાય છે, તે માર્ગ નથી
પણ ધર્મની ભૂમિથી જમાણી ભૂમિ છેડીને ઉપર કહેલી વસ્તુ
હોય તો ઠારવેધ ન થાય (૬૩)

પ્રથમાન્ત્યયામવર્જ, દ્વિત્રિપ્રમ્લસમયા ॥

ઝાયા ટક્ષન્જાદીના, સદા દુઃસપ્તદાયિની ॥૧૪॥

અર્થ —પહેલો તથા છેલ્લો પહોર છેડી ખીલ તથા
ત્રીજા પહોરની વૃક્ષની આવવા ધ્વજની છાયા ધર ઉપર
પડતી હોય તો તે સદાએ દુઃખ દેનાર બાણુવી (૬૪)

વર્જયેદ્દતઃ પૃષ્ઠ, દાષ્ટિ ચળ્ડીશસૂર્યયોઃ ॥

વામાક્ષ વાસુદેવસ્ય, દક્ષિણ વ્રહ્મણઃ પુનઃ ॥૧૫॥

અર્થ —ધરના દ્વાર આગળ અરિહુતની પૂઠ, ચડીની,
મહાદેવની તથા સૂર્યની દાષ્ટિ, વાસુદેવનો ડાબો ભાગ, અને
બ્રહ્માનો જમણો ભાગ વર્જવો (૬૫)

(અથ ગૃહશ્રીવૃંદિક્રમઃ)

ન દોષો યત્ર વેદ્યાદિ-નૈવં યત્રાશિલં દલમ્ ॥
 વહ્નદ્વારાણિ નો યત્ર, યત્ર ધાન્યસ્ય સંચયઃ ॥૧૬॥
 પૂજ્યન્તે દેવતા યત્ર, યત્રાભ્યુત્યાનમાદરાત્ ॥
 રક્તા યમનિકા યત્ર, યત્ર સંમાર્જનાદિકમ્ ॥૧૭॥
 યત્ર જ્યેષ્ઠકાનિષ્ઠાદિ-વ્યવસ્થા સુપ્રતિષ્ઠિતા ॥
 ભાનવીયા વિશન્ત્યન્ત-ર્ભાનવો યત્ર નૈવ ચ ॥૧૮॥
 દીપ્યતે દીપકો યત્ર, પાલનં યત્ર રોગિણામ્ ॥
 શ્રાન્તસંવાહના યત્ર, તત્ર સ્યાત્કમલા ગૃહે ॥૧૯॥

(ચતુર્થિઃ કલાપકમ્ ।)

અર્થઃ—જ્યાં વેધ આદિક દોષ નથી, જ્યાં ઘરનું આશુ
 દળ નહું હોય, જ્યાં પેસવાં નીકળવાનાં બારણું ઘણું નથી,
 જ્યાં ધાન્યનો સંગ્રહ ઘણો છે. જ્યાં દેવતા પૂજાય છે. જ્યાં
 પરોણા આદિકનું આદરમાન ઘણું થાય છે, જ્યાં રાતા પડદા
 હોય છે, જ્યાં ચોખ્ખાઈ ઘણી હોય છે, જ્યાં નડાના મોટાની
 મર્યાદા બરાબર સચવાય છે, જ્યાં સૂર્યના કિરણ છાપરામાંથી
 અંદર પેસતા નથી, જ્યાં દીવો સારી પેઠે પ્રકાશ આપે છે, જ્યાં
 રોગી લોકોનું રક્ષણ થાય છે, અને જ્યાં થાકેલા માણસને
 આરામ મળે છે, તે ઘરમાં લક્ષ્મી વાસ કરે. (૯૬) (૯૭)
 (૯૮) (૯૯)

ચન્દનાદર્શદ્યેષોક્ષ-વ્યજનાસનવાજિનઃ ॥

શઙ્ખાજ્યદયિતામ્રાણિ, મતાનિ ગૃહદ્વયે ॥૧૦૦॥

અર્થ —અદન, દર્પણ, સુવર્ણ, બળદ, વ્યજન (ચામર પગો ઇત્યાદિ), આમન, અશ્વ, ગાય ધૂત, દહીં, તથા ત્રાણાના પાત્ર એટલી વસ્તુ ધરની વૃદ્ધિને અર્થ છે, (૧૦૦)

દયન્તિસામ્યા દર્શં યાચ-મમ્પુત્યાનમવાસનમ્ ॥

શક્તયા યોજનતામ્બલ, ગત્રાવપિ ગૃહગતે ॥૧૦૧॥

અર્થ —આપણે યેઠ આપણો વેગી કદાચ આવે, તો પણ તેને શાત દિધી ભેવો, મીઠી વાણીથી બોલાવવો, સામુ જલુ, તેને આમન આપવું અને શક્તિ પ્રમાણે ભોજન તથા તાબૂલ (પાનખીરુ) આપવા (૧૦૧)

મર્વાધાર્મિકપાશ્વળ્લી-પતિસ્તેનરોગિણામ્ ॥

ક્રોધનાન્ત્યજદ્વેષાનાં, ગુન્ધતલ્યગંવરિણામ્ ॥૧૦૨॥

સ્વામિવશ્ચકરુગ્રાના-મૃપિમ્નીવાલ્પાતિનામ્ ॥

ડન્ડનાત્મદિત ધીમાન્, માતિવેદિમકતા ત્યજેત્ ॥૧૦૩॥

અર્થ —પાતાનુ કલ્યાણુ ઇચ્છનાર પુરૂષે મૂર્ખ, અધર્મી, પાખડી, મહામાતકથી બ્રાહ્મ થએલા, ચોર, રોગી, ક્રોધી, આગ્રહ, અરુદાસી, શુરૂની સ્ત્રીની માથે સંલોગ કરનાર, વેરી પોતાના શેઠને હમનાર, લોભી અને કપિની, સ્ત્રીની તથા બાળકની હન્યા કરનાર એટલા લોકોની પટોથમાં ન રહેવું. (૧૦૨) (૧૦૩)

દુઃસ્વં દેવકુળમષ્ટે, ગૃહે દાનિશ્વરુપ્યથે ॥

ધર્તમાલ્યગૃગમ્યાન્તે, મ્યાતા મૃતધનધર્મ્યા ॥૧૦૪॥

અર્થ —યેઠ દેવમંદિરની પાને હોય તો દુઃખ થાય,

ઝાટામાં હોય તો હાનિ થાય, ધુતારાના તથા મંત્રીના સમીપ
ભાગમાં હોય તો પુત્રનો અને ધનનો નાશ (બગાડ, નુકસાન)
થાય. (૧૦૪)

સ્વર્જરી દાડિર્મી રમ્મા, કર્કન્ધૂર્જીજપૂરિકા ॥

ઉત્પન્નન્તે ગ્રંથે યત્ર, તન્નિક્રન્તતિ મૂલતઃ ॥૧૦૫॥

અર્થ:—બજૂરી, દાડમી, ટેળ, બોરડી અને બિલ્લેરી
એટલાં વૃક્ષ જ્યાં ઉગે, તે ઘરનો સમૂળ નાશ થાય. (૧૦૫)

પ્લુલાદ્રોગોદયં વિદ્યા-દશ્વથાન્તુ સદા ભયય્ ॥

નૃપપીઠાં વટાદ્રે ત્રવ્યાધિનુદુમ્વરાત્ ॥ ૧૦૬ ॥

અર્થ:—ઘરમાં પીંપરનું વૃક્ષ હોય તો રોગ થાય, પીંપ-
જો હોય તો સદાકાળ ભય ઉત્પન્ન થાય, વડ હોય તો રાજાનો
ઉપદ્રવ થાય, અને ઉંબર હોય તો નેત્રનો વ્યાધિ થાય. (૧૦૬)

લક્ષ્મીનાશકરઃ ક્ષીરી, કણ્ટકી શત્રુભીષદઃ ॥

અપત્યગ્નઃ ફલી તસ્મા-દેપાં કાષ્ટમપિ ત્યજેત્ ॥૧૦૭॥

અર્થ:—ક્ષીરી (જેમાંથી દૂધ નીકળે એવા આંકડા વિગેરે)
વૃક્ષ ઘરમાં હોય તો લક્ષ્મીનો નાશ થાય, કંટકી (કંટાર) વૃક્ષ હોય
તો શત્રુનો ભય ઉપજાવે, ફલવાળું વૃક્ષ હોય તો સંતતિનો નાશ
થાય, માટે એ વૃક્ષનું લાકડું પણ ન લેવું. (૧૦૭)

કશ્ચિદૂચે પુરો ભાગે, વટઃ શ્લેષ્મ્ય ઉદુમ્વરઃ ॥

દક્ષિણે પશ્ચિમે ભાગે-ઽશ્વત્યઃ પ્લક્ષસ્ત્રોત્તરે ॥૧૦૮॥

અર્થ:—કોઈએ કહ્યું છે કે, ઘરના આગળના દક્ષિણ ભા-
ગમાં ઉંબર, પશ્ચિમ ભાગમાં પીંપજો અને ઉત્તર ભાગમાં
પીંપર સારા લાગુ પડે. (૧૦૮)

(અથ શિષ્યાવોધક્રમઃ ।)

ગુરુઃ સોમશ્ચ સૌમ્યશ્ચ, શ્રેષ્ઠોઽનિષ્ઠો કુજાસિતૌ ॥

વિચારમ્ભે શ્રુતૈઃ પ્રોક્તો, મત્યમૌ મૃગુભાસ્કરૌ ॥ ૧૦૯ ॥

અર્થ — (હવે શિષ્યને જોધ રી ગીતે કરવો તે કહેછે) વિ-
ચારનો આરભ કરવો હોય તો ગુરુ, મોમ અને બુધ એ ત્રણ
વાર શ્રેષ્ઠ, શુક અને રતિ મધ્યમ તથા મગજ અને શનિ
અનિષ્ઠ (નહારા) લાગુવા (૧૦૯)

પૂર્વાત્રયં શ્રુતિદ્વન્દ્વ, વિચાર્દૌ મૂળમશ્વિની ॥

હસ્તઃ શતભિષક્ સ્વાતિ-ચિત્રા ચ મૃગશ્ચરમ્ ॥ ૧૧૦ ॥

અર્થ — વિધાનો આરભ કરવો હોય તો પૂર્વા ક્ષાત્રિણી,
પૂર્વાષાઢા, પૂર્વા ભાદ્રપદા, શ્રવણ, ધનિષ્ઠા, મૂળ, અશ્વિની,
હસ્ત, શતતાશકા, સ્વાતિ, ચિત્રા, મૃગ, આર્દ્રા, પુનર્વસુ, પુષ્ય
અને અશ્વિણ એટલા નદાત્ર શ્રેષ્ઠ લાગુવા (૧૧૦)

અશ્રુદ્ધઃ જાત્રમર્મજ્ઞોઽનાન્સ્યો વસન્તેઽવિતઃ

હસ્તસિદ્ધસ્તથા વાગ્મી, કલ્પચાર્યો મતઃ સત્તામ્ ॥ ૧૧૧ ॥

અર્થ — કોષ વિનાનો, રાત્રના રત્નોનો લાગુ, આજઞચી
અને વ્યસતચી દ્વર રહેલો, હસ્તક્રિયામાં જલ પામેલો, અને
શુભિચી વચન જોવારો એવો કળાચાર્ય ગતપુરુષોને માન્ય
॥ (૧૧૧)

પિતૃગ્યાર્મદશર્મવ, કલ્પચાર્યસ્ય વાગ્મક. ॥

વસન્તઃશ્વમદૂર્વ-મર્ષણીયઃ કૃતોત્સમ્ ॥ ૧૧૨ ॥

અર્થ — માતાપીતાને પોતાના બાળકને પાશ્વરુ વર્ષ
બેઠા પછી ઉત્પવ કરી એવા કળાચાર્યને હાથે-આપવો
(૧૧૨)

દૃષ્ટાનામપ્પત્યાનાં, વરં ભવતુ મૂર્ધ્વતા ॥

નાસ્તિકાદુષ્ટચિત્તાન્ન, વિદ્યા વિદ્યાગુરોર્ન તુ ॥૧૧૩॥

અર્થ:—પોતાના વહાલા પુત્ર મૂર્ખ રહી જાય તે આર્થ. પણ તેમને નાસ્તિક અને દુષ્ટ ચિત્તવાળા ગુરૂ પાસે વિદ્યાશ્રદ્ધા કરાવવું ઠીક નથી. (૧૧૩)

વિદ્યયાપિ તયા કિં તુ, યા નાસ્તિક્યાદિદૂષિતા ॥

સ્વર્ણેનાપિ દિ કિં તેન, કર્ણચ્છેદો મહેદ્યતઃ ॥૧૧૪॥

અર્થ:—નાસ્તિકપણું વિગેરે દોષોથી ભરેલી વિદ્યાનું શું પ્રયોજન ? જેથી કાન કપાઈ જાય, તે સુવર્ણ હોય તો પણ શા કામનું ? (૧૧૪)

આચાર્યો મધુરૈર્વાક્યૈઃ, સામિપ્રાયવિલોકનૈઃ ॥

શિષ્યં શિક્ષેત નિર્લજ્જં, ન કુર્યાદ્વ્યતહાઢનૈઃ ॥ ૧૧૫ ॥

અર્થ:—ગુરૂએ મીઠા વચનથી તેના મનના અભિપ્રાય સૂચવનારી દૃષ્ટિથી શિષ્યને શિક્ષણ દેવું. પણ નિરંતર અંધન તથા તાડન કરીને તેમને નિર્લજ્જ (શરમ વિનાના) ન કરવા. (૧૧૫)

મસ્તકે હૃદયે વાપિ, પ્રાજ્ઞશ્ચાત્રં ન તાઢયેત્ ॥

અધોભાગે શરીરસ્ય, મુનઃ કિં ચન શિક્ષયેત્ ॥ ૧૧૬ ॥

અર્થ:—જાણુ ગુરૂએ શિષ્યના મસ્તકમાં અથવા હૃદયમાં (છાતીમાં) મારવું નહીં. પણ અવસર પડે શરીરના નીચલા ભાગમાં થોડી શિક્ષા કરવી. (૧૧૬)

કૃતજ્ઞાઃ શુચયઃ પ્રાજ્ઞાઃ, કલ્પા દ્રોહવિવાર્જિતાઃ ॥

શુભિસ્ત્યક્તશાઙ્ગાન્ન, પાઠ્યાઃ શિષ્યા વિત્રેકિભિઃ ॥૧૧૭॥

અર્થ — કહેલા ઉપકારના લાભનારા, પવિત્ર, બુદ્ધિશાળી,
અભ્યાસ કરવા નમર્ય, અને મત્સર તથા કપટ વિનાના એવા
શિષ્યોને વિવેકી શુર્યો લાભાવવા (૧૧૭)

મયુરાહારિણા પ્રાયો, વ્રહ્મવ્રતવિધાયિના ॥

દયાદાનાદિશીલ્પિન, કૌતુકાભોક્તર્જિના ॥૧૧૮॥

કપર્દમુસ્વક્રોડા-વિનોદપારિહારિણા ॥

વિનીતેન ચ શિષ્યેણ, પઠતા ભાવ્યમન્વહમ્ ॥૧૧૯॥યુગ્મમ્ ॥

અર્થ — શુર પાસે લાભનાર શિષ્યે પ્રાયે મધુર આહાર
કરવો, બ્રહ્મવ્રત પાળવું, દયા કરવી, દાન આદિક આપવું,
કૌતુક જેવા નહીં, કોડી, પાનાં આદિકથી રમવું નહીં, મસ્કરી
કરવી નહીં, અને નિરતર શુરનો વિનય માનવવો (૧૧૮)
(૧૧૯)

ગુરુવ્રવિનયો ધર્મ, વિદ્રેષઃ સ્વગુર્ણમદઃ ॥

ગુણિષુ દ્વેષ દત્તેતાઃ, કાલક્રુદ્ધઃ સ્પૃતાઃ ॥૧૨૦॥

અર્થ — શુરને વિષે અવિનય, ધર્મ ઉપર દ્વેષ, પોતાના
શુષ્ણનો અહ કાર અને શુષ્ણી જનનો દ્વેષ એટલા પાના કાળ
ક્રુદ્ધ વિષેના છાટા સગ્ગા મમજવાં (૧૨૦)

કળાચાર્યસ્ય ચામસ્ર, પાઠકો દિતમાચરેત્ ॥

નિ.ગ્રેષમપિ ચામુર્ધ્વ, ત્વય ત્વય નિરેદ્યેન્ ॥ ૧૨૧ ॥

અર્થ — શિષ્યે પોતાના કળાચાર્યનું નિરતર હિત ચિત્ત
વધુ તથા પોતાને જે જે વસ્તુ મળે તે ગર્વ તેને (કળાચાર્યને)
આપવી (૧૨૧)

ગુરોઃ સનગગ્રામાં, દદાતિ યદિ મેદિર્નામ્ ॥

તથાપિ ન ધવત્યેવ, કદાચિદનૃણઃ પુમાન્ ॥૧૨૨॥

અર્થ:—શિષ્ય કદાચ પોતાના ગુરુને જો આમ નગર સહિત પૃથ્વી આપે, તોપણ તે ગુરુના કણમાંથી મુક્ત થાય નહીં (૧૨૨)

ઉપાધ્યાયમુપાસીત, તદનુદ્ધતવેપમૃન્ ॥

વિના પૂજ્યપદં પૂજ્ય-નામ નૈવ મુચીર્વેદેત્ ॥ ૧૨૩ ॥

અર્થ:—માટે બુદ્ધિશાળી શિષ્યે ઉન્નત (બહુ દીપ્તો) એવ (પોશાક) ન પહેરતાં ઉપાધ્યાયની સેવા કરવી. પોતાના પૂજ્ય ગુરુનું “પૂજ્ય” એવું પદ મૂકીને મૂળનામ ન બોલવું. અર્થાત્ “પુજ્ય” એવા નામથી ગુરુને બોલાવવા. (૧૨૩)

(ઉક્તં ચ) “આત્મનશ્ચ ગુરોશ્ચૈવ, માર્યાયાઃ કૃપણસ્ય ચ ॥

ક્ષીયતે વિક્તમાયુશ્ચ, મૂલનામાનુકીર્તનાત્ ॥૧૨૪॥”

અર્થ:—કહ્યું છે કે,—‘ગુરુપે પોતાનું, પોતાના ગુરુનું, પોતાની સ્ત્રીનું તથા કૃપણનું મૂળ નામ ન લેવું. કારણ કે, તેથી ધનનો અને આયુષ્યનો હાથ થાય છે.’ (૧૨૪)

ચતુર્દશીકુહૂરાકા-પ્રમીષુ ન પટેન્નરઃ ॥

મૃતકેઽપિ તથા રાહુ-ગ્રહણે ચન્દ્રસૂર્યયોઃ ॥ ૧૨૫ ॥

અર્થ—ચતુર્દશીએ, અમાવાસ્યાએ, પૂર્ણિમાએ, અષ્ટમીએ, મરણ સૂતકમાં તથા ચન્દ્રસૂર્યનાં ગ્રહણને વખતે ભણવું નહીં (૧૨૫)

તથોલ્કાપાતનિર્વાત-ભૂમિ કમ્પેષુ ગર્જિતે ॥

પશ્ચત્ત્વં ચ પ્રયાતાનાં, વન્વૃનાં પ્રેતકર્માણિ ॥૧૨૬॥

અકાલવિયુતિ અષ્ટ-મલિનામેઝસનિઝૌ ॥

શ્મશાને ગવગન્ધે વા, નાર્ધાતાત્માનિ ચાશુર્ચૌ ॥૧૨૭॥

અર્થ — તેમજ ઉલ્કા (અગ્નિની જ્વાળા સરખો અળક નાશ તારો) આકાશમાથી પડે છતે, તોફાની પવન વાતે છતે, ભૂમિક ૫ (ધરતી ૬૫) થએ છતે, મેઘની ગર્જના થએ છતે, મરી ગએલા પોતાના સગા અભધીના પ્રેતકર્મ આત્મા હોય ત્યારે, અકાળે (આર્દ્રા નક્ષત્રથી પહેલા અને હસ્તા નક્ષત્ર ઉતર્યા પછી) વીજળી થાય તો, આચારથી ભ્રષ્ટ થએલા મલિન અને અપવિત્ર એવા લોકો પાસે, શ્મશાનમા શબની દુર્ગંધ આવતી હોય એવા સ્થાનકે અને પોતાનું શરીર અપવિત્ર હોય ત્યારે ન લાગુ (૧૨૬) (૧૨૭)

નાત્યુદ્ધૈર્નાતિર્નૈર્ચૈશ્વ, નાનેકાગ્રમનાસ્તથા ॥

ન વિન્નિઞ્નપદ ચૈવ, નાસ્પષ્ટ પાઠકઃ પઠેત્ ॥૧૨૮॥

અર્થ — વિદ્યાર્થિએ બહુજ ઘાટો પાડીને, બહુજ ધીમે, મન ખીળે રાખીને, પદ વચ્ચે તટી જાય, અને સ્પષ્ટ ઉચ્ચાર ન થાય તેવી રીતે ન લાગુ (૧૨૮)

શાસ્ત્રાનુરક્તિરારોગ્ય, વિનયોદ્યમસુદ્ધયઃ ॥

આન્તરાઃ પચ્ચ વિજ્ઞેયા, ધન્યાના પાઠહેતવઃ ॥૧૨૯॥

અર્થ—૧ શાસ્ત્ર ૮૫૨ અનુરાગ (પ્રીતિ,) ૨ શરીરે વ્યાધિનો અભાવ, ૩ વિનય, ૪ ઉગ્રમ, અને શુદ્ધિ એ પાંચ લાગુવાના અતરંગ કારણ બાળુવા તે જેમને મળે તે વિદ્યાર્થીઓને ધન્ય છે (૧૨૯)

સહાયા ભોજનં વાસ, આચાર્યઃ પુસ્તકં તથા ॥

અમી વાહ્યા અપિ જ્ઞેયાઃ, પન્ન પાણ્ડિત્યહેતવઃ ॥૧૩૦॥

અર્થઃ—સાથે લાણુનારા, ભોજન, વસ્ત્ર, ગુરૂ તથા પુસ્તક.

એ પાંચ લાણુવાનાં બાહ્ય કારણુ બાણુવાં. (૧૩૦)

સંસ્કૃતે પ્રાકૃતે ચૈવ, શૌરસેને ચ માગધે ॥

પૈશાચકેઽપભ્રંશે ચ, લક્ષ્યં લક્ષણમાદરાત્ ॥૧૩૧॥

અર્થઃ—૧ સંસ્કૃત, ૨ પ્રાકૃત, ૩ શૌરસેની, ૪ માગધી,

૫ પૈશાચી અને ૬ અપભ્રંશ એ છ ભાષાઓનાં લક્ષણુ બાણુવાં. (૧૩૧)

કવિત્વહેતુઃ સાહિત્યં, તર્કો વક્તૃત્વકારણમ્ ॥

બુદ્ધિઃપ્રદિકરી નીતિ—સ્તસ્માદભ્યસ્યતે બુદ્ધેઃ ॥૧૩૨॥

અર્થઃ—વિદ્યાર્થી સાહિત્ય શાસ્ત્રના અભ્યાસથી કવિતાની

રચના કરી શકે, તર્કશાસ્ત્રના અભ્યાસથી વક્તા થાય, નીતિ-
શાસ્ત્રના અભ્યાસથી બુદ્ધિ બીલે, માટે કાહ્યા ગુરૂષો એ
શાસ્ત્રોનો સારો અભ્યાસ કરે છે. (૧૩૨)

પાટીગોલકચક્રાણાં, તથૈવ ગ્રહવીજયોઃ ॥

ગણિતં સર્વશાસ્ત્રોઽધ્ય-વ્યાપકં પઠ્યતાં સદા ॥૧૩૩॥

અર્થઃ—પાટી ગણિત, ગોલ ગણિત, ચક્ર ગણિત, ગ્રહ-

ગણિત અને બીજા ગણિત એ પાંચ પ્રકારનું સર્વ શાસ્ત્રોમાં
વ્યાપી રહેલું ગણિત નિરંતર લાણુવું. (૧૩૩)

ધર્મશાસ્ત્રશ્રુતૌ શબ્દ-હ્યલસં यस્ય માનસમ્ ॥

પરમાર્થ સ એવેહ, સમ્યગ્જાનાતિ નાપરઃ ॥૧૩૪॥

અર્થ — પુરુષનું મન નિરતર ધર્મશાસ્ત્ર માલજવાની ઘણી ઇચ્છા ધારણ કરતું હોય, તે પુરુષને પરમાર્થ મારી પેઠે જાણી શકે છે ખીજો કોઈ જાણી શકતો નથી (૧૩૪)

જ્યોતિઃશાસ્ત્રં સમીક્ષ્ય ચ તિસ્કન્યં સિદ્ધિતાદરઃ ॥

મણિત સાંહિતા દોરે—ત્યેત્કન્દ્રય સિદ્ધિઃ ॥૧૩૫॥

અર્થ —ગણિત, મહિતા અને હોરા એ ત્રણ રહેલ જેના કહેવાય છે, એનું જ્યોતિશાસ્ત્ર પણ આદરથી જાણવું (૧૩૫)

પ્રકૃતિ ધેવજ વ્યાધિં, સાત્મ્ય દેહ ચલં વયઃ ॥

કાલ દેગ તથા રક્તિ, વિભવ પ્રતિચારકમ્ ॥૧૩૬॥

વિજાનનુ સર્વદા સમ્યક્, ફલદં લોકયોર્દ્વયોઃ ॥

અભ્યસંદેશક ધીમાન્, યશોધર્મર્થસિદ્ધયે ॥૧૩૭॥

અર્થ —રોગની પ્રકૃતિ, આત્મક, વ્યાધિ, સાત્મ્ય (રોગીને સદવારૂપ વસ્તુની અદર રહેલો એક ગુણ), ગરીર બળ, વય, કાળ, દેશ, જઠરાગ્નિ, વેલવ અને પ્રતિચારક (રોગની માવજત કરનાર), એટલી વસ્તુ બરાબર જાણીને બુદ્ધિગાળી પુરુષે આ લોકમા તથા પરલોકમા માટે ફળ આપનારા વેગક શાસ્ત્રનો યત્ન, ધર્મ અને ધન એ ત્રણેના લાભને અર્થે નિરતર અભ્યાસ કરવો (૧૩૬) (૧૩૭)

કાયવાલ્યગ્રહોર્દ્ધાન્ન-શ્લ્યદંટ્રાજરાવિષઃ ॥

પતૈરણભિરક્લેશ, વૈષ્ણવ ગયાતમષ્ટધા ॥૧૩૮॥

અર્થ —૧ કાયચિકિત્સા, ૨ જાલચિકિત્સા, ૩ ભૂતચિકિત્સા, ૪ ઉર્ધ્વાગચિકિત્સા, ૫ શલ્યચિકિત્સા, ૬ વિપચિકિ-

ત્સા, ૭ રસાયન અને ૮ વાજકરણ વૈદ્યકશાસ્ત્રના એ આઠ અંગ (ભેદ) પ્રસિદ્ધ છે. (૧૩૮)

જઠરસ્યાનલઃ કાયો, વાલો વાલચિકિત્સિતમ્ ॥

શલ્યં ભૂતાદિવિત્રાસ, ઉર્દ્ધ્વાઙ્ગમૂર્ધ્વશોધનમ્ ॥૧૩૯॥

શલ્યં લોહાદિ દંદ્રાદે-ર્જરાપિ ચ રસાયનમ્ ॥

ઘ્રપઃ પોષઃ શરીરસ્ય, વ્યાખ્યાષ્ટાઙ્ગસ્ય લેશતઃ ॥૧૪૦॥

અર્થઃ—કાય એટલે જઠરાગ્નિ તેના વિકારથી નિષ્પન્નતા રોગોને મટાડવા તે કાયચિકિત્સા, બાળકને થતા રોગોને મટાડવા તે બાલચિકિત્સા, ભૂત, પિશાચ વિગેરેનો ઉપદ્રવ મટાડવો તે ભૂતચિકિત્સા, હડપચીથી ઉપર આવેલા મુખ, નાસિકા, કર્ણ, નેત્ર, મસ્તક વિગેરેના રોગોના ઉપાય કરવા તે ઉર્ધ્વાંગ ચિકિત્સા, શલ્ય એટલે બાણની આણી વિગેરે શરીરમાં પેહું હોય તેને બહાર કાઢવાના ઉપાય કરવા તે શલ્યચિકિત્સા, સર્પાદિકના વિષના (ઝેરના) ઉપચાર કરવા તે વિષચિકિત્સા, વૃદ્ધાવસ્થાને અટકાવવાનો તથા યુવાવસ્થા વધારે ટકી રાખવાનો જે ઉપાય તે રસાયન અને જેથી સ્ત્રી સંલોગ યથેચ્છ કરાય એવી શક્તિ શરીરમાં લાવવાના જે ઉપાય તે વાજકરણ કહેવાય છે આ રીતે ઉપર કહેલા આઠ અંગની સંલેપમાં બ્યાખ્યા કહી. (૧૩૯) (૧૪૦)

ચિત્રાક્ષરકલાભ્યાસો, લક્ષણં ચ ગજાશ્વયોઃ ॥

ગવાદીનાં ચ વિજ્ઞેયાં, વિદ્વદ્ગોષ્ઠીં વિવિક્ષુણા ॥૧૪૧॥

અર્થઃ—વિદ્વાન્ લોકોની સભામાં પ્રવેશ કરવાની ઇચ્છા કરનારે ચિત્રકળા (ચિત્રામણની કળા) અને લેખનકળા (લ-

ખવાની કળા) એમનો અવશ્ય અભ્યાસ કરવો તથા અશ્વના (ધોડાના), ગજના (હાથીના), તથા ગાય, ગજદ વિગેરેના લક્ષણ પશુ જાણવા (૧૪૧)

સામુદ્રિકસ્ય રત્નસ્ય, સ્વપ્નસ્ય શકુનસ્ય ચ ॥

મેત્રમાલોપદેશસ્ય, સર્વાદ્વિસ્ફુરણસ્ય ચ ॥^૧ ૪૨॥

તથૈય ચાદ્વિદ્યાયાઃ, શાસ્ત્રાણિ નિશ્ચિલાન્યપિ ॥

જ્ઞાતવ્યાનિ યુધૈઃ સસ્યન્, રાજ્ઞઙ્ગિઃ કર્તિર્તિમાત્મનઃ ॥^૧ ૪૩॥

અર્થ — પોતાના યશની વાછા કરનાર જાણુ પુરૂષોએ
૧ સામુદ્રિક શાસ્ત્ર, ૨ રત્નપરીક્ષાશાસ્ત્ર, ૩ સ્વપ્નશાસ્ત્ર ૪
શકુનશાસ્ત્ર, ૫ વૃદ્ધિશાસ્ત્ર, ૬ અગસ્ત્યુરપુશ્ય અને ૭ ગા-
નીચાશાસ્ત્ર એમનું પૂર્ણ જ્ઞાન અવશ્ય મેળવવું (૧૪૨) (૧૪૩)

જાત્ર પ્રત્સ્યાયન જ્ઞેય, ન પ્રકાશ્ય યતસ્તતઃ ॥

જ્ઞેય ભરતજાત્ર ચ, નાચૈય ધીમતા પુનઃ ॥^૧ ૪૪॥

અર્થ — જીવિદ્યાળી પુરૂષે કામશાસ્ત્રનું જ્ઞાન મેળવવું,
પશુ જ્યા ત્યા તેનો ફેલાવ ન કરવો તેમજ નાટકશાસ્ત્ર
(નાટક વિગેરેનું શાસ્ત્ર) અવશ્ય જાણવું, પણ પોતે નાટકનો
ધધો ન કરવો (૧૪૪)

ગુરોરતિશય જ્ઞાત્વા, પિન્ડશુદ્ધિં તથાત્મનઃ ॥

ઋમઘ્રાન્પરિત્યજ્ય, ગ્રાસો મન્ત્રક્રમો દિતઃ ॥^૧ ૪૫॥

અર્થ — વિવેકી પુરૂષે શુદ્ધિ અતિશય ડેવો છે, અને
પોતાના શરીરની શુદ્ધિ ડેવી છે, એ બે વાતનો વિચાર કરીને
હિતકામી મન્ત્ર શુદ્ધ પાનેથી ગ્રહણ કરવા પશુ જાણુ,
માઘુ કરનારા કૂર મંત્રોનું તો નામપણુ ન લેવું (૧૪૫)

(અથ વિપવિચારઃ)

સત્યામપિ વિપાજાયાં, ન ભક્ષ્યંમ્યાવરં વિપમ્ ॥

પાણિભ્યાં પન્નગાદીંશ્ચ, સ્પૃશેનૈવ જિર્જીવિષુઃ ॥૧૪૬॥

અર્થઃ—જીવવાની ઇચ્છા કરનાર પુરૂષોએ વિષની આજ્ઞા છતાં પણ સ્થાવરવિષ^૧ લક્ષણુ ન કરવું. તથા જંગમ વિષને ધારણુ કરનાર સર્પ વિગેરે જાનવરોને પણ હાથે સ્પર્શ ન કરવો. (૧૪૬)

જાઙ્ગલ્યાઃ કુરુકુલાયા-સ્તોત્તલાયા ગરુત્મતઃ ॥

વિપાર્તસ્ય જનસ્યાસ્ય, કઃ પરિત્રાયકઃ પરઃ ॥૧૪૭॥

અર્થઃ—ઝેરથી પીડાતા મનુષ્યને જાંગુલી, કુરુકુલા, તોતલા અને ગરુડ એ ચાર વિના કોણુ ખીન્ને રક્ષણુ કરનાર છે ? (૧૪૭)

આદિષ્ઠાઃ કોપિતા મત્તાઃ, ક્ષુધિતાઃ પુર્વવૈરિણઃ ॥

દન્દશૂકા દશન્ત્યન્યાન્, પ્રાણિનસ્ત્રાણવર્જિતાન્ ॥૧૪૮॥

અર્થઃ—સર્પો કોઈના આદેશથી, કોપથી, મદોન્મત્ત થવાથી, ભૂખથી તથા પૂર્વ લવના વૈરથી, ઝરોળર પોતાની જાતના ન કરનાર ખીજ પ્રાણિયોને કરડે છે. (૧૪૮)

તે દેવા દેવતાસ્તાશ્ચ, મન્ત્રાસ્તે મન્ત્રપાટકાઃ ॥

અગદા અપિ ધન્યા, યૈસ્ત્રાણં પ્રાણિણાં વિપાત્ ॥૧૪૯॥

અર્થઃ—તે દેવ, તે દેવતાઓ, તે મન્ત્રો, તે માન્ત્રિકો તથા તે ઔષધો પણ ઉત્તમ જાણુવાં, કે જેઓ જીવોને ઝેરથી બચાવી શકે છે. (૧૪૯)

૧:—બચનાગ, ઝેરકુચલો, સોમલ વિગેરે વસ્તુમાં સ્થાવર વિષ અને સર્પ, વીંછી વિગેરે પ્રાણીમાં રહેલું જંગમ વિષ કહેવાય છે.

વિપાર્તસ્યાદ્ધિનઃ પુર્વ, ત્રિમૃશ્ય કાલલક્ષણમ્ ॥

અપરં તજ્જીવિતવ્ય-ચિદ તદનુ મન્ત્રિણઃ ॥ ૧૫૦ ॥

અર્થ —ઝેરથી પીડાયલા માણસનુ કાલલક્ષણ (જે વખતે ઝેર ચઢ્યુ તે વખત કેવો હતો તે) પ્રથમ જોવુ, પછી જીવવાના લક્ષણ જોવા, અને તે પછી માત્રિક લોકોને બોલાવવા (૧૫૦)

વારસ્તિથિર્માદિદગ્ધા, દૂતો મર્માણિ ટપ્ટકઃ ॥

સ્થાનં હંમપ્રચારાગ્રાઃ, કલાઃ કાલનિવેદકાઃ ॥૧૫૧॥

અર્થ —વાગ, લિથિ, રાશિ, નક્ષત્ર, દિશા, દશ (૬ખ), ફત (વેદને અથવા માત્રિકને તેડવા જનાર માણુમ), મર્મના સ્થાન, ઝેરથી પીડાતો માણુસ અને હંસપ્રચાર પ્રમુખ ટલાઓ એટલા વાના કાલના લક્ષણ કહેનારા છે (૧૫૧)

(અથ વારાવિચારઃ ।)

મૌમભાસ્કરમન્દાના, દિને સધ્યાદ્વયેઽપિ ચ ॥

સંક્રાન્તિકાલે ટપ્ટથ, સંક્રીહતિ મુરત્તિયા ॥૧૫૨॥

અર્થ —(હવે વારનો વિચાર કહે છે) મ ગળવારે, ગવિવારે અને શનિવારે પ્રભાતકાળે, માઝે અથવા મૂર્ચની મ કાતિને અવસરે જેને સર્પદશ થાય તે મન્ત્ર પામી દેવાગનાઓની આધે કીડા કરે છે (૧૫૨)

(અથ તિથિવિચારઃ ।)

પશ્ચમીપષ્ટિકાષ્ટમ્યો, નવર્મા ચ ચતુર્દશી ॥

અમાત્રાસ્યાપ્યવસ્ય ય્યા-દપ્તાના મૃતિદેતવે ॥૧૫૩॥

અર્થ —(હવે તિથિનો વિચાર કહે છે) પાચમ, છઠ,

આઠમ, નવમ, અને ઐશ્વર્ય અને અમાસ એમાં કોઈ પણ
તિથિએ સર્પદંશ થાય તો તે માણસ અવશ્ય મરણ પામે.
(૧૫૩)

(અથ રાશિવિચાર: ।)

મીનચતુષ્થયે કુમ્ભ-વૃષભોઃ કર્કટાજયોઃ ॥

કન્યામિથુનયોઃ સિંહા-લિનોર્મૃગતુલાશ્વયોઃ ॥૧૫૪॥

एकान्तरा द्वितीयाद्या, दग्धाः स्युस्तिथयः क्रमात् ॥

एतद्योगयुते चन्द्रे, दष्टानां जीवशंशयः ॥૧૫૫॥

અર્થ:—(હવે રાશિનો વિચાર કહે છે. મીન અથવા ધન
રાશિમાં ચંદ્ર હોય તો દ્વિતીયા (ખીજ), કુંભ અથવા વૃષભ
રાશિમાં હોય તો ચતુર્થી (ચોથ), કર્ક અથવા મેષ રાશિમાં હોય
તો પછી (છઠ), કન્યા અથવા મિથુન રાશિમાં હોય તો અષ્ટમી
(આઠમ), સિંહ અથવા વૃશ્ચિક રાશિમાં હોય તો દશમી (દસમ)
અને મકર અથવા તુલા રાશિમાં હોય તો દ્વાદશી (બારસ)
દગ્ધ થાય છે. આ રીતે ચંદ્રમાના યોગથી દગ્ધ થએલી
તિથિને દિવસે જેને સર્પદંશ થાય, તે જીવશે કે નહીં તે
વાતનો શક છે. (૧૫૪) (૧૫૫) -

(અથ નક્ષત્રવિચાર: ।)

मूलाश्लेषा मघा पूर्वा-त्रयं भरणीकाश्विनी ॥

कृत्तिकाद्रा विशाखा च, रोहिणी दष्टमृत्युदा ॥૧૫૬॥

અર્થ:—(હવે નક્ષત્રનો વિચાર કહે છે) મૂળ, અશ્લેષા,
મઘા, પૂર્વાશ્વિની, પૂર્વાષાઢા, પૂર્વાભાદ્રપદા, ભરણી, અશ્વિની,
કૃત્તિકા, આર્દ્રા, વિશાખા અને રોહિણી એમાં કોઈપણ નક્ષત્રને
વિષે જેને સર્પદંશ થાય તેનું મરણ નીપજે. (૧૫૬)

(અથ દિગ્વિચારઃ ।)

નૈઋત્યાન્વેયકા યામ્યા, દિગ્ગમિત્તો વિજાય ચ ॥

અન્યાદિરભ્યઃ સપ્રાયાર્ત-દૃષ્ટો જીમ્ત્યસન્નયમ્ ॥૧૮૭॥

અર્થ — (હવે દિશાનો વિચાર કહે છે) નૈઋત્ય ય, આગ્નેય

અને દક્ષિણ એ ત્રણ દિશા મૃદીને બીજી ઠોઈ પણ દિશાથી આવેલા સર્પાદિ જેને હજી કદે, તે માણુમ છવે એમા સ્થાય નથી. (૧૫૭)

(અથ દશવિદાઃ ।)

સપયઃશોણિતા દશા-શ્ચત્વરો યુગપચ્ચદિ ॥

एको वा जोह्वान् सूक्ष्मो, दश आर्त्तसन्निभः ॥ १८८ ॥

दशः काकरदाकारो, रक्तवर्धो सगर्तकः ॥

त्रिरसः ज्यामल'शुष्क', प्राणसारकारकः ॥ १८९ ॥

અર્થ — (હવે કળનો વિચાર કહે છે) જેમાથી પાણી

અને લોહી જુદુ જુદુ ઝરે છે એવા ચાર દશ (કળ) માથે થયા હોય, એક જ દશ જે ને તનાયો, જળના લાભરા મળ્યો અને ઝીણો, કાગડાના પગના સ્વરૂપા ચા રનો, લોહીને ઝરતો અને પાકાયાયો હોય, અથવા ત્રણ રેખાયાયો, કાળો અને સુગંધલો હોય, તો તે અવસ્થા પ્રાણ નાશ કરે (૧૫૮) (૧૫૯)

सत्वर कीटिकासृष्ट, इव येनी च दाहकृत् ॥

कण्डूमान् सविषो ज्ञेयो, दशोऽन्यो निमिष. पुन. ॥ १९० ॥

અર્થ — કીટિકો અટકો માર્યા સરળો, વિધ્યા જેવો,

જળતન તથા ખરજને ઉપજવનારો દશ (કળ) એવાયો અને એવા લલણ ન હોય તો એર વિનાનો જાણવો (૧૬૦)

(અથ દૂતવિચારઃ ।)

તૈલાક્તો મુક્તકેશશ્ચ, સશસ્ત્રઃ પ્રસવલદ્વચાઃ ॥

ઉર્ધ્વાકૃતકરદ્વન્દ્વો, રોગગ્રસ્તો વિદ્વસ્તકઃ ॥૧૬૧॥

રાસમં મદિપં મત્ત-કરમં ચાધિરૂઢવાન્ ॥

અપદ્મારસમાયાતઃ, કાંદિશીકિશ્વલેક્ષણઃ ॥૧૬૨॥

એકવસ્ત્રો વિવસ્ત્રશ્ચ, વૃતાસ્યો જીર્ણચીવરઃ ॥

વાહિનીવિકૃતઃ ક્રુદ્ધો, દૂતો નૂતનજન્મને ॥૧૬૩॥

અર્થઃ—(હવે દૂતનો વિચાર કહે છે.) માથે તેલ ચોખ-

ડી, વાળ છૂટા રાખી, ઉઘાડે માથે અને હાથમાં શસ્ત્ર લઈ આવેલો, લથડતાં વચન બોલતો, બે હાથ ઉંચા કરી આવેલો, રોગી, આકુળ વ્યાકુળ થએલો, ગધેડું, પાડું અથવા ઉંટ ઉપર બેસીને આવેલો, ડરેલો, ચંચળ આંખવાળો, પહેરેલા વસ્ત્ર વિના બીજું વસ્ત્ર ન રાખનારો, વસ્ત્ર વિનાનો, મોડું ઢાંકીને આવેલો, જીર્ણ વસ્ત્ર પહેરનારો, નદી ઉતરવાથી પલબેલો અથવા રીસાએલો એવો દૂત વૈદ્યને અથવા માંત્રિકને તેડવા આવે તો રોગી (ઝેરથી પીડાયેલો માણસ) મરણ પામે. (૧૬૧) (૧૬૨) (૧૬૩)

સ્થિરો મધુર્વાક્ પુષ્પા-ક્ષતપાણિર્દિશિ સ્થિતઃ ॥

એકજાતિવ્રતો દૂતો, ધૂતોરગવિષવ્યથઃ ॥૧૬૪॥

અર્થઃ—સ્થિર, મધુર વચન બોલનારો, હાથમાં પુલ તથા અક્ષત (આખા ચોખા) લઈને આવેલો, કોણ દિશા મૂકી પૂર્વ આદિક ચાર દિશાઓમાંની એક દિશામાં ઉભો રહેલો, રોગીની બાતનો તથા ધર્મનો એવો દૂત વૈદ્યને અથવા

માત્રિકને તેડવા આવે તો ઝેરથી પીડાતા માણસનું ઝેર ઉતરી જાય (૧૬૪)

વિપમઃ શસ્યતે દૂતઃ, સ્ત્રીના તુ સ્ત્રી નરો નૃણામ્ ॥

एव सर्वेषु कार्येषु वर्जनीयो विपर्ययः ॥૧૬૫॥

અર્થ—હત વિપમ અ ખ્યામા એટલે એક, ત્રણ, પાંચ ઇત્યાદિ પરિમાણમા તથા સ્ત્રી તરફથી સ્ત્રી હત અને પુરૂષ હત આવે તો શ્રેષ્ઠ જાણવો અર્થ કાર્યોમા એથી ઉલટો પ્રકાર વર્જવો (૨૬૫)

दृष्टस्य नाम प्रथम, गृहस्तदनु मन्त्रिणः ॥

वक्ति दूतो यमाहूतो; दृष्टोऽयं मुच्यतामिति ॥૧૬૬॥

અર્થ —હતઝેરથી પીડાતા માણસનું નામ પ્રથમ લઈ પાછળથી જો માત્રિકનું નામ લે, તો માત્રિકે જાણવું કે, આ હત “ઝેરથી પીડાતા માણસને યમનુઆમ ત્રણ (તેડું) આંચું છે માટે એને તમે મૂકો ” એમજ મને કહે છે. અર્થાત્ ઝેરથી પીડાતો માણસ જીવે નહીં એમ માત્રિકે સમજવું (૧૬૬)

दूतस्य यदि पादः स्या-दाक्षिणाग्रस्थितस्तदा ॥

पुमान्दृष्टोऽथ वामे तु, स्त्री दृष्टेत्यपि निश्चयः ॥૧૬૭॥

અર્થ —માત્રિકને ઘેર પેમતા હતનો જો જમણા પગ આગળ હોય તો ઝેરથી પીડાતો પુરૂષ છે, અને ડાબા પગ આગળ હોય તો ઝેરથી પીડાતી સ્ત્રી છે એવો નિશ્ચય જાણવો (૧૬૭)

ज्ञानिनोऽग्र स्थितो दूतो, यदङ्गकिमपि स्पृशेत् ॥

तस्मिन्नङ्गेऽस्ति दंशोऽपि, ज्ञानिना ज्ञेयमित्यपि ॥૧૬૮॥

અર્થ:—માંત્રિકની આગળ ઉભો રહેલો હૃત પોતાના શરીરના જે ભાગને સ્પર્શ કરે, તે ભાગને વિષે સર્પાદિકનો દંશ થયો છે, એમ માંત્રિકે જાણવું. (૧૬૮)

અગ્રતઃસ્થે યદા દૂતે, વામા વદતિ નાસિકા ॥

મુસ્વાશિકા તદાદેગ્ન્યા, દંપ્રસ્યાગટકારિણી ॥૧૬૯॥

અર્થ:—આગળ હૃત ઉભો હોય ત્યારે જો ડાબી નાસિક વહેતી રહે, તો ‘ઝેરથી પીડાતા માણસની વ્યથા મટશે’ એવી વચન રૂપ મુખડી હૃતને આપવી. (૧૬૯)

વામાયામેવ નાસાયાં, યદિ વાયુપ્રવેશને ॥

દૂતઃ સમાગતઃ શસ્ય-સ્તદા નૈવાન્યથા પુનઃ ॥ ૧૭૦ ॥

અર્થ:—ડાબી નાસિકામાં સ્વર-વહેતો હોય, ત્યારેજ આવેલો હૃત શ્રેષ્ઠ જાણવો, અન્યથા નહીં. (૧૭૦)

દૂતોક્તવર્ણસંખ્યાઙ્ગો, દ્વિગુણો મહ્યતે ત્રિભિઃ ॥

યદ્યેકઃ શેષતાં યાતિ, તચ્છ્રુમં નાન્યથા પુનઃ ॥૧૭૧॥

અર્થ:—હૃતના મુખમાંથી નીકળેલા અક્ષર જમણા કરી આવેલી સંખ્યાને ત્રણે ભાગવું; બાકી એક રહે તો શુભ જાણવું. નહીં તો નહીં. (૧૭૧)

દૂતે દિગશ્રિતે જીવ-ત્યદ્દિષ્ટો વિદિશુ ન ॥

પ્રશ્નોઽપ્યન્તર્વહે વાયૌ, સતિ દૂતેન ચેત્કૃતઃ ॥૧૭૨॥

અર્થ:—હૃત જો દિશામાં ઉભો હોય તો કંખેલો માણસ જીવે, તેમજ નાસિકા દ્વારે અદર શ્વાસ લેતાં પ્રશ્ન કરે, અને વિદિશામાં ઉભો હોય તો ન જીવે. (૧૭૨)

પ્રથમં કૃત્વા મુખં દૂતૌ, ઘટે સ્વ મીલિત યદિ ॥

તદા દપ્તાદરો યુક્તો, વિપર્યાસે મૃતસ્તુ સઃ ॥૧૭૪॥

અર્થ — હૃત પ્રથમ કરી રહ્યા પછી બે પોતાનુ મુખ બાધ રાખે તો ડખેલા માણસનો આદર કરવો યોગ્ય છે અને ઉધાડુ રાખે તો તે મરણ પા યો, એમ મનજીવુ (૧૭૩)

દૂતસ્ય વદનં રાત્રૌ, યદિ સમ્યગ્ દૃશ્યતે ॥

તદા સ્વસ્ય મુખે જ્ઞેય, મન્ત્રિણા મીલનાદિકમ્ ॥૧૭૫॥

અર્થ — રાત્રિનો સમય હોવાથી બે હૃતનુ મુખ બાધ ન દેખાય, તો માત્રિડ પુરૂષે મુખનુ બાધ થવા પ્રમુખ થિન્હ પોતાના મુખને વિષે જાણવુ (૧૭૪)

(અથ મર્મવિચારઃ ।)

કળે વપસ્થલે લિન્ને. મસ્તકે ચિતુરે ગુટે ॥

નાસાપુટે શ્વોર્મથ્યે. નાભાવોષ્ઠે રતનદ્વયે ॥૧૭૬॥

પાણિપાદતલે શઢ્ઢે. સ્કન્ધે કર્ણેઽલિકે દર્શોઃ ॥

કેશાઃ ક્ષયોર્દષ્ટો. દષ્ટોઽન્તકપુરીજનૈઃ ॥૧૭૭॥

અથ — (હવે દશના (કળના) સ્થાનકનો નિચાર કહે છે) ૧ કહ, ૨ છાતી, ૩ લિંગ, ૪ મસ્તક, ૫ દાઢી, ૬ ગુદા, ૭ નાક, ૮ બે ભમરાનો મધ્યભાગ ૯ નાભિ, ૧૦ હોઠ, ૧૧ બે સ્તન, ૧૨ હાથના તથા પગના તળિયા, ૧૩ આળનો કાન પામેનો ભાગ, ૧૪ બળો, ૧૫ કાન, ૧૬ કપાળ, ૧૭ બન્ને આળો, ૧૮ દેશાન્ત (કપાળનો મથાના

વાળ પાસેના ભાગ) અને ૧૯ કાળ ઓટલા સ્થાનકે જે
માણસને દંશ (ડંખ) થાય તો તે મરણ પામે. (૧૭૫)
(૧૭૬)

(અથ દષ્ટવિચારઃ ।)

ત્રુચ્ચન્તિ મૂર્ધજા यस્ય, દુગ્મધ્યે ધવલો લઘઃ ॥
કણ્ઠગ્રહો ત્રપુઃ શીતં, દિક્કા લામકપોલતા ॥ ૧૭૭ ॥
અગ્નિર્મોહોઽહ્નદાહ્ય, શશિરવ્યોરવીક્ષણમ્ ॥
ગાત્રાણાં કમ્પનં મહ્નો, દશો રક્તે સનિદ્રતા ॥ ૧૭૮ ॥
લાલા વિરૂક્ષતા પાણ્ડુ-રત્વં વાકસાનુનાસિકા ॥
વિપરીતાર્થવીક્ષા ચ, જૃમ્ભા છર્દિઃ સ્વરાન્યતા ॥ ૧૭૯ ॥
હેદે સ્ત્રાવો ન રક્તસ્ય, ન રેસ્યા યદિ તાડને ॥
નાથસ્તાત્સ્તનયોઃ સ્પન્દ-દર્શનં મલકેઽપિ ચ ॥ ૧૮૦ ॥
દશનાકારધારિત્વં, સુવ્યક્તં કર્ણપૃષ્ઠતઃ ॥
નિશ્વાસસ્ય ચ શીતત્વં, કંધરાપ્યતિમહ્નુરા ॥ ૧૮૧ ॥
શોષિતે પયસિ ક્ષિપ્તે, વિસ્તરસ્તૈલવિન્દુવત્ ॥
ઓષ્ઠસંપુટયોર્મુદ્રા, મેદો મેલિતયોરાપિ ॥ ૧૮૨ ॥
જિહ્વાવિલોકનં નૈવ, ન નાસાગ્રનિરીક્ષણમ્ ॥
આત્મીયો વિપયઃ કશ્ચિ-દિન્દ્રિયાણાં ન ગોચરઃ ॥ ૧૮૩ ॥
મુખે શ્વાસો ન નાસાયાં, વિકાશો નેત્રવક્રયોઃ ॥
ચન્દ્રે સૂર્યભ્રમઃ સૂર્યે, ચન્દ્રોઽયમિતિ ચ ભ્રમઃ ॥ ૧૮૪ ॥
કક્ષાયાં રસનાયાં ચ, શ્રવણદ્વિતયેઽપિ ચ ॥
ધ્વાજ્જપાદોપમં નીલં, યદિ ચોત્પદ્યતે સ્ફુટમ્ ॥ ૧૮૫ ॥

દર્પણે સલિલે વાપિ, સ્વમુખસ્યાનિરીક્ષણમ્ ॥

ન દશોઃ પુત્તિકા સ્પષ્ટા, પુરસ્ત્રાંસ્વલોમ્યતે ॥ ૧૮૬ ॥

ગોપઃ કુર્ક્ષો નસ્વાના ચ, માલિન્ય સદસા તથા ॥

સ્વેદઃ શૂલ ગલે ભક્ષ્ય-પ્રવેશો ન મનાગપિ ॥ ૧૮૭ ॥

ઉત્કમ્પઃ પુલકો દન્ત-ઘર્ષણધરણીડનમ્ ॥

સીત્કારસ્તાપજડતે, ક્વજન ચ મુહુર્મુહુઃ ॥ ૧૮૮ ॥

નેત્રયોઃ શુભ્રયોરહિ, રક્તયોઃ સાયમેવ ચ ॥

નીલયોર્નિશિ મૃત્યુઃ સ્યા-ત્તસ્ય દષ્ટસ્ય નિશ્ચિતમ્ ॥ ૧૮૯ ॥

અર્થ — (હવે ઝેરથી પીડાતા માણસના લક્ષણ કહે છે)
 ઝેરથી પીડાતા જે માણસના વાળ તૂટે, આંખમાં અદેહ
 બિંદુ દેખાય, ગળુ ડાઘાય, શરીર ઠંડુ પડે, હીક (હેઠકી)
 આવે, ગાલ કરમાય, ફેર આવે, બેભાન થાય, શરીર સૂકાય,
 અંત્ર અને સૂર્ય છતાં ન દેખાય, શરીર ખુળે અને તૂટે.
 આંખો રાતી થાય નિદ્રા આવે, લાળ ઝરે, નાસિકા ચૂકાય,
 શરીર ફીકું પડે નાકમાંથી વચન નીકળે, વસ્તુ એક હોય
 તો બીજી દેખાય, ગળામાં આવે ઉલટી થાય, સ્વર બદલાઈ
 જાય, શરીર છેલ્લાથી લોહી ન નીકળે, લાકડી મારવાથી
 શરીરે નિશાની ન પડે, જે સ્તનોની નીચે અને ગળામાં
 ઘળકારો ન જણાય, કાનની પાછલ ઢાલના આકાર પ્રગટ
 દેખાય, નિશ્વાસ (નિશાસો) ઠંડો જણાય, ડોક ઠરે નહીં,
 લોહી પાણીમાં નાખવાથી તેલની માફક પસરી જાય, બન્ને
 હોઠ કોઈ ઉઘાડે તો પણ પાછા બીડાઈ જાય, પોતાની જીભને
 તથા નાસિકાના અગ્રભાગને બેઈ ન શકે, પાંચે ઇંદ્રિયો પોતાનો

વિષય જાણી ન શકે, નાસિકાને બદલે મુખમાંથી શ્વાસ નીકળે, આંખો અને મુખ ખુલ્લાં રહે, ચંદ્રમા હોય તો સૂર્ય દેખાય, સૂર્ય હોય તો ચંદ્રમા દેખાય, કાળમાં, છત્રમાં તથા જે કાનમાં કાગડાના પગ સરખું નીલવર્ણ ચિન્હ દેખાય, આરિસામાં તથા જળમાં પોતાનું મુખ ન જુવે, આંખની ધીધીઓ આગળ બેઠેલાને ન દેખાય, ઉદર ઉપર સોજે ચઢે, નળો એકદમ કાળાં પડે, પરસેવો તથા શૂળ ધાય, ગળેથી કાંઈ ખાવાની વસ્તુ ઉતરે નહીં, આંકડી આપે, રામાંચ (રૂંવાટાં) ઉભા રહે, દાંત ઘસે, હોઠ કંરડે, મુખથી સીતકાર શબ્દ કરે, વારંવાર તાપ (બળતરા) અને જડતા (મૂર્છા) થાય, તથા હુંકાર કરે, આંખો દિવસે સફેદ રહે, સંધ્યા સમયે રાતી થાય, અને રાત્રિએ કાળી થાય, એટલાં લક્ષણોમાં કેટલાક અથવા સર્વે લક્ષણો જેને થાય, તે ઝેરથી પીડાતો માણસ અવશ્ય મરણ પામે. (૧૭૭-૧૮૬)

दृष्टस्य देहौ शीताम्बु-धारासिक्तेर्भवेद्यदि ॥

रोमाञ्चः कम्पनाद्यं वा, तदा दृष्टोऽनुगृह्यते ॥ १९० ॥

અર્થ:—ઝેરથી પીડાતા માણસને શરીરે ઠંડા પાણીની ધાર કરવાથી જો તે રામાંચ ઉભા કરે અથવા હાલચાલ કરે તો મંત્ર, ઔષધ પ્રમુખ ઉપચાર કરવા. કારણ કે, તેથી તે સાજો થાય. (૧૯૦)

यो हस्तनखानिर्मुक्तैः, पयोविन्दुभिराहते ॥

निमीलयति नेत्रे स्वे, यमस्तास्मिन् सोद्यमः ॥ १९१ ॥

અર્થ —ઝેરથી પીડાતો જે માણસ, હાથના નખોવડે પાણીના ણિદુ આંખોમા છાટવાથી પોતાની આંખો ખીટ, તે મરણ ન પામે (૧૯૧)

यस्य पाणिनखासक्त-मासेऽन्यनखपीडिते ॥

जायते वेदना तस्य, नान्तको भजतेऽन्तिकम् ॥१०२॥

અર્થ —હાથના નખના મામને ખીલ માણસે પોતાના નખોવડે દળાવાથી જેને વેદના ઉત્પન્ન થાય, તે ઝેરથી પીડાતો માણસ મરણ ન પામે (૧૯)

(अथ स्थानविचारः ।)

इष्टिकाचितिवल्पीका-द्रिद्रुकृपसरित्ते ॥

वृक्षे कुञ्जे श्मशाने च, जीर्णशालगृहान्तरे ॥१०३॥

पापाणसचये दिव्य-देवतायतनादिके ॥

स्थानेष्वेतेषु यो दष्टો, यमस्तस्मिन्दोद्यमः ॥१०४॥

અર્થ —(હવે ૩ ખનો અળવિચાર કહે છે) ઇંટોમા, ચિતામા, રાફડામા, પર્વતમા, આડને તળે, કુવાને અથવા નદીને કાઠે, વેલડીઓથી તથા આડથી ઢકાયલા પ્રદેશમા, સ્મશાનમા, શુર્ય ઘરમા, પથરના ઢગલામા, દેવસ્થાન આદિકમા જેને સર્પદશ થાય, તે અવસ્ય મરણ પામે (૧૯૩) (૧૯૪)

(अथ सर्पजातिविचारः ।)

विषभेदावबुद्धयर्थ, ज्ञेयो नागोदयः पुरा ॥

अज्ञातविषभेदः स-निर्विपीकुरुते कथम् ॥१०५॥

અર્થ:—(હવે સર્પ જાતિનો વિચાર કહે છે.) ઝેરના પ્રકાર સમજવાને અર્થે પ્રથમ નાગનો ઉદય જાણવો જોઈએ કારણ કે, ઝેરના પ્રકાર જાણ્યા પગર ઝેર શી રીતે ઉતારી શકાય ? (૧૯૫)

રવિવારે દ્વિજોઽનન્તો, નાગઃ પદ્મશિરાઃ સિતઃ ॥

વાયવીયવિષો ગ્રામા-ર્ધમાત્રમુદયી भवेत् ॥૧૯૬॥

અર્થ:—વાયુમય વિષને ધારણ કરનારો અને જાતે ગ્રાહ્યજીવોએ અનંત નામે નાગ રવિવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેને મસ્તકે કમળ હોય છે તથા તે શરીરે સફેદ વર્ણનો હોય છે. (૧૯૬)

વામુકિઃ સોમવારે તુ, ક્ષત્રિયઃ શુભવિગ્રહઃ ॥

નીલોત્પલાદ્ધુ આગ્રેય-ગરલોઽમ્યુદયં વ્રજેત્ ॥૧૯૭॥

અર્થ:—અગ્નિમય વિષ ધારણ કરનારો વામુકિ નામે ક્ષત્રિય જાતિનો નાગ સોમવારે શરીરે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેનું શરીર સુંદર હોય છે તથા તેના માથા ઉપર નીલકમળ હોય છે. (૧૯૭)

भवत्यभ्युदयी भौमे, तक्षको विश्वरत्नकः ॥

आरक्तः पार्थिवविषो, वैश्यः स्वस्तिकलाञ्छनः ॥૧૯૮॥

અર્થ:—જગતનું રક્ષણ કરનાર અને પૃથ્વીમય વિષ ધારણ કરનાર તક્ષક નામે વૈશ્ય જાતિનો નાગ મંગળવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેનું શરીર રાતું હોય છે અને તેને મસ્તકે સ્વસ્તિક હોય છે. (૧૯૮)

બુધે લબ્ધોદયઃ શૂદ્રઃ, કમોદોઽજ્ઞનસનિભઃ ॥

સ વારુણવિપો રેસ્વા-ત્રિતયાશ્ચિતમતિમાન ॥૨૦૯॥

અર્થ — જળમય વિપ ધારણ કરનારો કર્કાટક નામે શૂદ્ર જાતિનો નાગ બુધવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે તેના શરીરનો રંગ અજ્ઞનસરખો હોય છે અને તેના શરીર ઉપર ત્રણ રેખા હોય છે (૧૯૬)

ગુરુયારોદયી પદ્માઃ, સ્વર્ણવર્ણસમયુતિઃ ॥

શુદ્રો માહેન્દ્રગરલઃ, પન્નચન્દ્રામ્બિન્દુકઃ ॥૨૧૦॥

અર્થ — માહેન્દ્ર વિપને ધારણ કરનારો પદા નામે શૂદ્ર જાતિનો નાગ શુક્રવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે તેના શરીરનો રંગ સુવર્ણ મરખો હોય છે અને તેના શરીરઉપર ચન્દ્રમા મગ્ગા સફેદ પાંચ બિંદુ હોય છે (૨૦૦)

શુક્રવારોદિતો વૈશ્યો, મહાપદ્મો ઘનન્જરિઃ ॥

લક્ષિતાન્નદ્વિશુલ્લેન, દયાનાં વારુણ વિપમ્ ॥૨૧૧॥

અર્થ — જળમય વિપ ધારણ કરનારો મહાપદા નામે શૂદ્ર જાતિનો નાગ શુક્રવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે તેના શરીરનો રંગ મેઘ મગ્ગો હોય છે અને તેને મન્તકે ત્રિગળ હોય છે (૨૦૧)

ધત્તે શઙ્ખ ગર્નાં શક્તિ-મુદેતુમરુણારુણઃ ॥

ક્ષત્રિયો ગમ્યાગ્રેય, વિષ્ણુદેવા સિતા ગઠે ॥૨૧૨॥

અર્થ — તેજોમય વિપ ધારણ કરતો ગર્બ નામે ક્ષત્રિ-

ય જ્વલિનો નાગ શનિવારે પોણાચાર ઘડી સુધી ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેના શરીરનો રંગ અરુણ સરખો રાતો હોય છે અને તેને ગળે સફેદ રેખા હોય છે. (૨૦૨)

રાહુઃ સ્યાત્કુલિકઃ શ્વેતો, વાયવીયવિપો દ્વિજઃ ॥

સર્વવારેષુ ચામાર્થ-સંધિષ્વસ્યોદયો મતઃ ॥૨૦૩॥

અર્થઃ—વાયુમય વિષ ધારણ કરતો રાહુસરખો કુલિક નામે પ્રાદ્યાણ જ્વલિનો નાગ સ્વ વારને વિષે ઓઘડિયાના સંધિકાળમાં ઝેરનો ઉદય ધારણ કરે છે. તેના શરીરનો રંગ સફેદ હોય છે. (૨૦૩)

અહર્નિશમિયં વેલા, રુચાતા વિષમયી કિલ ॥

તદાદૌ વિષમાગ્રેયં, માહેન્દ્રં મધ્યમે પુનઃ ॥૨૦૪॥

વારુણં પશ્ચિમે ભાગે, તત્રાદ્યમતિદુઃસ્વદમ્ ॥

કપ્ટસાધ્યં પરં સાધ્યં, ભવેત્પરતરં પુનઃ ॥૨૦૫॥

અર્થઃ—રાત્રિનો તથા દિવસનો આ સર્વ સમય વિષમય કહ્યો છે. તેમાં પ્રથમ અગ્નિમય વિષ, મધ્યમાં માહેન્દ્ર વિષ અને પાછલે ભાગે જળમય વિષ હોય છે. તેમાં પહેલું અગ્નિમય વિષ અત્યંત દુઃખ આપનારું, ખીણું માહેન્દ્ર કપ્ટસાધ્ય (મહેનતથી ઉતારી શકાય એવું) અને ત્રીજું જળમય વિષ સુસાધ્ય (સુખેથી ઉતારી શકાય એવું) હોય છે. (૨૦૪) (૨૦૫)

વિષં સાધ્યમિતિ જ્ઞાત-મપિ ચેન્નૈવ નશ્યતિ ॥

તદાપરાન્તો વિજ્ઞેય-સ્તસ્ય સ્થિતિમિતિસ્ત્વિયમ્ ॥૨૦૬॥

અર્થ — સાધ્ય વિષ વાળ્યા છતાં પણ જો દૂર ન થાય, તો અપરાન્ત યોગ વાળવો તેની (અપરાન્તની) સ્થિતિનું જ્ઞાન એ છે (૨૦૬)

રસિરોદિષ્યમાસ્યા, ચંદ્રૌ યામૌ તદા વિષમ્ ॥

ચન્દ્રાશ્લેષાષ્ટમીયોગે, ચતુર્યામાવર્ષૌ વિષમ્ ॥૨૦૭॥

અર્થ — રવિવાર, શકિષ્ઠી નક્ષત્ર તથા અમાવાસ્યા હોય તો એ પહોળું સુધી અને સામવાર, અશ્લેષા નક્ષત્ર તથા અષ્ટમી નિધિ હોય તો ચાર પહોળું સુધી વિષની મર્યાદા હોય છે (૨૦૭)

મૌમાંતરફા નવમી, યામાન્ પદ્ સતત વિષમ્ ॥

તુયે ચતુર્વાતુરાશ્વા, યાચ્ચામાષ્ટક વિષમ્ ॥૨૦૮॥

અર્થ — નવમીને દિવસે મગળવાર તથા ઉત્તરા કાંતુની નક્ષત્ર હોય તો એક મગળી છ પહોળું સુધી અને ચતુર્થાને દિવસે બુધવાર તથા અનુભધા નક્ષત્ર હોય તો આઠ પહોળું સુધી વિષની મર્યાદા હોય છે (૨૦૮)

ગુરૌ ચ પ્રતિપદ્યેષ્ટા, પોઢશ મહરાન્ વિષમ્ ॥

શુક્રે મગ્ન તૃતીયાયાં, દ્વાત્રિશત્પદરાન્ વિષમ્ ॥૨૦૯॥

અર્થ — પ્રતિપદાને દિવસે ગુરુવાર તથા વ્યેષા નક્ષત્ર હોય તો ગોળ પહોળું સુધી અને તૃતીયાને દિવસે શુક્રવાર તથા મગ્ન નક્ષત્ર હોય તો બત્રીસ પહોળું સુધી વિષની મર્યાદા હોય છે (૨૦૯)

મનાત્રિચતુર્દશ્યાં, પદ્દિનાન્ત મદારિષમ્ ॥

કૈમિદિન્યાપાન્તોઽયં, નિધિવાર્ગ્જનો મતઃ ॥૨૧૦॥

અર્થ:—ચતુર્દશીને દિવસે શનિવાર તથા આદ્રે નક્ષત્ર હોય તો છ દિવસ સુધી વિપની મર્યાદા હોય છે. આ રીતે કેટલાક લોકોએ અપરાન્ત યોગ તિથિ, વાર અને નક્ષત્રના યોગથી માન્યો છે. (૨૧૦)

(પ્રકારાન્તરમાહ)

યામાર્ધમાઘમન્યં ચ, શુભારસ્યાદિ નિશ્યપિ ॥

તત્તત્પષ્ટસ્ય શેષં સ્યાન્નિશિ તત્પશ્ચમસ્ય તુ ॥૨૧૧॥

અર્થ:—(હવે બીજો પ્રકાર કહે છે) પહોરનો પહેલો અને છેલ્લો અર્ધ ભાગ દિવસ મંગળી વારના દિવસે તથા રાત્રિ એ પણ જાણવો. દિવસે તે તેના છઠાનો શેષ અને રાત્રિએ પાંચ માનો શેષ હોય છે. (૨૧૧)

સૂર્યાદૌ પદ્ધિવિવર્તે આ-શુભસૌશ્વમં દિને ॥

વિવર્તે પશ્ચમે આવૃ-સોશુમંશ્વ નિશ્યપિ ॥૨૧૨॥

અર્થ:—સૂર્યાદિકને વિષે છઠે વિવર્તે દિવસમાં રવિ, શુક્ર, બુધ, ચંદ્ર, શનિ, શુક્ર અને મંગળ જાણવા તથા રાત્રિએ પાંચમે વિવર્તે રવિ, શુક્ર, ચંદ્ર, શુક્ર, મંગળ, શનિ અને બુધ જાણવા. (૨૧૨)

નાગાર્ધયામકાશ્વૈતે, તેષુ કાલો ભવેચ્છનો ॥

અપરાન્તો ભવેજીવો, જ્ઞેયં યુત્તયાનયા ત્રયમ્ ॥૨૧૩॥

અર્થ:—એ નાગના અર્ધ પ્રહર જાણવા. એમાં શનિને વિષે કાળ, અપરાન્ત અને જીવ એવી રીતે એ ત્રણ વસ્તુ જાણવી. (૨૧૩)

કાલદ્રષ્ટોઽપિ સૂર્યસ્ય, દિનેઽષ્ટાવિશતિં ઘટીઃ ॥

જીવત્યતો મૃતો નો ચે-દલ્લિત કાલમર્મ તત્ ॥૨૧૪॥

અર્થ — રવિવારને દિવસે કાળમર્મનો દશ થાય તો-
પણ માણસ અઠાવીશ ઘડી સુધી જીવે તે ઉપનાત મરણ
ન પામે તો, ગણત્ર મર્મ ત્રીસ ગણ એમ મમજીવુ (૨૧૪)

દિનેઽર્કસ્યાપરાન્તોઽપિ, સ્વાસ્થ્યકૃદ્વિગતિ ઘટીઃ ॥

પશ્ચાદ્દષ્ટાદશ ઘટી-મોહો મયતિ નિશ્ચિતમ ॥૨૧૫॥

અર્થ — ગવિનાર વીગ ઘડી સુધી અપગન્ન હોય છે
તે તેટલી સુદત સુધી જેરથી પીડાતા માણસને સ્વસ્થ ગણે
છે પણ અઠાર ઘડી સુધી નિશ્ચયથી મોહ (બેભાનપણ)
થાય છે (૨૧૫)

સોમાદીના દિનેષ્વેવ, ઘટ્ટઃ કાલાપરાન્તયોઃ ॥

કાલસ્ય પ્રથમાઃ પશ્ચા-દ્વપરાન્તસ્ય ચ વ્રમાત્ર ॥૨૧૬॥

અર્થ — આ ગીતે સોમવાર વિગેરે દિવસને વિષે પણ
કાળની અને અપગન્નની ઘડી જાણવી તેમા પહેલા કાળની
અને પછી અપરાન્તની ઘડી અનુક્રમે હોય છે (૨૧૬)

સોમસ્ય દિવસે કાલ-ત્રેયો વ્યયો જિનૈઃ સમાઃ ॥

સ્વાસ્થ્યાય પોદશ તતો, મોહાયાષ્ટાદશ સ્ફુટઃ ॥૨૧૭॥

અર્થ — સોમવારને દિવસે ગાળની એવીરા, ગાળને
સ્વસ્થ રાખનારી અપરાન્તની મોજ અને તે પછી મોહની
(બેભાનપણની) અઠાર ઘડી પ્રગટ હોય છે (૨૧૭)

મૌમસ્ય દિવસે કાલો, ઘટિકા વિંશતિર્ભવેત્ ॥

ઘટિકા દ્વાદશ સ્વાસ્થ્યં, મોહઃ પદ્વિંશદેવ ચ ॥૨૧૮॥

અર્થઃ—મંગળવારને દિવસે પહેલાં કાળની વીસ, પછી રોગીને સ્વસ્થ રાખનારી અપરાન્તની બાર અને તે પછી મોહની છત્રીસ ઘડી હોય છે. (૨૧૮)

બુધસ્ય દિવસે જ્ઞેયા, ઘટ્યઃ કાલસ્ય પોઢશ ॥

સ્વાસ્થ્યસ્ય ઘટિકા અષ્ટો, મોહઃ સાર્થં દિનં તતઃ ॥૨૧૯॥

અર્થઃ—બુધવારને દિવસે પહેલાં કાળની સોળ, પછી રોગીને સ્વસ્થ રાખનારી અપરાન્તની આઠ ઘડી અને તે પછી દોઢ દિવસ સુધી મોહની મર્યાદા હોય છે. (૨૧૯)

વૃહસ્પતિદિને કાલ--ઘટિકા દ્વાદશ સ્મૃતાઃ ॥

ચતસ્રોઘટિકાઃ સ્વાસ્થ્યે વ્યવહં મોહોઽથ પદ્ ઘટીઃ ॥૨૨૦॥

અર્થઃ—શુક્રવારને દિવસે કાળની બાર અને અપરાન્તની ચાર ઘડી તથા મોહની બે દિવસ અને છ ઘડી સુધી મર્યાદા હોય છે. (૨૨૦)

શુક્રસ્ય દિવસે કાલ--ઘટિકા અષ્ટ નિશ્ચિતાઃ ॥

ઘટ્યોઽષ્ટાવિંશતિઃ સ્વાસ્થ્યં, મોહો દિનચતુષ્ટયમ્ ॥૨૨૧॥

અર્થઃ—શુક્રવારને દિવસે પહેલાં કાળની આઠ ઘડી પછી અપરાન્તની આઠવીસ ઘડી અને તે પછી મોહના ચાર દિવસ હોય છે. (૨૨૧)

શનૈશ્વરદિને કાલો, ઘટિકાનાં ચતુષ્ટયમ્ ॥

ઘટ્યો જિનૈઃ સપ્તાઃ સ્વાસ્થ્યં, મોહ પદ્ સાર્થવાસરાઃ ॥૨૨૨॥

અર્થ—શનિવારને દિવસે કાળની ચાર ઘડી, અપરાન્તની ચોવીસ ઘડી અને મોહના માડા છ દિવસ હોય છે (૨૦૨)

કાલોઽન્ત્યેર્ધ્યે ગ્નેમ્ન્યા, ત્રીર્જીવેઽપગન્તકઃ ॥

કાલ એ મરેન્નિત્ય, સર્વમદ્દરકાન્તરે ॥ ૨૦૩ ॥

અર્થ—શનિવારે છેલ્લો અર્ધ ભાગ કાળનો અને શુક્રવારે છેલ્લી ઘડી અપગન્તની હોય છે તથા નિન્તર મર્યે પહોરને છેડે કાળ હોય છે (૨૦૩)

નાભિદ્રેશે તલે સ્પર્ણો, નિર્ઝગ્નસ્યેવ ગદ્ધિના ॥

દષ્ટસ્ય જાયતે સ્ફોટો, ત્રેયોઽનેનાપરાતકઃ ॥૨૦૪॥

અર્થ—ઝેરથી પીડાતા માણુમના નાભિદ્રેગના નીચલા ભાગ માં લે બળેલા જેવો ફાટલો પ્રગટ દેખાય તો તે લક્ષણ ઉપરથી અપગન્ત લાણુમે (૨૦૪)

અનતો દક્ષિણાદ્દેશી, ગાયુર્ધ્વોર્ધ્વમર્શિકઃ ॥

તક્ષકઃ શ્રવણમ્પર્શી, નામા કર્કોટકઃ સ્પૃશેત્ ॥૨૦૫॥

અર્થ—અનત નામે નાગ જમણી બાજુ જુવે છે, અને વાયુડિ ડાબી જુવે છે, તક્ષક કાનને સ્પર્શ કરે છે, અને કર્કેટક નાકને સ્પર્શ કરે, છે (૨૦૫)

પદ્મ. કણ્ઠતત્ત્વમ્પર્જા, મહાપદ્મ. શ્વસિન્યલ્પ ॥

ગદ્ધો દમ્ભતિ ભૂમંતી, કુન્નિકો ગમ્યોષ્ટકઃ ॥૨૦૬॥

અર્થ—પદ્મનાગ કંઠને સ્પર્શ કરે, મહાપદ્મ ધનો દ્યાગ મૂકે, ગળ બુધિ તરફ જોઈ હમે, અને કુન્નિક ડાબે ભાગે ચેપન કરે (૨૦૬)

વિષં દંશે દ્વિપશ્ચાશ-ન્માત્રાસ્તિષ્ટતતોઽલિકે ॥

નેત્રયોર્વિદને નાડી-પ્વથો ધાતુષુ સપ્તસુ ॥૨૨૭॥

અર્થ:—ઝેર ડંખમાં બાવન માત્ર ^૧ સુધી રહી, પછી કપાળ, આંખ, મુખ નાડીઓ અને સાત ધાતુઓમાં જાય. (૨૨૭)

રસસ્યં કુસ્તં કણ્ઠં, રક્તસ્યં વાઘતાપકૃત્ ॥

માંસસ્યં જનયેચ્છર્દિ, મેદસ્યં હાન્તિ લોચને ॥૨૨૮॥

અર્થ:—ઝેર રસ ધાતુમાં હોય તો કંઠ (ખરજ) ઉત્પન્ન કરે, દોહીમાં હોય તો શરીરના બહારના ભાગે તાપ ઉપજાવે, માંસમાં હોય તો ઉલટી ઉત્પન્ન કરે, અને મેદ ધાતુમાં હોય તો બન્ને આંખને નુકસાન કરે. (૨૨૮)

અસ્થિસ્યં મર્મપીઢાં ચ, મજ્જસ્યં દાહમાન્તરમ્ ॥

શુક્રસ્યમાનયેન્મૃત્યું, વિષં ધાતુક્રમાદહેઃ ॥૨૨૯॥

અર્થ:—ઝેર હાડમાં હોય તો મર્મસ્થાનકે પીડા કરે, મજ્જામાં હોય તો શરીરની અંદર બળતરા ઉત્પન્ન કરે, અને શુક્ર ધાતુમાં હોય તો મૃત્યુ પમાડે. આ રીતે ધાતુના અનુક્રમથી સર્પિતુ^૧ વિષ બાણવું. (૨૨૯)

નિરાકર્તું વિષં શક્યં, પૂર્વે સ્થાનચતુષ્ટયે ॥

અતઃપરમસાધ્યં તુ, કષ્ટં કષ્ટતરં સ્મૃતમ્ ॥૨૩૦॥

અર્થ:—ઉપર કહેલા સ્થાનકોમાં પહેલે ચાર સ્થાનકે

૧:—દીંચણને હથે પ્રદક્ષિણા દઈ એક ચપટી વગાડતાં જોડેલા કાલ લાગે છે, તેને માત્રા કહે છે.

વિષ હોય તો તે દર થઈ ગટે છે અને બાકીના સ્થાનકોમાં હોય તો કષ્ટાધ્ય, અતિશય કષ્ટાધ્ય તથા અસાધ્ય હોય છે (૨૩૦)

આગ્નેયે સ્યાદ્વિપે તાપો, જડના ગરુણેઽધિકા ॥

પ્રત્યાપો ગાયત્રીયે તુ, ત્રિવિધ વિપન્નશ્વણમ્ ॥૨૩૧॥

અર્થ — અગ્નિનું વિષ હોય તો તાપ ઘણો થાય, વરુણનું હોય તો ઝડતા ઘણીવાર થાય, વાયુનું હોય તો પ્રલાપ (બકબકાટ) થાય આ રીતે જોઈના ત્રણ લક્ષણ જાણવા (૨૩૧)

નિશિષ્ઠે મારિચે ચૂર્ણે, દર્શોર્પદિ પયઃ ક્ષરેત્ ॥

તદા જીવતિ દદૃઃ સન્નન્યયા તુ ન જીવતિ ॥૨૩૨॥

અર્થ — ડાખાલ્લા માણુમની બન્ને આખોમાં મરીતું ચૂર્ણ આજવાથી બે પાણી નીકળે તો તે જીવે, નહીં તો નહીં (૨૩૨)

પાદાઙ્ગુષ્ઠેઽથ તત્પૃષ્ઠે, ગુલ્ફે જાનુનિ લિઙ્ગકે ॥

નાભૌ હૃદિ કુચે કણ્ઠે, નાસાદક્ષશ્રુતિષુ શ્રુવોઃ ॥૨૩૩॥

શક્ત્વે મૃદ્ધિં વ્રમાત્તિષ્ઠે-સ્પીયૂપસ્ય કગન્વદમ્ ॥

શુદ્ધપ્રતિપદ. પૂર્વે, કૃષ્ણપક્ષે વિપર્યયાત્ ॥ ૨૩૪ ॥

અર્થ — શુકલ પદના પડવાથી માંડી પૂનઃ મુખી અનુ ક્રમે ૧ પગને અગૂઠે, ૨ પગને કાઠે, ૩ ઘૂટણે, ૪ ઢીંચળે, ૫ લિંગ ઉપર, ૬ નાભિમાં, ૭ હૃદયમાં, ૮ સ્તનમાં, ૯ કંઠમાં, ૧૦ નાકમાં, ૧૧ આંખમાં, ૧૨ કાનમાં, ૧૩ બે શગરમાં, ૧૪

શંખમાં (લમણામાં) તથા મસ્તકમાં અમૃતની કળા રહે છે. તથા કૃષ્ણ (અંધારિયા) પક્ષમાં પડવાથી માંડી અમાસ સુધી ઉલટા કમથી એટલે પડવાને દિવસે મસ્તકે, બીજને દિવસે શંખમાં એ રીતે અમૃતની કળા હોય છે. (૨૩૩) (૨૩૪)

સુધાકલા સ્પરો જીવ-સ્ત્રયાણામેકવાસિતા ॥

પુંસો દક્ષિણભાગે સ્યા-દ્વામભાગે તુ યોષિતઃ ॥૨૩૫॥

અર્થ:—પુરૂષની જમણી બાજુએ અને સ્ત્રીઓની ડાબી બાજુએ અમૃતની કળા, કામ અને લવ એ ત્રણે એકજ ઠેકાણે રહે છે. (૨૩૫)

સુધાસ્થાનાદ્વિષ્ઠાનં, સપ્તમં જ્ઞેયમન્વહમ્ ॥

સુધાવિષ્ઠાનમર્દો, વિષ્ણો વિષટ્ટદિકૃત્ ॥૨૩૬॥

અર્થ:—અમૃતના સ્થાનકથી સુધાનું સ્થાનક નિરંતરે સાતમું બાજુનું. અમૃતના સ્થાનકને મસળવાથી અમૃતની અને વિષના સ્થાનકને મસળવાથી વિષની વૃદ્ધિ થાય છે. (૨૩૬)

સ્ત્રિયોઽપ્યવ્રજ્યં વશ્યાઃ સ્યુઃ, સુધાસ્થાનવિમર્દનાત્ ॥

સ્પૃષ્ઠા વિશેષાદ્વશ્યાય, ગુહ્યપ્રાપ્તા સુધાકલા ॥૨૩૭॥

અર્થ:—અમૃતનું સ્થાનક મસળવાથી સ્ત્રિયો પણ અવશ્ય વશ થાય છે. વિશેષે કરી ગુહ્યસ્થાને અમૃતકળા આવી રોય તો તેને મસળવાથી તુરંત સ્ત્રિયો વશ થાય છે. (૨૩૭)

મૃધામ્યાનેષુ નૈવ સ્યા-ત્કાલદગ્ધોઽપિ મૃત્યવે ॥

વિવસ્થાનેષુ દશસ્તુ, પ્રગસ્તોપ્યાશુ મૃત્યવે ॥૨૩૮॥

અર્થ —અમૃતની કળા બધા વચ્ચે હોય ત્યા કાળગ પનો દગ થાય તોપણ મૃત્યુ ન થાય અને વિવસ્થા સ્થાનક મા વચ્ચે દશ આરો હોય તોપણ તેથી તુરત મૃત્યુ નીપ ને છે (૨૮)

મૃધાકલાસ્થિતાન્ પ્રાણાન્, ધ્યાયન્નાત્મનિ ચાત્મના ॥

નિર્વિપત્ત્વં ત્રયસ્તમ્મ, કાન્તિ પ્રાપ્નોતિ દષ્ટકઃ ॥૨૩૯॥

અર્થ —૩ ખાયલા માણસ અમૃતની કળાને વિષે રહેલા પ્રાણુતુ પોત પોતાના આત્માને વિષે ચિંતન કરે, તો તેથી વિવનો નાશ થાય, તરૂં અવસ્થા ટકી રહે, અને ગરીરે કાલિ આરે (૨૩૯)

જિહ્વાયાસ્તાલુના યોગા-દમૃતમ્ભરણ ચ યત્ ॥

વિલિપ્તસ્તેન દગઃ મ્યા-નિવિપઃ ક્ષણમાત્રતઃ ॥૨૪૦॥

અર્થ —જીભ તાળવે લગાડવાથી જે અમૃત ખરે છે, તેનો ૩ ખ ઉપર લેપ કરે તો ક્ષણ માત્રમા વિવનો નાશ થાય (૨૪૦)

ધૃતાદિ પેય દષ્ટન, મશ્ય ચિર્મટિકાદિરુમ્ ॥

દગે કર્ણમલો રદ્ધચ-ચૂર્ણ ચામિનત્રં ક્ષણાત્ ॥૨૪૧॥

અર્થ —૩ ખાયલા માણસે ઘી પીણ, ચીલડા વિગેરે ભક્ષા કરવા, ૩ ખ ઉપર ખનનો મળ ચાવવા કળીચુનો ભાધવે (૨૪૧)

પુનર્નવાયાઃ શ્વેતાયા, મૃદ્ધીત્વા મૃત્તમમ્મુખિઃ ॥

પિષ્ટં પાનં પ્રદાનવ્યં, વિપાર્તિસ્યાર્તિનાગ્નમ્ ॥૨૪૨॥

અર્થઃ—ઝેરથી પીડાતા માણુએને ઘોળી આટોડીનાં મૂળીયાં પાણીમાં વાટી પાવાં. તેથી ઝેરની પીડા દૂર થાય. (૨૪૨)

ક્લન્દઃ સુદર્શનાયાથ, જલૈઃ પિષ્ટો નિર્પીયતે ॥

અથવા તુલસીમૂલં, નિર્વિપત્તવિવિત્સયા ॥ ૨૪૩ ॥

અર્થઃ—ઝેર દૂર કરવાની ધરણ્યે સુદર્શનનો કંદ અથવા તુલસીનાં મુળિયાં પાણીમાં ઘસીને પીવાય છે. (૨૪૩)

જલપિષ્ટરગસ્ત્સ્ય, પત્રૈર્નસ્યે કૃતે સતિ ॥

રાક્ષસાદિકંદોષેણ, વિષેણ ચ વિમુચ્યતે ॥૨૪૪॥

અર્થઃ—અગધિયાનાં પાન પાણીમાં વાટીને નાકમાં તેનું નસ્ય કરવાથી રાક્ષસાદિકની અને વિષની પીડા દૂર થાય છે. (૨૪૪)

(અથ પદ્મદર્શનવિચારક્રમઃ)

જૈનં મૈમાંસકં વૌદ્ધં, સામ્યં શૈવં ચ નાસ્તિકમ્ ॥

સ્વરવતર્કવિભેદેન, જાનીયાદર્શનાનિ પદ્ ॥૨૪૫॥

અર્થઃ—૧ જૈન, ૨ મીમાંસક, ૩ વૌદ્ધ, ૪ સામ્ય, ૫ શૈવ અને ૬ નાસ્તિક એ છ દર્શનો પોત પોતાના તર્કના ભેદથી થએલાં બાબુવાં. (૨૪૫)

(અથ જૈનયતમ્ ।)

વલભોગોપભોગાના-મુખયોર્દાનલાભયોઃ ॥

નાન્તરાયસ્તથા નિદ્રા, મીરજ્ઞાનં જુગુપ્સનમ્ ॥૨૪૬॥

હાસો રત્યરતી રાગ-દ્વેષાવરિરતિઃ સ્મરઃ ॥

શોકો મિથ્યાત્વમેતેષ્ટા-દગ દોષા ન યસ્ય સઃ ॥૨૪૭॥

જિનો દેવો ગુરુઃ સમ્ય-ક્તચ્છાનોપદેશકઃ ॥

જ્ઞાનદર્શનચારિત્રા-ણ્યપર્ગસ્ય વર્તની ॥૨૪૮॥

અર્થ —તેમા પ્રથમ જેન મત કહે છે ૧ વીર્યાતગય, ૨ ભોગાતરાય, ૩ ઉપભોગાતરાય, ૪ દાનાતરાય અને ૫ લાભાતરાય, એ પાંચ અતગય ૬ નિદ્રા, ૭ ભય, ૮ અજ્ઞાન, ૯ દુઃખ છા, ૧૦ હાસ્ય, ૧૧ રતિ, ૧૨ અરતિ, ૧૩ રાગ, ૧૪ દેવ, ૧૫ અવિરતિ, ૧૬ કામવિકાર, ૧૭ ગોઠ અને ૧૮ મીથ્યાત્ન એ અઠાર દોષ જેનામા નથી તે ભગવાન શ્રીજિન દેવ કહે વાય છે સારી પેઠે તત્ત્વજ્ઞાનનો ઉપદેશ કરે તે શુદ્ધ કહેવાય છે અને જ્ઞાન, દર્શન તથા ચારિત્ર એ ત્રણે મળીને મોક્ષનો ભાગ કહેવાય છે (૨૪૬) (૨૪૭) (૨૪૮)

સ્પાદ્વાદશ મગાણે દ્વે, પ્રત્યક્ષ ચ પરોક્ષકમ્ ॥

નિત્યાનિત્ય જગત્સર્વ, નવ તત્ત્વાનિ સપ્ત વા ॥૨૪૯॥

અર્થ —તેમજ જેનમતમા ‘ સ્પાદસ્તિ, સ્પાપ્તાસ્તિ ’ ઇત્યાદિક ભગવાણે સ્પાદાદ તથા પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ એ બે પ્રમાણે મનાય છે સર્વ જગત્ દ્રવ્યથી નિત્ય અને પર્યાયથી અનિત્ય છે તથા નવ અને (અપેક્ષાથી) માત્ર પાંચ તત્ત્વો છે (૨૪૯)

જીવર્જીર્વાં પુણ્યપાપે, આસ્તયઃ સવરોઽપિ ચ ॥

ઘન્યો નિર્જરણ મુક્તિ-રેષાં વ્યાપ્યાધુનોન્યતે ॥૨૫૦॥

અર્થ:—૧ જીવ, ૨ અજીવ. ૩ પુણ્ય, ૪ પાપ, ૫ આશ્રવ, ૬ સંવર, ૭ બંધ, ૮ નિર્જરા અને ૯ મોક્ષ, એ નવ તત્ત્વ બાણુવાં, એમનાં લક્ષણ કહે છે. (૨૫૦)

ચેતનાલક્ષણો જીવઃ, મ્યાદજીવસ્તદન્યકઃ ॥

સન્કર્મપુદ્ગલાઃ પુણ્યં, પાપં તસ્ય વિપર્યયઃ ॥ ૨૫૧ ॥

આસ્રવઃ કર્મસંવન્ધઃ કર્મરોધસ્તુ સંવરઃ ॥

કર્મણાં વન્ધનાદ્ગન્ધો, નિર્જરા તદ્વિયોજનમ્ ॥ ૨૫૨ ॥

અષ્ટકર્મધ્યાનામોક્ષો, જ્યન્નર્થાવશ્ય કૈશ્વન ॥

પુણ્યસ્ય સંવરે પાપ-મ્યાસ્રવે ક્રિયતે પુનઃ ॥ ૨૫૩ ॥

અર્થ:—૧ જેમાં ચેતના છે તે જીવ, ૨ જેમાં તે (ચેતના) નથી તે અજીવ, ૩ કર્મના શુભ પુર્ણલ તે પુણ્ય, ૪ કર્મના અશુભ પુર્ણલ તે પાપ, ૫ જીવનો કર્મની સાથે સંબંધ થયો તે આશ્રવ, ૬ જીવને બંધન કરનારાં કર્મોને રોકવાં તે સંવર ૭ કર્મનો બંધ થયો તે બંધ, ૮ કર્મને બંધાવણું તે નિર્જરા અને ૯ આઠે કર્મો બંધાવીને ગર્વે કર્મોથી છૂટણું, તે મોક્ષ કહેવાય છે. કેટલાક આચાર્યો પુણ્ય અને સંવર તથા પાપ અને આશ્રવ એ બન્નેને જુદા ગણતા નથી. તેથી તેમને મતે સાતઃ તત્ત્વો થાય છે. (૨૫૧) (૨૫૨) (૨૫૩)

લઙ્ઘ્યાનન્તચતુષ્કસ્ય, લોકાગ્રસ્થસ્ય ચાત્મનઃ ॥

ક્ષીણાષ્ટકર્મણો મુક્તિ-રવ્યાવૃત્તિર્જિનોદિતા ॥ ૨૫૪ ॥

અર્થ:—જેમની જ્ઞાન, દર્શન, વીર્ય અને સ્થિતિ એ ચારે વસ્તુ અનંત (કેઈ કાળે નાશ ન પામનારી) છે, એવા

તથા આઠ કર્મના ક્ષયથી સિદ્ધગિલાએ રહેલા જીવનું જે
પાછું આ સમારંભ ન આવડું તે મુક્તિ છે, એમ શ્રી નિન
ભગવાને કહ્યું છે (૨૫૪)

સરજોદરણા મૈશ્ય-મુજો લુક્તાશ્વિતમૂર્દજાઃ ॥

શ્વેતામ્બરાઃ ક્ષમાશીલા, નિઃસદ્ગા જૈનસાગ્રવઃ ॥૨૫૫॥

અર્થ —ઓઘો ધારણ કરનારા, ગોચરી (લિક્ષા) ઉપર
ચોતાનો નિર્વાહ કરનારા, ઢેશનો લોચ કરનારા, ઘેઈ ઠેકાણે
મમતા, આસક્તિ ન રાખનારા અને ક્ષમાગીળ એવા શ્વેતા-
ગરી જૈનના શાધુ હોય છે (૨૫૫)

લુચ્ચિતાઃ પિન્ચિકાસ્તાઃ, પાણિપાત્રા દિગમ્બરાઃ ॥

ઉર્વાશનાયુદ્ધે દાનુ-દ્વિતીયાઃ સ્યુજિનર્પયઃ ॥૨૫૬॥

અર્થ —ઢેશનો લોચ કરનારા, મોરપીછનો ઓઘો
હાથમા ધારણ કરનારા, નગ્ન રહેનારા અને લિક્ષા આપ-
નારના ઘરેજ હાથ ઉપર લિક્ષા લઈ ત્યાજ ઉભા રહીને
આહાર કરનારા એવા દિગંબરી જૈનના શાધુ હોય છે
(૨૫૬)

મુદ્ગે ન કેવલી ન સ્ત્રી-મોક્ષપ્રાહુદિગમ્બરાઃ ॥

પપામયં મહાન્બેદઃ, સદા શ્વેતામ્બરઃ સદા ॥૨૫૭॥

અર્થ —કેવળી બોજન ન કરે, અને સ્ત્રી મોક્ષે ન
જાય, એમ દિગંબરો કહે ॥ દિગંબરોનો શ્વેતાબરોની
સાથે એજ મોટો સદાકાળનો ભેદ રહ્યો છે (૨૫૭)

(અથ મૈમાંસકમ્ ।)

મીમાંસકા દ્વિયા કર્મે-બ્રહ્મમીમાંસકત્વતઃ ॥

વેદાન્તી મન્યતે બ્રહ્મ, કર્મ મદ્વપ્રમાકરૌ ॥ ૨૫૮ ॥

અર્થઃ—(હવે મીમાંસક મત કહે છે.) મીમાંસક બે પ્રકારના. એક કર્મમીમાંસક અને બીજા બ્રહ્મમીમાંસક કુમારિલ ભટ્ટ અને પ્રભાકર એ કર્મમીમાંસક હોવાથી કર્મ માને છે. અને વેદાંતી લોકો બ્રહ્મમીમાંસક હોવાથી બ્રહ્મ માને છે. (૨૫૮)

પ્રત્યક્ષમનુમાનં ચ, શબ્દશ્ચોપમયા સહ ॥

અર્થાપત્તિરભાવશ્ચ, મદ્વાનાં પદ્મપ્રમાણ્યસૌ ॥ ૨૫૯ ॥

અર્થઃ—ભટ્ટને મતે પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, શબ્દ, ઉપમાન, અર્થાપત્તિ અને અનુપલબ્ધિ એ છ પ્રમાણ છે. (૨૫૯)

પ્રમાકરમતે પર્શ્વૈવ-તાન્યમાવવર્જનાત્ ॥

અદ્વૈતવાદિવેદાન્તિ-પ્રમાણં તુ યથા તથા ॥ ૨૬૦ ॥

અર્થઃ—પ્રભાકરને મતે અનુપલબ્ધિ બાદ કરતાં બાકી રહેલાં પાંચ પ્રમાણ છે. અદ્વૈતવાદી વેદાન્તી પણ એમજ માને છે. (૨૬૦)

સર્વમેતાદિદં બ્રહ્મ, વેદાન્તેઽઽદ્વૈતવાદિનામ્ ॥

આત્મન્યેવ લયો મુક્તિ-વેદાન્તિકમતે મતા ॥ ૨૬૧ ॥

અર્થઃ—અદ્વૈતવાદી વેદાન્તીને મતે એ સર્વ જગત્ બ્રહ્મ છે. તથા પોતાના સ્વરૂપમાં લય પામવો, એજ તેમને મતે મુક્તિ છે. (૨૬૧)

અકુર્મા સપદ્મા, શુદ્રાન્નાદિવિવર્જકઃ ॥

બ્રહ્મસૂત્રી દ્વિજો મદ્દો, મૃદસ્યાશ્રમસંસ્થિતઃ ॥૨૬૨॥

અર્થ — પાપ કર્મને વર્જનારો, લાણુવુ, લાણાવણુ ઇત્યાદિક છ ક્રિયાઓને યથાવિધિ કરનારો, શૂદ્રનુ અન્ન વિગેરે ન લેનારો, જનોઈ ધાગણુ કરનારો એવો પ્રાહ્મણુ જાતનો અહમ્મ્ય ભદ્ર કહેવાય છે (૨૬૨)

ભગવન્નામત્રેયાસ્તુ, દ્વિજા વેદાન્તદર્શને ॥

વિમગેદ્મુજસ્ત્યક્તો-પવીતા બ્રહ્મવાદિનઃ ॥૨૬૩॥

અર્થ — વેદાન્ત મતના પ્રાહ્મણુ મન્યાસીઓ “લગવન” એવા નામથી કહેવાય છે તે જનોઈ પહેરતા નથી, પ્રાણુ ને ઘેર જમે છે, અને એક પ્રાહ્મણુ સદસ્તુ માને છે (૨૬૩)

ચત્વારો ભગવન્નેદાઃ, કુટીચરવહ્નદકૌ ॥

ફસઃ પરમહસથા-વિકોઽમીષુ પઃ પરઃ ॥૨૬૪॥

અર્થ — “લગવન” નામથી કહેવાતા સન્યાસીઓના ચાર પ્રકાર છે એક કુટીચર, બીજા બહ્નદક, ત્રીજા હસ અને ચોથા પરમહસ એ ચારે પ્રકારના એકથી બીજો, બીજાથી ત્રીજો એમ પહેલા કરતા ઉત્તરોત્તર ઓછ ગણાય છે (૨૬૪)

(અથ વૌદ્ધમતમ્ ।)

વૌદ્ધાના સુગતો દેવો, વિશ્વ ચ હ્મણમ્હુરમ્ ॥

આર્યમત્તારયયા તત્ત્વ-ચતુષ્ટયમિદં ક્રમાત્ ॥૨૬૫॥

અર્થ — બૌદ્ધો બુદ્ધને દેવ માને છે, અને જગત્તને

શ્રાણુભંશુર તથા આર્યરુતા નામથી પ્રસિદ્ધ એવાં ચાર તત્ત્વ
માને છે (૨૬૫)

દુઃસ્વમાયતનં ચૈવ, તતઃ સમુદયો મતઃ ॥

માર્ગશ્ચૈતસ્ય ચ વ્યાખ્યા, ક્રમેણ શ્રુતતામતઃ ॥૨૬૬॥

અર્થ:—૧ દુઃખ, ૨ આયતન, ૩ સમુદાય અને માર્ગ
એ ચાર તત્ત્વ જાણવાં હવે એ તત્ત્વોની વ્યાખ્યા અનુક્રમે
સાંભળો. (૨૬૬)

દૂઃખં સંસારિણઃ સ્કન્ધા—સ્તે ચ પञ્ચ પ્રકીર્તિતાઃ ॥

વિજ્ઞાનં વેદના સંજ્ઞા, મંસ્કારો રૂપમેવ ચ ॥૨૬૭॥

અર્થ:—સંસારી જીવનાં રકંધ તે દુઃખ કહેવાય છે.
તે રકંધ પાંચ છે. ૧ વિજ્ઞાનરકંધ, ૨ વેદનારકંધ, ૩ સંજ્ઞા-
રકંધ, ૪ સંસ્કારરકંધ અને ૫ રૂપરકંધ. (૨૬૭)

પञ્ચેન્દ્રિયાણિ શદ્ધાઘ્ના, વિષયાઃ પञ્ચ માનસમ્ ॥

ધર્મ્યાયતનમેતાનિ, દ્વાદશાયતનानિ ચ ॥૨૬૮॥

અર્થ:—૫ પાંચ ઇન્દ્રિયો, ૧૦ શબ્દાદિક પાંચ વિષયો
૧૧ મન અને ૧૨ ધર્મ એ બાર આયતન કહેવાય છે.
(૨૬૮)

રાગાદીનાં ગણો યસ્મા—ત્સમુદેતિ નૃણાં હૃદિ ॥

આત્માત્મીયસ્વભાવાલ્લયઃ, સ સ્યાત્સમુદયઃ પુનઃ ॥૨૬૯॥

અર્થ:—આત્માત્મીય સ્વભાવ એવા નામથી પ્રસિદ્ધ
જે રાગ, દ્વેષ વિગેરે વિકાર મનુષ્યના મનમાં લેગા થાય છે,
તે સમુદાય કહેવાય છે. (૨૬૯)

ક્ષણિકાઃ સર્વસસ્કારા, ડતિ યા વાસના સ્થિરા ॥

સ માર્ગ ડતિ વિજ્ઞેયઃ, સ ચ મોક્ષોઽભિપ્રીયતે ॥૨૭૦॥

અર્થ — સર્વ મસ્કાર ક્ષણિક છે, એવી જે દૃઢ વાસના તેજ માર્ગ બાણુવે અને તેજ મોક્ષ કહેવાય છે (૨૭૦)

પ્રત્યક્ષમનુમાન ચ, પ્રમાણદ્વિતયં પુનઃ ॥

ચતુઃપ્રસ્થાનિકા વૌદ્ધાઃ, રચાતા વૈભાષિકાદયઃ ॥૨૭૧॥

અર્થ — બૌદ્ધો પ્રત્યક્ષ અને અનુમાન એ બે પ્રમાણુ માને છે વૈભાષિક, મૈત્રાતિક, યોગાચાર અને માધ્યમિક એવા બૌદ્ધના ચાર પ્રકાર છે (૨૭૧)

અર્થો જ્ઞાનાન્વિન્તો વૈભા-ષિકેણ ઝદુ મન્યતે ॥

મૈત્રાન્તિકેન પ્રત્યક્ષ-ગ્રાણોર્ઞ્યં ન વહિર્મતઃ ॥૨૭૨॥

અર્થ — વૈભાષિક લોકો જ્ઞાનવિષય વસ્તુમાત્રને માને છે મૈત્રાતિક લોકો કેવળ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી લેવાય એવી ગ્રાણ વસ્તુને માનતા નથી (૨૭૨)

આચારસદ્વિતા બુદ્ધિ-યોગાચારસ્ય સમતા ॥

કેવળા સવિદ સ્વસ્થા, મન્યન્તે માત્રમાઃ પુનઃ ॥૨૭૩॥

અર્થ — યોગાચાર મનવાળાને આચાર સદ્વિતા બુદ્ધિ સમત છે માધ્યામક લોકો કેવળ ચોતાને વિષેજ રહેલી સવિદ (જ્ઞાન) માને છે (૨૭૩)

રાગાદિજ્ઞાનસત્તાન-વાસનોચ્છેદ્રસમવા ॥

ચતુર્ણાપિ વૌદ્ધાના, મુક્તિરેષા પ્રકીર્તિતા ॥૨૭૪॥

અર્થ:—રાગાદિકના જ્ઞાનની સંતાનની વાસનાનો સમૂળ ઉચ્છેદ થવાતી મુક્તિ થાય છે, એ વાત ઉપર કહેલા આરે પ્રકારનાં બોધોને સંમત છે. (૨૭૪)

કૃતિઃ કમण्डलुर्मોण्डયં, ચીરં પૂર્વાહ્નભોજનમ્ ॥

સંધો રક્તામ્બરત્વં ચ, શિશ્રિયે વૌદ્ધમિશ્ચામિઃ ॥૨૭૫॥

અર્થ—આમડું, કમંડલુ, મુંડન, ચીર, બપોરની અંદર જમવું, સંધ, અને રાતાં વસ્ત્ર એટલી વસ્તુ બૌદ્ધ મતના યતિઓએ માનેલી છે. (૨૭૫)

(અથ સાંખ્યમતમ્ ।)

સાંખ્યૈર્દેવઃ શિવઃ કૌશ્વિ-ન્મતો નારાયણઃ પરૈઃ ॥

ઉભયોઃ સર્વમપ્યન્ય-તત્ત્વપ્રમૃતિકં સમમ્ ॥૨૭૬॥

અર્થ:—(હવે સાંખ્ય મત કહે છે.) કેટલાક સાંખ્ય લોકો શિવને અને કેટલાક વિષ્ણુને દેવ માને છે. બાકી તત્ત્વની ગણતિ વિગેરે સર્વે બંનેને મતે સરખું જ છે. (૨૭૬)

સાંખ્યાનાં સ્યુર્ગુણાઃ સત્ત્વં, રજસ્તમ્પ ઇતિ ત્રયઃ ॥

સામ્યાવસ્યા ભવેત્યેષાં, ત્રયાણાં પ્રકૃતિઃ પુનઃ ॥૨૭૮॥

અર્થ:—સાંખ્યને મતે સત્ત્વ, રજ અને તમ એ ત્રણ ગુણ છે. અને એ ત્રણ ગુણોની સ્થિતિ સરખા પ્રમાણમાં હોય તો તે પ્રકૃતિ કહેવાય છે. (૨૭૮)

પ્રકૃતેઃ સ્યાન્મહત્તત્ત્વ-મહંકારસ્તતોઽપિ ચ ॥

પચ્ચ બુદ્ધીન્દ્રિયાણિ સ્યુ-શ્ચક્ષુરાદીનિ પચ્ચ ચ ॥૨૭૯॥

કર્મેન્દ્રિયાણિ વાસ્પાણિ-ચરણોપસ્યપાયનઃ ॥

મનશ્ચ પञ્ચતન્માત્રાઃ, ગદ્યો રૂપ રસસ્તથા ॥૨૮૦॥

સ્પર્શો ગન્ધોઽપિ તેભ્યઃ સ્યા-ત્પૃથ્વ્યાય ભૂતપञ્ચક્રમ્ ॥

इय प्रकृतिरेतस्याः परस्तु पुरुषो मतः ॥૨૮૧॥

પञ્ચવિગતિતત્ત્વીયં, નિત્ય સારયમતે જગત્ ॥

પ્રમાણત્રિતય ચાત્ર, પ્રત્યક્ષમનુમાગમઃ ॥૨૮૨॥

અર્થ — પ્રકૃતિથી મહત્તર, મહત્તરથી અહ ઠાર, અહ કાગ્થી પાચ જ્ઞાનેન્દ્રિયો, પાચ કર્મેન્દ્રિયો, ગદ્ય, રૂપ, રસ, સ્પર્શ અને ગન્ધ એ પાચ તન્માત્ર તથા મન વાય છે પાચ તન્માત્રથી અનુક્રમે પૃથ્વી, જળ, તેજ, વાયુ અને આકાશ એ પાચ મહાભૂતો થાય છે એ મર્વ ચોવીઝ તત્ત્વ રૂપ પ્રકૃતિનો વિસ્તાર થયો, અને એ પ્રકૃતિથી તદન વેગળો રહેલો પુરુષ મચીગમો એ સર્વ મળી પચીશ તત્ત્વોથી થયેલું જગત્ સાચ્યને મતે છે તથા પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને ઉપમાન મળી ત્રણ પ્રમાણ એમને મતે છે (૨૭૬) (૨૮૦) (૨૮૧) (૨૮૨)

यदेव जायते भेदः, प्रकृतः पुरुषस्य च ॥

મુક્તિસ્ત્તા તદા સારયઃ, રચાતિઃ સૈઃ ચ ખણ્યતે ॥૨૮૩॥

અર્થ — જ્યાં પ્રકૃતિ અને પુરુષ બુદ્ધ પડે ત્યારે મોક્ષ થાય છે, એમ માખ્યો કહે છે અને તે મોક્ષ “ખ્યાતિ” એવા નામથી ઓળખાય છે (૨૮૩)

સાંગ્યઃ શિલ્પી જટી મુણ્ડી, કપાયાચમ્વરોઽપિ ચ ॥

ત્રેપેઽન્નાસ્થૈવ સાંગ્યસ્ય, પુનસ્તત્ત્વે મહાગ્રહઃ ॥૨૮૪॥

અર્થઃ—સાંગ્ય મનના સંન્યાસિયો શિળાધારી (ચાટ-
હીને ધારણ કરનાર). જટાધારી અને મુંડી પણ હોય છે,
તથા ભજવા વિગેરે વસ્ત્રો પહેરે છે. તાત્પર્ય, સાંગ્ય લોકોને
વેપની દરકાર નથી, પણ ઉપર કહેલા તત્ત્વની ખાળતમાં
ઘણોજ આગ્રહ છે. (૨૮૪)

(અથ શૈવમત ।)

શિવસ્ય દર્શને તર્કા-તુર્ભા ન્યાયવિશેષકા ॥

ન્યાયે પોઙ્ગતત્ત્વી સ્યા-ત્પદ્તત્ત્વી ચ વિશેષકે ॥૨૮૫॥

અર્થઃ—શૈવ દર્શનમાં ન્યાય અને વેશેષિક એ બે
નામના તર્કમત છે. ન્યાય મતમાં સોળ તત્ત્વો છે, અને
વેશેષિક મતમાં છ તત્ત્વો છે. (૨૮૫)

અન્યોઽન્યતત્ત્વન્તર્ભાવા-દ્વયોર્ભેદોઽસ્તિ નાસ્તિ વા ॥

દ્વયોરપિ શિવો દેવો, નિત્યઃ મૃષ્ટયાદિકારકઃ ॥૨૮૬॥

અર્થઃ—એક જણ સોળ અને બીજો છ તત્ત્વ માનતો
હોવાથી માહો માહે ભેદ છે, તોપણ સોળ તત્ત્વોનો છ
તત્ત્વોમાં સમાવેશ (સમાસ) થતો હોવાથી બેનો ભેદ નહીં
જોવો છે. બન્નેને મતે શિવ દેવ છે. તે નિત્ય તથા સૃષ્ટિ,
સ્થિતિ (રક્ષા) અને સંહારનો કર્તા છે. (૨૮૬)

નૈયાયિકાનાં ચત્વારિ, પ્રમાણાનિ મતાનિ ચ ॥

પ્રત્યક્ષમાગયોઽન્યચા-નુમાનમુપમાપિ ચ ॥૨૮૭॥

અર્થ — પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, ઉપમાન અને ગાજ એ ચાર પ્રમાણ ન્યાય મતે છે (૨૮૭)

પ્રમાણ ચ પ્રમેય ચ, સગયથ પ્રયોજનમ્ ॥

દૃષ્ટાન્તોઽપ્યથ મિદ્ધાન્તા-ચયૌર્ તર્કનિર્ણયૌ ॥૨૮૮॥

વાદો જલ્પો વિતણ્ડા ચ, હેત્વાભાસાઽડ્ધાનિ ચ ॥

જાતયો નિગ્રહસ્થાના-ર્જીતિ તત્ત્વાનિ પોઙ્ગ ॥૨૮૯॥

અર્થ — ૧ પ્રમાણ, ૨ પ્રમેય, ૩ સગય, ૪ પ્રયોજન, ૫ દૃષ્ટાન્ત, ૬ મિદ્ધાન્ત, ૭ અવયવ, ૮ તર્ક, ૯ નિર્ણય, ૧૦ વાદ, ૧૧ જલ્પ, ૧૨ વિતણ્ડા, ૧૩ હેત્વાભાસ, ૧૪ ડ્ધાન, ૧૫ જીતિ અને ૧૬ નિગ્રહસ્થાન એ સોળ પદાર્થ ન્યાયમતે છે (૨૮૮) (૨૮૯)

વૈશેષિકમતે તાવ-ત્ત્વમાણત્રિતય મતેન્ ॥

મન્યત્તમનુમાન ચ તાર્ત્તીયિકમ્નથાગત ॥૨૯૦॥

અર્થ — પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને ગાજ એ ત્રણ પ્રમાણ વૈશેષિકને મતે છે (૨૯૦)

દ્રવ્ય ગુણસ્તથા કર્મ, સામાન્ય સવિશેષમ્ ॥

સમવાયઞ્ન વ્યવસ્થા, તદ્વ્યાગ્યાનમયોચ્ચતે ॥૨૯૧॥

અર્થ — ૧ દ્રવ્ય, ૨ ગુણ, ૩ કર્મ, ૪ સામાન્ય, ૫ વિશેષ અને ૬ સમવાય એ છ પદાર્થ વૈશેષિકને મતે છે (૨૯૧)

દ્રવ્ય નવરૂપે પોક્ત, પૃથિવીત્તથા ચ ॥

તાર્ત્તીયાન્ આમા ચ, ગગન મન ઇત ચ ॥૨૯૨॥

અર્થ:—૧ પૃથ્વી, ૨ જળ, ૩ તેજ, ૪ વાયુ, ૫ આકાશ,
૬ કાળ, ૭ દિશા, ૮ આત્મા અને ૯ મન એ નવ દ્રવ્ય (વેશે
વિક્રમને) છે. (૨૬૨)

નિત્યાનિત્યાનિ ચન્વારિ, કાર્યકારણભાવનઃ ॥

વ્યોમ દિક્કાલ આત્મા ચ, મનો નિત્યાનિ પञ્ચ ચા ॥૨૬૩॥

અર્થ:—પૃથ્વી, જળ, તેજ અને વાયુ એ ચાર દ્રવ્ય
કારણ રૂપથી નિત્ય અને કાર્યરૂપથી અનિત્ય છે. અને આકાશ,
દિશા, કાલ, આત્મા તથા મન એ પાંચ દ્રવ્ય દેવળ નિત્યજ
છે. (૨૬૩)

સ્પર્શો રૂપં રસો ગન્ધઃ, સંખ્યાથ પરિમાણકમ્ ॥

પૃથક્ત્વમથ સંયોગો, વિભાગથ પરત્વકમ્ ॥ ૨૬૪ ॥

અપરત્વં બુદ્ધિસાંખ્યે, દુઃસ્વેચ્છે દ્વેષયત્કૌ ॥

ધર્માધર્મો ચ સંસ્કારો ગુરુત્વં દ્રવતેત્યપિ ॥ ૨૬૫ ॥

સ્નેહઃ શદ્ધો ગુણા એવં, વિંશતિશ્ચતુરન્વિતા ॥

અર્થ—૧ સ્પર્શ, ૨ રૂપ, ૩ રસ, ૪ ગંધ, ૫ સંખ્યા, ૬
પરિમાણ, ૭ પૃથક્ત્વ, ૮ સંયોગ, ૯ વિભાગ, ૧૦ પરત્વ, ૧૧
અપરત્વ, ૧૨ બુદ્ધિ, ૧૩ સાંખ્ય ૧૪ દુઃખ, ૧૫ ઇચ્છા ૧૬
દ્વેષ, ૧૭ પ્રયત્ન ૧૮ ધર્મ, ૧૯ અધર્મ ૨૦ સંસ્કાર, ૨૧ ગુરુત્વ
૨૨ દ્રવત્વ ૨૩ સ્નેહ અને ૨૪ શબ્દ એ ચોવીશ ગુણ
(વેશેષિક મતે) છે, (૨૬૪) (૨૬૫)

અથ કર્માણિ વક્ષ્યામઃ, પ્રત્યેકમભિધાનતઃ ॥ ૨૬૬ ॥

ઉત્ત્રેષણાપક્ષેષણા-કુશ્ચર્નં ચ પ્રસારણમ્ ॥

ગમનાનીતિ કર્માણિ, પञ્ચોક્તાનિ તદાગમે ॥ ૨૬૭ ॥

અર્થ — હવે પ્રત્યેકનુ નામ દાખલે કર્મના લેદ કહીશુ
૧ ઉત્તરેપણ (ઉપર દેકણ), ૨ અપરેપણ (નીચે દેકણ), ૩
આકુચન (ખેચી લેવું), ૪ પ્રમાણ (પહોણું કરવું) અને
ગમન (જવું) એવા પાંચ પ્રકારના કર્મ વ્યોગિક મતે છે (૨૬૬)
(૨૬૭)

સામાન્યં ભરતિ દેશા, પરં ચૈવાપરં તયા ॥

પરમાણુષ્ટ વર્તન્તે, ત્રિણા નિત્યાગ્તયઃ ॥ ૨૬૮ ॥

અર્થ — ૫૨ તથા અપર એ બે પ્રકાર સામાન્યના છે
નિત્ય દ્રવ્ય ઉપર ગેનાશ વિશેષ પદ્માદ્યને વિષે તે ગે છે
(૨૬૮)

ભવેન્ન્યુતસિદ્ધાના-માધારાધેયવર્તિનામ્ ॥

સમ્યગ્ સમગ્રાયાગ્, દ્વિ પ્રત્યયદેતુકઃ ॥ ૨૬૯ ॥

અર્થ — અવયવમને અવયવી, શુભ અને શુભિ ઇત્યાદિક
અનુત્તમિદ્ વસ્તુ માદોમાદે રહેલો જે અધારાધેય ભાવરૂપ
અગ્રા, તે વ્યોગિક મતે અગ્રવાય કહેવાય છે અગ્રવાયની
અગ્રવેન વસ્તુનું જ્ઞાન થાય છે (૨૬૯)

ત્રિવેન્દ્રિયવૃદ્ધાના, વપુગ્ મુગ્ધ-રયો ॥

પ્રધારાદાત્મમમ્યાન, નુક્તિર્નૈયાયિકૃતતા ॥ ૩૦૦ ॥

અર્થ — ગ્રાહ, રપર્ગ વિગેરે ત્રિવેન્દ્રિય, ઇન્દ્રિય, બુદ્ધિ,
ચક્ષુ, શ્રવણ અને હ્રિય એટલી વસ્તુનો અત્યંત અભાવ થયા
પછી જે એક આ નાતુ ગેલું તેને નૈયાયિકિ (ન્યાયનના)
લોકો મુખિ કહે છે (૩૦૦)

ચતુર્વિંશતિવિંશેષિ-કગુણાન્તર્ગુણા નવ ॥

વુદ્ધ્યાદયસ્નદુચ્છેદો, મુક્તિવિંશેષિકી તુ સા ॥૩૦૧॥

અર્થ:—ચોવીશ શુભોભાના ૧ બુદ્ધિ, ૨ સુખ, ૩ દુઃખ, ૪ ઈચ્છા, ૫ દ્વેષ, ૬ પ્રયત્ન, ૭ ધર્મ ૮ અધર્મ અને ૯ સંસ્કાર એ નવ શુભોનો સમૂળ નાશ થવાથી મુક્તિ થાય છે, એમ વિંશેષિક લોકો કહે છે. (૩૦૧)

આધારમસ્યકૌર્પીન-જટાયજ્ઞોપવીતિનઃ ॥

મન્ત્રાચારાદિભેદેન, ચતુર્થો સ્યુસ્તપસ્વિનઃ ॥૩૦૨॥

અર્થ:—આધાર (પાત્ર,) ભસ્મ, કૌર્પીન (લંગોટી), જટા અને યજ્ઞોપવીત (જનોઘ) એટલાં વાનાં ધારણ કરનાર તાપસ્ય મન્ત્રના તથા આચારના ભેદથી ચાર પ્રકારના હોય છે. (૩૦૨)

શૈવાઃ પાશુપતાશ્વેવ, મહાવ્રતધરાસ્તથા ॥

તુર્યાઃ કાલમુક્ષા મુરુયા, ભેદા એતે તપસ્વિનામ્ ॥૩૦૩॥

અર્થ:—૧ શૈવ, ૨ પાશુપત ૩ મહાવ્રતધર અને ૪ કાલમુખ એ મુખ્ય ચાર પ્રકાર તાપસીના છે. (૩૦૩)

(અથ નાસ્તિકવ્રતમ્ ।)

પञ्चभूतात्मकं वस्तु, प्रत्यक्षं च प्रमाणकम् ॥

नास्तिकानां व्रते नान्य-दात्मानुत्र शुभाशुभम् ॥૩૦૪॥

અર્થ:—નાસ્તિકને મતે સર્વે વસ્તુ પંચ મહાભૂતથી બનેલી છે, અને એક પ્રત્યક્ષ માત્ર પ્રમાણ છે બાકી આત્મા, પદ્મલોક, સુણ્ય તથા પાપ નથી. (૩૦૪)

પ્રત્યક્ષમાવેસંવાદિ, જ્ઞાનમિન્દ્રિયગોચરઃ ॥

લિઙ્ગતોઽનુમિતિર્ત્રિમા-દિવ વદ્ધેરવસ્થિતિઃ ॥ ૩૦૫ ॥

અનુમાનં ત્રિમા પૂર્વ-શેષસામાન્યતો યથા ॥

ઋષેઃ સસ્ય નર્દાપૂરા-દૃષ્ટિસ્તાદ્રવેર્ગતિઃ ॥ ૩૦૬ ॥

સ્થાતં સામાન્યતઃ સાદ્ય-સાગ્રન ચોપમા યથા ॥

સ્વાદ્રોવદ્રવયઃ સાસ્ના-દિમત્ત્વમુભયોરપિ ॥ ૩૦૭ ॥

આગમશ્રાવચન, સ ચ કસ્યાપિ કોઽપિ ચ ॥

વાઘ્યામતીતો તત્સિદ્ધર્થ, પ્રોક્તાર્થાપન્નિરત્તમૈઃ ॥ ૩૦૮ ॥

વટ્ટઃ પીનો દિવા નાત્તિ, રાત્રાવિત્ત્યર્થતો યથા ॥

પશ્ચમમાણાસામર્થ્યે, દસ્તુસિદ્ધિરભારતઃ ॥ ૩૦૯ ॥

અર્થ — એટલું ન થઈ એણે જ્ઞાન તે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ હોય છે હિંચોને જે ચોત ચોતાના વિષયનું જ્ઞાન વાય છે તે પ્રત્યક્ષમા સમાય છે જેમ ધુમાડા ઉપરથી ઘાસિની કંપના કરાય છે, તેમ દોષ હેતુ ઉપરથી કંપના કરવી તે અનુમાન કહેવાય છે ૧ પૂર્વ અનુમાન, ૨ શેષ અનુમાન અને સામાન્ય અનુમાન એવા અનુમાનના ત્રણ પ્રકાર છે ૧ વગસાદ અનુકૂળ બન્ને ત્યારે “ બાલિકાએ પાક સાગે થશે ” એવી કંપન કરવી તે પૂર્વ અનુમાન ૨ નદીનું પૂર જોઈ તે ઉપરથી વગસાદ થયાની કંપના કરવી તે શેષ અનુમાન ૩ ગરિનો અસ્ત (આવગયું) જોઈ તે ઉપરથી સૂર્યની ગતિની કંપના કરવી એ સામાન્ય અનુમાન સાદૃશ્યથી (સગ્રામણીથી) સાધ્ય વસ્તુ નિદ્રા કરવી તે ઉપગિતિ કહેવાય છે જેમ ણજદ અને રોઝ બંનેના ગાગાદિદ અત્યવ

સરખા હોવાથી બાળક સરખો રોજ કહેવાય છે, તે ઉપમિતિ જાણવી. આમ (રાગ દેવરહિત) પુરૂષનું જે વચન તે આગમ (શબ્દ) કહેવાય છે. આમ પુરૂષો તે તે મનવાદીના જુદા જુદા છે. શબ્દાર્થનું જ્ઞાન બરોબર ન થતું હોય તો તે બરોબર થવા ને અર્થે જે પ્રમાણ લેવાય છે, તે અર્થાપત્તિ કહેવાય છે. જેમ “ભણનારો બાળક દિવસે ભોજન કરતો નથી. તો પણ ખુપ્ત છે.” એ વાક્યનો બરોબર અર્થ થવાને અર્થે જે “રાત્રિએ ભોજન કરે છે” એવી કલ્પના કરાય છે તે અર્થાપત્તિ કહેવાય છે. આ પાંચે પ્રમાણથી જે વસ્તુ સિદ્ધ ન થતી હોય તે અભાવ અનુપલબ્ધિ, પ્રમાણથી સિદ્ધ કરાય છે. (જેમ ચોરડામાં ઘટ નથી. કારણ કે, જણાતો નથી.) એ અભાવ પ્રમાણ જાણવું. (૩૦૫) (૩૦૬) (૩૦૭) (૩૦૮) ૩૦૯)

સ્થાપિતં વાદિभिઃ સ્વં સ્વં, મતં તત્ત્વપ્રમાણતઃ ॥

તત્ત્વં સત્પરમાર્થેન, પ્રમાણં તત્ત્વસાધકમ્ ॥૩૧૦॥

અર્થઃ—વાદીઓએ તત્ત્વના પ્રમાણથી પોતપોતાના મત નું આ રીતે સ્થાપન કર્યું છે. પરમાર્થથી જે સત્ય તે તત્ત્વ અને તત્ત્વનું સાધક તે પ્રમાણ કહેવાય છે. (૩૧૦)

સન્નુ શાસ્ત્રાણિ સર્વાણિ સરહસ્યાનિ દૂરતઃ ॥

एकमण्यक्षरं सम्यक्, शिद्धितं निष्फलं नहि ॥૩૧૧॥

અર્થઃ—સર્વે શાસ્ત્રો તથા તેના રહસ્યો દૂર રહો. એક અક્ષર પણ સમ્યક્ પ્રકારે શીખાયો હોય, તો તે પણ નિષ્ફળ જાય નહીં. (૩૧૧)

વિમર્ગર્વક સ્વાર્થ-સ્થાપક દેનુસયુતમ્ ॥

સ્તોક કાર્યકરં સ્વાદુ, નિર્ગર્વ નિપુર્ણ વદેત્ ॥ ૩૧૦ ॥

અર્થ — ડાહ્યા માણુને સ્વાર્થને સ્થાપન કરનાર, ચોકુ, મીઠુ, અહંગાર વિનાનુ, અને કાર્યને સાધે એવુ વચન સચુક્તિ અને વિચાર પૂર્વક બોલવુ (૩૧૦)

ઉક્તઃ સપ્રતિષ્ઠો વ્રૂયા-ત્સમાયા સ્મૃત ઋચઃ ॥

અનુક્રમ્યમદન્ય ચ, સાર્યકં હૃદયગમમ્ ॥ ૩૧૧ ॥

અર્થ — સભામાં કોઈ પુછે તે ડાહ્યા માણુને માયુ, મીઠુ, ઉલ્લાસ તથા દીનતા વિનાનુ વચન કોઠોના મન જેવાય એવી રીતે સાર્યક બોલવુ (૩૧૧)

ઉદારં રિકયોન્મુક્ત, ગમ્ભીરમુચિત સિયમ્ ॥

અપશબ્દોઽજ્ઞિત લોક-મર્માસ્પર્શિ સદા વદેત્ ॥ ૩૧૨ ॥

અર્થ — ઉદાર, વિકથા વિનાનુ, ગમ્ભીર, ઉચિત, સિયર, અપશબ્દ વિનાનુ અને કોઈના મર્મને સ્પર્શ ન કરે એવું વચન મદાકાળ બોલવુ (૩૧૨)

સમદ્ શુદ્ધસંસ્કાર, સત્યાનૃતમનાહતમ્ ॥

સ્પર્શ્ય માર્ત્તવોપેત-મદસશ્ચ વદેદ્વચઃ ॥ ૩૧૩ ॥

અર્થ — ડાહ્યા માણુને મળધને અનુમરતુ, બ્યાકરણના નિયમ પ્રમાણે શુદ્ધ, કોઈ રીતે બાધ ન આવે તથા સ્પષ્ટ અર્થ જણાય એવુ કોમળ વચન અપહારની બાબતમાં નુકસતા બોલવુ (૩૧૩)

પ્રસ્તાવેઽપિ કુલીનાનાં, હસનં સ્ફુરદોષ્ટકમ્ ॥

અદ્વદાસોઽતિહાસથ, સર્વથાનુચિતઃ પુનઃ ॥૩૧૬॥

અર્થઃ—કુલીન પુરૂષોત્તમ હસતું અવસર આવે હોઠ ખડોળા થાય એટલું જ હોય છે. પણ મર્યાદા ઉપરાંત ખડ-ખડ હસતું એ સર્વથા અનુચિત છે. (૩૧૬)

ન ગર્વઃ સર્વથા કાર્યો, મદ્વાદીનાં પ્રશંસયા ॥

વ્યુત્પન્નશ્લાઘયા કાર્યઃ, સ્વગુણાનાં તુ નિશ્ચયઃ ॥૩૧૭॥

અર્થઃ—હાહ્યા માણસે યાચક વિગેરે લોકોના મુખથી પોતાની પ્રશંસા સાંભળી ગર્વ ન કરવો, પણ પાંડિતોના મુખથી પોતાની પ્રશંસા સાંભળી પોતાના ગુણનો નિશ્ચય કરવો. (૩૧૭)

કસ્યાપિ ચાગ્રતો નૈવ, પ્રકાશ્યઃ સ્વગુણઃ સ્વયમ્ ॥

અતુચ્છત્વેન તુચ્છોઽપિ, વાચ્યઃ પરગુણઃ પુનઃ ॥૩૧૮॥

અર્થઃ—હાહ્યા માણસે કોઈની આગળ પોતાનો ગુણ પોતે પ્રગટ ન કરવો. તેમજ પારકો ગુણ સ્વલ્પ માત્ર હોય તો પણ મોટો ઈરીને વખાણવો. (૩૧૮)

અવધાર્યા વિશેષોક્તિઃ, પરવાક્યેષુ કોવિદૈઃ ॥

નીચેનં સ્વં પ્રતિ પ્રોક્તં, યત્તન્નાનુવદેઽસુધીઃ ॥૩૧૯॥

અર્થઃ—હાહ્યા પુરૂષોએ પારકા વચનનો ગૂઢ અભિપ્રાય અરોબર ધ્યાનમાં લેવો. તથા નીચ માણસ ભૂડું વચન બોલે તો પણ પોતે તેને ભૂડાં વચન ન કહેવાં. (૩૧૯)

અનુવાદાદરાસૂયા-ન્યોક્તિસમ્રમદેતુષુ ॥

વિસ્મયસ્તુતિવીક્ષાસુ, પૌનરુત્ત્યં સ્મૃતૌ ન ચ ॥૩૭૦॥

અર્થ — અનુવાદ, આદર, અદેખાઇ, અન્યોક્તિ, સમ્રમ, હેતુ, આશ્ચર્ય, સ્તુતિ, વીક્ષા અને સમરણુ એટલામા કોઇ કારણુ હોય તો પુનરુક્તિ હોય નથી (૩૭૦)

ન ચ પ્રકાશયેદ્વૃથં, દક્ષઃ સ્વસ્ય પરસ્ય ચ ॥

ચેન્કુર્તુ શક્યતે માન-મિદ્દામુત્ર ચ તચ્છુભમ્ ॥૩૭૧॥

અર્થ — કાઢ્યા માણુને પોતાની તથા પારકી શુદ્ધ વાત પ્રગટ ન કરવી કારણુ જો માન રહી શકાય તો આ લોકમાં તથા ૫૦લોકમા ગુલ થાય (૩૭૧)

સદા મુક્ત્વમાસેવ્ય, વાચ્યમાનેઽન્યમર્મણિ ॥

શ્રુત્વા તથા સ્વમર્મણિ, વાર્ધિયં કાર્યમુત્તમં ॥૩૭૨॥

અર્થ — તથા પારકા મર્મ (નિંદાના વચન) બોલાતા હોય તથા કાઢ્યા માણુનોએ હુમેશા માન રહેવું, તથા પોતાના મર્મ બોલાતા હોય તે માનણી પોતે બહેશ થવું. અર્થાત તે વચન માનજ્યા અણમાનજ્યા જેવા કરવા (૩૭૨)

નાઽરયેઽપિ યત્કિચિ-દાત્મપ્રત્યયવર્જિતમ્ ॥

પદ્મમેતદિતિ સ્પષ્ટ, ન વાચ્ય ચતુરેણ તન્ ॥ ૩૭૩ ॥

અર્થ — અનુર પુરૂષે જે કોઇ જાણના પોતાની જગ જગ પાત્રી ન હોય, તે જાણતામા “ જો એમનું છે ” એવો પોતાનો સ્પષ્ટ અભિપ્રાય ન બહુવો (૩૭૩)

પરાર્થસ્વાર્થરાજાર્થ—કારકં ધર્મસાધકમ્ ॥

વાક્યં પ્રિયં હિતં વાચ્યં, દેશકાલાનુગં બુદ્ધૈઃ ॥૩૨૪॥

અર્થઃ—હાહ્યા માણસોએ મધુર, હિતકારિ, પોતાનું, ચારકું તથા રાજાનું કાર્ય કરી શકે, તથા ધર્મને સાધે એવું વચન દેશ તથા કાળ ધ્યાનમાં લઇને બોલવું. (૩૨૪)

સ્વામિનાં સ્વગુરુણાં ચ, નાધિક્ષેપ્યં વચો બુદ્ધૈઃ ॥

કદાચિદપિ ચૈતૈપાં, જલ્પતાં નાન્તરા વદેત્ ॥ ૩૨૫ ॥

અર્થઃ—હાહ્યા માણસોએ પોતાના ધણીનાં તથા ગુરૂના વચન ઉપર તકરાર ન કરવી. તથા તેઓ (ધણી અથવા ગુરૂ) વાત કરતા હોય તો વચનમાં કોઇ કાળે પણ ન બોલવું. (૩૨૫)

આરમ્ભ્યતે નૈરૈયંચા—કાર્યં કારયિતું પૈરઃ ॥

દૃષ્ટાન્તાન્યોક્તિભિર્વાચ્યં, તદગ્રે પૂર્વમેવ તન્ ॥૩૨૬॥

અર્થઃ—બીજા પાસે કાંઇ કાર્ય કરાવવું હોય તો, પ્રથમજ તે કાર્ય અન્યોક્તિથી તથા દૃષ્ટાંતથી તેની આગળ કહેવું. (૩૨૬)

યદિ વાન્યેન કેનાપિ તત્પૂર્વં જલ્પિતં ભવેત્ ॥

પ્રમાણમેવ તત્કાર્યં, સ્વપ્રયોજનસિદ્ધયે ॥૩૨૭॥

અર્થઃ—હુરકોઇ કાર્યમાં આપણા વચનને મળતું બીજા કોઇનું વચન હોય, તો તે પોતાના કાર્યની સિદ્ધિને અર્થે પ્રમાણજ કરવું. (૩૨૭)

યસ્ય કાર્યમશક્યં સ્યા—તસ્ય પ્રાગેવ કથ્યતે ॥

નૈહિરેયાહિરાં કાર્યો, વચોભિર્વિતથૈઃ પરઃ ॥૩૨૮॥

અર્થ—જેનું કામ આપણાવી નહીં થઇ શકે એમ હોય, તેને પ્રથમજ તેમ કહેવું મિથ્યા વચન કહીને ફેાગટ તેને ધક્કા ન ખવાવવા (૩૨૮)

૧૧માણ્ય નૈવ કસ્યાપિ, રક્તવ્ય દ્વિપતા તુ ચેન્ ॥

અન્યતે તદપિ પ્રાક્તિ-રન્યોક્તિ-ચલભક્તિભિઃ ॥૩૨૦॥

અર્થ—કોઈનું વાકું ન બોલવું કાદ્યા માણુનોએ નવું ને વાકું વચન કહેવું હોય તો તે પણ અન્યોક્તિથી, કાંઈ મિથથી અથવા વ્યયોક્તિથી કહેવું, (૩૨૯)

ગિમા તસ્મૈ પ્રદાતમ્યા, યો ભવેત્તત્ર યત્નવાન ॥

ગુરુ સાત્ત્વમેતદ્દિ, કલ્યતે યત્નપૃચ્છત. ॥ ૩૩૦ ॥

અર્થ—જે ગીખામણુ પ્રાણે આલવામા ઘણી ઢાળણ લેતો હોય, તે માણુમનેજ ગીખામણુ દેવી વિના પૃષ્ઠે કાંઈને કાંઈ કહેવું, એ મોટું માહમ કહેવાય છે (૩૩૦)

માતૃપિતાતુગચાર્યા-તિથિર્ભર્તૃતપોચૈઃ ॥

દૃઢમાલ્યમચાર્યા-પત્યદ્રાયાદર્શિકર્તૃઃ ॥ ૩૩૧ ॥

શ્વશુભ્રાત્રિતમચાર્યા-ચર્યસ્યઃ સાર્ધમન્વહમ્ ॥

વાગ્મિપ્રથમકુર્યાણો, વિજયો જગત્રયમ્ ॥૩૩૨॥

અર્થ—પોતાના માળાપ, માદો માણુમ, આચાર્ય, અતિથિ ધણી તપસ્વી, દૃઢ બાળક, દુર્ગમ માણુમ, પૈત્ર, પોતાના દોડરા, જાઈગવ, ચાકર, નવને આગ્રિત, મળ-થી અને ગિત એટલા લોકોની સાથે નિરતર કલક ન કરે, તે પુરૂષ ત્રણ લોકોને જીતે (૩૩૧) (૩૩૨)

(અથ લોક્યાનાલોક્યમક્રમઃ ।)

પચ્ચેદપૂર્વતીર્થાનિ, દેશાન્વસ્ત્વન્તરાણિ ચ ॥

લોકોત્તરાક્ષરાંજ્ઞાયા-પુરુષે શકુનં તથા ॥ ૩૩૩ ॥

અર્થઃ—(હવે જોવા લાયક તથા ન જોવા લાયક શું તેનો વિચાર કહે છે.) અપૂર્વ તીર્થો, જુદા જુદા દેશો, નાનાવિધ વસ્તુઓ, અલૌકિક પુરુષ, છાયા પુરુષ તથા શકુન એટલાં વાનાં જોવાં. (૩૩૩)

ન પચ્ચેત્સર્વદાદિત્યં, ગ્રહણં ચાર્કસોમયોઃ ॥

જેષ્ઠેતામ્બો મહાકૂપે, સંધ્યાયાં ગગનં તથા ॥ ૩૩૪ ॥

અર્થઃ—સર્વકાળ સૂર્ય તરફ ન જોવું. તથા સૂર્યનું અને ચંદ્રનું ગ્રહણ, મોટા કુવાની અંદર રહેલું જળ તથા સંધ્યાકાળને સમયે આકાશ ન જોવું. (૩૩૪)

મૈથુનં મૃગયા નગાં, સ્ત્રિયં પ્રકટયૌવનામ્ ॥

પશુક્રીડાં ચ કન્યાનાં, યોનિં નાલોક્યેન્નરઃ ॥ ૩૩૫ ॥

અર્થઃ—ઝાઝ્યા પુરુષે સ્ત્રીપુરુષનો સંલોભ, નગ્ન અવસ્થામાં રહેલી તરુણ સ્ત્રી, કન્યાની યોનિ અને પશુની કીડા એટલાં વાનાં ન જોવાં. (૩૩૫)

ન તૈલે ન જલે નાસ્ત્રે, ન મૂત્રે સધિરે નચ ॥

વીક્ષેત વદનં વિદ્વા-નિત્યમાયુષ્ણટિર્થિવેત ॥ ૩૩૬ ॥

અર્થઃ—જાણુ પુરુષ પોતાનાં મુખનું પ્રતિબિંબ તેલમાં, જળમાં, હથિયારમાં, મૂત્રમાં તથા લોહીમાં ન જુએ. કારણકે, તેમ કરવાથી આયુષ્ય ટૂટે છે. (૩૩૬)

(અથ નિરીક્ષણપ્રક્રમઃ ।)

ઋતુ શુદ્ધ પ્રસન્નસ્ય, રૌદ્ર તિર્યક્ ચ કોપિનઃ ॥

સવિકાસ સપુષ્પસ્યા-ધોમુખ પાપિનઃ પુનઃ ॥ ૩૩૭ ॥

શૂન્યં વ્યગ્રમનસ્કસ્ય, રલિત ચાનુરાગિણઃ ॥

મયસ્યં વીતરાગસ્ય, સરલ સજ્જનસ્ય ચ ॥ ૩૩૮ ॥

અસમુખ પ્રિલક્ષસ્ય, સવિકારં તુ કામિનઃ ॥

ભ્રમદ્ભવક્રમીર્ણાલો-ભ્રાન્ત મત્તસ્ય સર્વતઃ ॥ ૩૩૯ ॥

જળાશ્લિષ્ઠ ચ દીનસ્ય, ચચ્ચલ તસ્કરસ્ય ચ ॥

અલક્ષિતાર્થ નિદ્રાલો-વિવસ્ત્ર મીરકસ્ય ચ ॥ ૩૪૦ ॥

વત્સો વીક્ષણસ્યૈવં, ભેદાઃ કતિ તુ દર્શિતાઃ ॥

અથ — (હવે દૃષ્ટિનો વિચાર કરે છે) પ્રસન્ન માણુ-
સની દ્રષ્ટિ (નન્દર) સરળ તથા ઉજળી, ક્રોધી માણુસની
ભય ઉપનતવનારી અને વાકી, પુષ્પગાળી પુરૂષની પ્રકુલ્લિત,
પાથી પુરૂષની નીચી, વ્યગ્ર ચિત્ત વાળાની શૂન્ય, રાગી
પુરૂષની પાછી વળનારી, મધ્યસ્થ પુરૂષની મધ્ય પ્રદેશે રહેનારી,
મનજન પુરૂષની મગળ, વિલખા માણુસની આડી અવળી,
કામી પુરૂષની વિકાગ્વાળી, અદેખાર્ધ કરનાર માણુસની ભમ-
રાના મરડવાથી વાકી, મદોન્મત પુરૂષની આમ તેમ ભમ
નારી, દીન પુરૂષની આમુથી મલિન થએલી, ચોરની ચ ચળ,
નિદ્રાનુ પુરૂષની ભાન વિનાની અને ડરી ગએલા માણુસની
આચકી ખાનારી હોય છે એવા દૃષ્ટિના ઘણા ભેદ છે
તેમાંથી અહીં કેટલાક દેખાડ્યા (૩૩૭) (૩૩૮) (૩૩૯)
(૩૪૦)

(અથ નેત્રસ્વરૂપમ્ ।)

દક્ષસ્વરૂપમથો વક્ષ્યે, સ્વભાવોપાધિસંભવમ્ ॥૩૪૧॥

રક્તત્વં ધવલત્વં ચ, ઝ્યામત્વમતિનિર્મલમ્ ॥

પર્યન્તપાર્શ્વતારાસુ, દશોઃ શસ્યં યથાક્રમમ્ ॥૩૪૨॥

અર્થ:—હવે સ્વભાવથી તથા કારણથી નીચઢેલું આંખોનું સ્વરૂપ કહીશું. આંખોના છેડા રાતા તથા નિર્મળ સારા, કીકીના બે પડખા સફેદ તથા નિર્મળ સારા અને કીકી કાળી તથા નિર્મળ સારી. (૩૪૧) (૩૪૨)

હરિતાલપ્રભૈશ્ચક્રી, નૈત્રનીલૈરહંમદઃ ॥

રક્તૈર્નૃપઃ સિતૈર્જ્ઞાના, મધુપિદ્ગૈર્મહાથનઃ ॥૩૪૩॥

અર્થ:—હરતાળ સરખી આંખો હોય તો ચક્રવર્તી, નીલવર્ણ હોય તો અહંકારી, રાતી હોય તો રાજા, ઘોળી હોય તો જ્ઞાની અને મધ સરખી ભૂરા રંગની હોય તો મોટો દ્રવ્યવાન થાય. (૩૪૩)

સેનાધ્યક્ષો ગજાક્ષઃ સ્યા-દ્વીર્ઘાક્ષાશ્ચિરજીવિતઃ ॥

વિસ્તીર્ણાક્ષો મહાભોગી, કામી પારાવતેક્ષણઃ ॥૩૪૪॥

અર્થ:—હાથી સરખી આંખો હોય તો સેનાપતિ થાય, લાંબી આંખો હોય તો ચિરકાળ જીવે, પહોળી હોય તો સુંખનો ઘણો ભોગવનાર થાય, અને પારેવા સરખી હોય તો કામી થાય. (૩૪૪)

નકુલાક્ષા મયૂરાક્ષા, મધ્યમાઃ પુરુષાઃ પુનઃ ॥

કાકાક્ષા શૂમરાક્ષાશ્ચ, મળ્દૂકાક્ષાશ્ચ તેઽધમાઃ ॥૩૪૫॥

અર્થ — નોળાળા સરખી તથા મોર સરખી આખવાળા પુરૂષો મધ્યમ હોય છે કાગરા સરખી, દેડકા સરખી તથા ધૂમાડા સરખા રંગની આખવાળા માણુમ અધમ હોય છે (૩૪૫)

દુષ્ટો દારુણદાષ્ટિઃ સ્યા—ત્કુલુદાક્ષઃ કલિમિયઃ ॥

દાષ્ટિરોગી ભુજદ્વાક્ષો, માર્જારાક્ષસ્તુ પાતકી ॥ ૩૪૬ ॥

અર્થ — કૂર આખવાળો પુરૂષ દુષ્ટ, કુકડા સરખી આખવાળો ઢલઆખોર, મર્પ સરખી આખવાળો આખનો રોગી અને બિલાડી સરખી આખવાળો પાપી હોય છે (૩૪૬)

શ્યામદક્ષુભગઃ સ્નિગ્ધ-લોચનો મોગભાજનમ્ ॥

સ્ફૂલ્લદમ્બીધનો દીન-દાષ્ટિઃ સ્યાદ-રનો જનઃ ॥ ૩૪૭ ॥

અર્થ — શ્યામ આખવાળો માણુસ દેવગાળી, સ્નિગ્ધ (ચોપડી) આખવાળો લોગી, લાડી આખવાળો બુદ્ધિમાન અને દીન આખવાળો નિર્ધન હોય છે (૩૪૭)

નિમ્નયોઃ પ્રચુર પ્રાયઃ, સ્તોકમુન્નતયોઃ પુનઃ ॥

વૃત્તયોર્નિત્રયોરલ્પ-તરમાયુસ્તનૃમૃતામ્ ॥ ૩૪૮ ॥

અર્થ — ઉંડી આખ હોય તો ઘણું જ આયુષ્ય, ઉચલી આખ હોય તો અલ્પ આયુષ્ય અને ગોળ આખ હોય તો ઘણું જ અલ્પ આયુષ્ય હોય છે (૩૪૮)

વિવર્ણ. પિદ્મલૈર્ભ્રાન્તૈ-શ્ચન્નૈર્ગતિર્પૃક્તૈઃ ॥

અધમાઃ સ્યુઃ કૃર્ણમૃક્ષૈઃ, સજન્નૈર્નિર્વિનાઃ પુનઃ ॥ ૩૪૯ ॥

અર્થ:—જરાળ વર્ણવાળી, ભૂરા રંગની ભમતી, અને ઘણી અંચળ એવી આંખો જેની હોય તે અધમ હોય છે, તથા પાનળી લૂળી અને પાણીને ઝરતી એવી જેની આંખો હોય તે નિર્ધન હોય છે. (૩૪૯)

અચક્રુરેકચંબુથ, તથાકિકરનેત્રકઃ ॥

અથ કાકરનેત્રઃ સ્યા—દેષાં ઋરઃ પરઃ પરઃ ॥૩૫૦॥

અર્થ:—આંધળો, કાણો, ઢેકરાશ અને કાકરાશ એ આંદેમાં ઉત્તરોત્તર અધિક કૂર હોય છે. (૩૫૦)

મૂતાવિસ્ય દષ્ટિઃ સ્યા—ત્પાયેષોર્દ્ધવિલોકિની ॥

મીલિતા મુદ્ગલાર્તસ્ય, દેવતાત્તસ્ય દુઃસહા ॥૩૫૧॥

અર્થ:—ભૂત વળગેલા માણસની દૃષ્ટિ પ્રાયે જીયું જોનારી હોય છે, મુદ્ગલ વળગેલા માણસની મીઝાયડી હોય છે, અને દેવતા વળગેલા માણસની ઘણી આકરી હોય છે. (૩૫૧)

શાકિનીભિર્મૃદ્ધિતસ્યા—ધોમુર્લી ચ મયાનકા ॥

રેપલાર્તસ્ય મીરુઃ સ્યા—ચ્છૂન્યાધિકતરં ચલા ॥૩૫૨॥

અર્થ:—શાકિની વળગેલા માણસની દ્રષ્ટિ નીચું જોનારી તથા ભયાનક હોય છે. રેપલાથી ખીડાયેલા માણસની શુન્ય, ઘણી અંચળ તથા ખીડવાળી હોય છે. (૩૫૨)

અરુણા શ્યામલા વાપિ, જાયતે વાતરોગિણઃ ॥

પિત્તદોષવતઃ પીતા, નીલા ચ શુકપિચ્છવત્ ॥ ૩૫૩ ॥

શ્લેષ્મલસ્ય તથા પાણ્ડુ-મિશ્રદોષસ્ય મિશ્રિતા ॥

દ્યોઃ પ્રતિદિનં મેદા, મરુત્યુર્વેવમનેકથા ॥ ૩૫૮ ॥

અર્થ—વાત રોગથી પીડાયલા માણુમની દ્રષ્ટિ ગતી તથા રયામ વર્ણુની હોય છે પિત્ત રોગથી પીડાયલા માણુમની ખીળી તથા પોષટના પીછ જેવી લીલા રંગની હોય છે કફ રોગથી પીડાયલા માણુમની દ્રષ્ટિ મિશ્ર હોય છે (૩૫૩) (૩૫૪)

(અથ ચ દુમ્મણઃ ॥)

ઉગ્મએઽસત્યપિ પ્રાયો, ન ત્રજેન્નિષ્ફલ ક્વચિત્ ॥

મુરત્યા તામ્નઃગૌઃ ચ, મરુત્યુરન્યન્ન મન્ત્રતા ॥૩૫૯॥

અર્થ—(હુએ જવા આવવાનો નિયમ કહે છે) હાયા માણુએ ઉગમ નહીં હોય તો પણ કોઇ દેકાળે વગર પ્રયોજને ન જવું અને માર્ગે ચાલતા એક તાળૂલ વગર ખીન્તુ કાઢી ન જાયું (૩૫૫)

યુગમાત્રાન્નરન્યન્ન-દ્રષ્ટિ પશ્યન્વદ પદમ્ ॥

મ્સાર્થ સ્વજર્ગીરસ્ય, જન્નુના ચ મન્ત્ર ત્રજેત્ ॥૩૬૦॥

અર્થ—માણુએ માર્ગ ચાલતા પોતાના યની ॥ તથા પારખ હુએની રૂપને અર્થે મ્સાર્થ જાણતા પોતાના જેટલી આગળ દ્રષ્ટિ ગળીને પને પને જોતા હોયે ચાલે (૩૫૬)

ક્ષાસ્તિસ્મરમેષ્ટાણા, ર્જનીયા મતિ મદા ॥

મન્ત્રાદ્યપાત્રા નુ, મા પ્રવાપ દ્રવ્યમ્ ॥૩૬૧॥

અર્થ—જેમો નમસ્તુ એ ઉદ્યોગની માત્ર પ્રમા ॥

ન આલવું. ગજ, હંસ તથા બળદ એમની આલ પ્રમાણે
આલવું. ઘાણું પ્રશસ્ત છે. (૩૫૭)

કાર્યાય ચલિતઃ સ્થાના-દ્વહન્નાડીપદં પુરઃ ॥

કુર્વન્ વાચ્છિતાસિદ્ધીનાં, જાયતે ભાજનં નરઃ ॥૩૫૮॥

અર્થઃ—માણસ, કોઈ કામને અર્થે પોતાના સ્થાનકથી
જવું હોય ત્યારે જે બાબતની નાડી વહેતી હોય તે બાબતનો
પગ આગળ મૂકે તો વાંછિત ફળની સિદ્ધિ પામે. (૩૫૮)

एकाकिना न गन्तव्यं, कस्याप्येकाकिनो गृहे ॥

नैवोपरिपथेनापि, विशेषकस्यापि वेद्यमानि ॥૩૫૯॥

અર્થઃ—એકલા માણસને ઘર એકલાએ ન જવું. તથા
કોઈના પણ ઘરમાં ઉપર ચઢીને ન જવું. (૩૫૯)

रोगिवृद्धद्विजान्धानां, धेनुपूज्यक्षमाभुजाम् ॥

गर्भिणीभारमुग्रानાં, दत्त्वा मार्गं ब्रजेद्बुधઃ ॥ ૩૬૦ ॥

અર્થઃ—કાદ્યા માણસે રોગી, વૃદ્ધ, ગ્રાહ્ય, આંધળો,
ગાય, પૂજ્ય પુરૂષ, રાત્ત, ગર્ભિણી સ્ત્રી અને માથે ભાર
હોવાથી નમેલા એટલા લોકોને પ્રથમ માર્ગ દર્શાવે પછી
પોતે જવું. (૩૬૦)

धान्यं पक्वपक्वं च, पूजार्हं मन्त्रमण्डलम् ॥

न त्यक्तोद्धर्तनं लङ्घ्यं, स्नानाम्भोऽस्तृक्षवानि च॥૩૬૧॥

અર્થઃ—કાદ્યા પુરૂષે કાચું અથવા પાકું ધાન્ય, પૂજવા
યોગ્ય મંત્રમંડલ, નાંખી દીધેલું ઉવટણું, નહાવાનું પાણી,

લોહી તથા રાવ (મહુદ) એટલા વાના ઉત્સાહીને ન
જુ (૩૬૧)

નિષ્કૃત્ત્વેષ્યમિષ્ણત્ર-જ્વલ્લદ્વિમુજગમમ્ ॥

મનુષ્ય સાયુધ ધીમાન્, કદાપ્યુદ્ધર્યેન્ન ચ ॥ ૩૬૨ ॥

અર્થ — કાળા પુત્રે હુડ, ડંક, વિષા, મૂત્ર, સળગાયલો
અગ્નિ, ગર્પ અને શસ્ત્રધારી મનુષ્ય એટલા વાના દોષ કાળે
પાત્ર ન ઉત્સાહવા (૩૬૨)

લેમાર્થી હક્ષમૂલં ન, નિર્જાવિન્યા સમાશ્રયંત ॥

નાસમાસે નરો દૂર, ગન્હેદુત્સયમૃતકે ॥ ૩૬૩ ॥

અર્થ — કસ્યાણુના અર્થી પુત્રે રાત્રિને સમયે વૃક્ષને
તળે ન રહેવું તેમજ ઉત્તમ અથવા સૂતક પૃથ્વિ વયા
વગર દૂર ગમન ન કરવું (૩૬૩)

ક્ષીર મુત્ત્વા સ્ત કૃત્વા, સ્નાત્વા દત્ત્વા મૃદાન્નનામ્ ॥

પાત્વા નિષ્ઠીવ્ય ચાક્રોશ, શ્રુત્વા ચ પ્રચલેન્નદિ ॥ ૩૬૪ ॥

અર્થ — વિવેકી પુત્રે દૂધ વાપરીને, ઝીમ ભોગ કરીને,
નિહાળીને, પાતાની ઝીંને તાડના કરીને, વશન કરીને, શુક્રીને,
તથા દોષીને રાતા આબણીને પ્રયાણુન કરવું (૩૬૪)

વાગવિન્યા નરઃ કૌર-મશ્રુમોક્ષ વિચાય ચ ॥

ગચ્છેદ્ પ્રામાન્તર નૈવ, શુક્રનાપાટ્યે ન ચ ॥ ૩૬૫ ॥

અર્થ — વિવેકી પુત્રે કૌર (હનુમાન) કગવીને આગુ
આળીને તથા આગુબ શુબ્ધ જોષને પરમામ ન જવું (૩૬૫)

નદ્યાઃ પરતદાદ્રોષા-ત્સ્વીરદ્રોઃ સલિલાશયાત્ ॥

નિવર્તેતાત્મનોઽભીષ્ટા-નનુવ્રજ્ય પ્રવાસિનઃ ॥૩૬૬॥

અર્થઃ—હાહ્યા માણસે પોતાના સગા વહાલા પરગામ જતા હોય તો તેમને નદીના પાર સુધી, ગાયોના સ્થાનક સુધી, રાયણ, વડ પ્રમુખ દૂધવાળા વૃક્ષ સુધી અથવા જળાશય સુધી વળાવી પાછું આવવું. (૩૬૬)

નાસહાયો નચાજાતે-નેવ દાસૈઃ સર્ગં તથા ॥

નાતિમધ્યંદિને નર્થ-રાત્રે માર્ગે લુપ્તો વ્રજેત્ ॥૩૬૭॥

અર્થઃ—હાહ્યા માણસે કોઇને સાથે લીધા વિના, અજાણ્યા માણસોની સાથે અથવા દાસ લોકોની સાથે, તદન બપોરે અથવા રાત્રિને સમયે માર્ગે ન જવું. (૩૬૭)

નાશમ્બલશ્ચલેન્માર્ગે, મૃશં સુપ્યાન્ન વાસકે ॥

સહાયાનાં ચ વિશ્વાસં, વિદર્શીત ન ધીધનઃ ॥૩૬૮॥

અર્થઃ—બુદ્ધિમાન્ પુરૂષે ભાતું લીધા વિના માર્ગે ચાલવું નહીં. જ્યાં મુકામ કયો હોય ત્યાં ઘણી ઉધ ન લેવી. તથા સાથે લોક હોય તેમનો વિશ્વાસ ન કરવો. (૩૬૮)

માહિવાણાં સ્વરાંષ્ટ્રાણાં, ધેનૂનાં ચાધિરોહણમ્ ॥

સ્વેદસ્પૃશાપિ નો કાર્ય-મિચ્છતા શ્રિયમાત્મનઃ ॥૩૬૯॥

અર્થઃ—પોતાને અર્થે લક્ષ્મીની ઇચ્છા કરનાર પુરૂષે થાક લાગે તો પણ પાકા, ગધેડાં, ઉંટ તથા ગાય એમના ઉપર ન ખેસવું. (૩૬૯)

ગજાત્કરસદસેણ, શકટાત્પચ્ચાભિઃ કરૈઃ ॥

શૃદ્ધિણોઽશ્વાચ ગન્તવ્ય, દૂરેણ દશાભિઃ કરૈઃ ॥૩૭૦॥

અર્થ — માર્ગે જતા હાથીથી એક હબર હાથ, ગાડાથી પાંચ હાથ અને શીંગડાવાળા જાનવગથી તથા ઘોડાથી દસ હાથ, છેટે ચાલવું (૩૭૦)

ન જીર્ણા નાવમારોઢે-ન્નગ્રામેકો વિશેઞ્નદિ ॥

ન ચાતુચ્છમતિર્ગન્ઠે-ત્સોદયેણ સમ પથિ ॥૩૭૧॥

અર્થ — ખુદ્ધિશાળી પુરૂષે, જુના વહાણ ઉપર ન ચઢવું, નદીમાં એકાએક ન પેસવું, તથા સંગાભાઈ સાથે માર્ગ ન ચાલવું. (૩૭૧)

ન જલસ્થલદુર્ગાણિ, વિકટામટર્ગા ન ચ ॥

ન ચાગાધાનિ તૌયાનિ, વિનોપાય વિલઙ્ઘયેત્ ॥૩૭૨॥

અર્થ — જળમાં અથવા સ્થળમાં રહેલા કિટલાઓ, વિપન્ન અટવી તથા ઊંડુ પાણી એટલી વસ્તુનું કાંઈ સાધન વિના ઉલ્લંઘન ન કરવું (૩૭૨)

ઋરૈરારક્ષકૈઃ કર્ણે-જપૈઃ કારજનૈસ્તથા ॥

કુમિત્રૈન્ન સમ ગોષ્ઠી, ચર્યાં ચાકાલિકાં ત્યજેત્ ॥૩૭૩॥

અર્થ — કૂંર, રાક્ષસ, ચુગલીખોર, કાણેલોક અને અરાજ મિત્ર એમની સાથે કવળતે વાતચિત તથા કંઈક હરવું વર્જવું (૩૭૩)

મૂર્તિવાસે યને ને ને ને ને ॥

સદા ગોષ્ઠી ને ને ને ને ॥૩૭૪॥

અર્થ:—કાઠ્યા પુરુષોએ ઠગારાના ઘરમાં, વગડામાં, ગણિકાના ઘરમાં, ધર્મના સ્થાનકમાં તથા પાણીની પરબ ઉપર સદાકાળ વાતો ન કરવી. (૩૭૪)

વદ્ધવધ્યાશ્રયે દ્યૂત-સ્યાને પરિભવાસ્પદે ॥

ભાણડાગારે ન ગન્તવ્યં, પરસ્યાન્તઃપુરે ન ચ ॥૩૭૫॥

અર્થ:—ખાંદીખાતું, ફાંશી દેવાતું સ્થાનક, બુગારીતું સ્થાનક, જ્યાં પોતાનો પરાલવ થાય એવું સ્થાનક, ભાંડાગાર તથા પારકું અંતપુર એટલા સ્થાનકમાં ન જવું. (૩૭૫)

અમનોજે ક્ષમાને ચ, શૂન્યસ્થાને ચતુષ્પથે ॥

તુષ્ણુષ્કતૃણાકીર્ણે, વિપમાવકરોપરે ॥૩૭૬॥

વૃક્ષાગ્રે પર્વતાગ્રે ચ, નદીકૂપતટે સ્થિતિમ્ ॥

ન કુર્યાદ્વસ્મકેશેષુ, કપાલાઙ્ગારકેઽપિ વા ॥૩૭૭॥

અર્થ:—મનને ગમે તેવા સ્થાનકમાં, શ્મશાનમાં, શૂન્ય સ્થાનકમાં, ચોવટામાં, ફેતરામાં તથા સૂકું ઘાસ જ્યાં પથરાયલું હોય તેવા સ્થાનકમાં, પેસતાં તથા નીકળતાં ખીડા ઉપજાવનાર સ્થાનકમાં, કચરામાં, ખારી ભૂમિમાં, વૃક્ષ ઉપર, પર્વતની ટુંક ઉપર, નદીને અથવા કુવાને કાંઠે, રાખ, વાળ, ખોપરી તથા અંગારા જ્યાં હોય એવી જગોમાં ન રહેવું. (૩૭૬) (૩૭૭)

(અથ વિશેષોપદેશક્રમઃ ।)

મન્નસ્યાનમનાકાશ-મેકદ્વારમસંકટમ્ ॥

નિઃશઙ્કાદિ ચ કુર્વીતિ, દૂરસંસ્થે ચ યામિષે ॥૩૭૮॥

અર્થ—ત્યા ઉપરનો ભાગ ઉધારો ન હોય, પેનવા નીકળવાનું હાલ એક-૪ હોય, ચોપીનાળાની બેક્ટ દૂર હોય, શકા પ્રમુખ કરવા જેવું કાર્ધ ન હોય, તથા મદ્યમાન ન હોય, ત્યા મગલન કરવાનું સ્થાનક કરવું (૩૭૮)

મગધ્યનિ રઘુસ્તમ્ભે, રુદાચિર્ગિયનેષ્વરં ॥

મગધામે પ્રતિયાન-ધુનિઃ સપ્રતિભિત્તિઃ ॥ ૩૭૯ ॥

અર્થ—મનવન કરવાના ધ્યાનક્રમા લેે ધણા સાબલા હોય, તેા કરાચે હોઈ ત્યા ચૂતાઈ નહે, તથા ગોખ અથવા પાનગી પીત નહુક હોય તેા મનવન કરનારનો ગળદ મજાગાય (૩૭૯)

કળ્યાસોઘૃષિતે ધ્યાને, મત્રા સા જાનનાન્તરે ॥

મગરેમમુરં ધ્યાર્મા, મધિરિ પશ્ચિમિધિ ॥૩૮૦॥

અર્થ—નાનને સૂન્ય બોધર ના અર્થ ૥ ૪૩૪ ૥ ૪૪૫ સાગેા જેની પાસ અથવા નાજુ મનીચો ॥ નામે મમ્મલન કરી (૩૮૦)

માર્ગ્યોન્નિદિધિદર્શિ-મુરિધિં ન્યન્નરુદિધિં ॥

મમ ન મતરંમર, મત્ર ૪૪૪ રિજ્જયને ॥૩૮૧॥

અર્થ—આ મુ રેલાની, મન રાંબવવા તથા દુરિ મુદિન, રેલા દોમેની એ મમલન ન કરી રેલા મલલન કરી રેલા પાત્ર વનન ન કરી (૩૮૧)

મુર્યાં, રોદાં યત્ર, મુર્યાં સુમ્મલિયરં ॥

મુર્યાં રુદાધિર, મ માર્ગ ધ્યાર્માનાન્તરઃ ॥૩૮૨॥

અર્થ:—જેમાં કોધી, સુખના લોહુપ અને કૃપણ લોકો ઘણા હોય, તે લોકસમુદાય પોતાનો સ્વાર્થ જોઈ બેસે છે. (૩૮૨)

सर्वकार्येषु सामर्थ्यं—भाकारस्य च गोपनम् ॥

धृष्टत्वं च सदाभ्यस्तं, कर्तव्यं विजिगीषुणा ॥૩૮૩॥

અર્થ:—જ્યની વાંછા કરનાર પુરૂષે અર્વે કાર્યોમાં પોતે શક્તિમાન થવું, મનની વાત અહેરા ઉપરથી ન બહુાય તેમ કરવું, તથા હમેશાં ધીઠાઈનો અભ્યાસ કરવો. (૩૮૩)

भवेत्पारिवस्थानं, पुमान् प्रायो निराकृतिः ॥

विशेषादम्बररतेन, न सोच्यः सुधिया क्वचित् ॥૩૮૪॥

અર્થ:—આડંબર ન રાખનાર માણસની પ્રાયે માનખંડના થાય છે. માટે બુદ્ધિશાળી પુરૂષે પોતાનો આડંબર કોઈપણ સ્થળે ન મૂકવો. (૩૮૪)

विश्वासो नैव कस्यापि, कार्य एषां विशेषतः ॥

ज्ञानिप्ररूपिताशेष—धर्मविच्छेदमिच्छताम् ॥૩૮૫॥

स्वमतारोपणोत्पन्न—रौद्रार्तध्यानधारिणाम् ॥

पाखाण्डिनां तथा क्रूर—सत्वप्रत्यन्तवासिनाम् ॥૩૮૬॥

धूर्तानां प्राग्विरुद्धानાં, વાલાનાં યોપિતાં તથા ॥

स्वर्णकारजलाग्नीનાં, પ્રમૂળાં કૂટમાપિણામ્ ॥૩૮૭॥

નીચાનામલસાનાં ચ, પરાક્રમવર્તાં તથા ॥

કૃતઘ્રાનાં ચ ચૌરાણાં નારિતકાનાં ચ જાતુચિત્ ॥૩૮૮॥

અર્થ:—વિવેધી પુરૂષે કોઈનો વિશ્વાસ ન રાખવો. તથા

તેમા પણ કેવલિલાપિત ધર્મની ઉત્થાપના કરનારા, પોતાનું
મત સ્થાપવાના કદાચકુથી આર્તરોદ્ર ધ્યાન કરનારા, પાખડી,
નિર્દય, યનન દેશના રહીશ, ઠગ, એકવાર આપણી માથે
વાકા થએલો, બાળક, સીઓ, સોની, જળ, અગ્નિ, સ્વામી,
અસત્ય બોલનારા, નીચ લોડો, આળસુ, પરાક્રમી, દુતમ્મ,
ચોર અને નારિતક એટલા લોડોનો તો કોઇ જાણે પણ શિલ-
કુલ વિશ્વાસ ન કરવો (૩૮૫-૩૮૮)

कि कुल कि श्रुत किं वा, कर्म कौ च व्ययागमौ ॥

का गाम्नाक्तिः कियान् रेशः, कि चतुष्टिविजृम्भितम् ॥ ३८९

का शक्तिः के द्विपः कोऽह, कोऽनुगन्धश्च समति ॥

कोऽभ्युपायः सहायाः के, कियन्मात्र फल तथा ॥ ३९० ॥

कौ कालदेशो का चैव, संपत्प्रतिहते परः ॥

गाम्ये यमोत्तर सत्रः, किच स्यादिति चिन्तयेत् ॥ ३९१ ॥

અર્થ -- માફ કુળ કેલું ? ગામ્રનો અધ્યામ કેટલો ?
કાર્ય કેલું ? આવક બાવક કેટલી ? મારા વચનની શક્તિ
કેટલી ? કાર્યમા કલેશ કેટલો ? આપણુ બુદ્ધિવેબવ કેટલું ?
શક્તિ કેટલી ? ગતુ કયા છે ? હુ કોણ છું ? હમણા પ્રમગ
કેવો છે ? ઉપાય કયો છે ? સહાય કોણ છે ? કુળ કેટલું
નીપજશે ? દેશ તથા કાળ કયા છે ? મામગ્રી કઈ છે ?
મારા ગતુ માન વચનને તોડી પાડશે તો હુ તુરત શો
ઉત્તર આપુ ? યદ્યા માણુને એટલી બાળનોનો વિચાર
કરવો (૩૮૯) (૩૯૦) (૩૯૧)

યત્પાર્શ્વે સ્થાયેતે નિત્યં, ગમ્યંતે ત્રા પ્રયોજનાત ॥

ગુણાઃ સ્થૈર્યાદયસ્તસ્ય, વ્યસનાનિ ચ ચિન્તયેત્ ॥૩૯૨॥

અર્થ:—આપણે જેની પાસે હુમેશાં રહીએ, અથવા
કારણસર જેની પાસે હુમેશાં જઈએ, તેનામાં ઠરેલપણું
વિગરે ગુણુ છે, અથવા દોષ છે, એ વાતનો વિચાર કરવો.
(૩૯૨)

ઉત્તમૈકા સદારોપ્યા, પ્રસિદ્ધિઃ કાચિદાત્મનિ ॥

અજ્ઞાતાનાં પુરે વાસો, યુજ્યતે ન કલાવતામ્ ॥૩૯૩

અર્થ:—હાહા પુરૂષોએ ઉત્તમ એવી કાંઈક પણ પોતાની
પ્રસિદ્ધિ રાખવી, કળાવાન (કસળી) પુરૂષોને નગરના એક
ખુણામાં પડી રહેવું ઉચિત નથી. (૩૯૩)

કાલકૃત્યં ન મોક્તવ્ય-મતિસ્વિન્નૈરપિ બુધમ્

નામ્નોતિ પુરુષાર્થાનાં, ફલં ક્લેશજિતઃ પુમાન્ ॥૩૯૪॥

અર્થ:—ઘણું જેટ થાય તો પણ જે સમયે જે કામ
કરવાનું તે કદાપિ ન છોડવું. કારણકે કલેશને વશ થએલો
માણસ ઉદ્યમનું ફળ પામી શકતો નથી. (૩૯૪)

ઉચ્ચૈર્મનોરથાઃ કાર્યાઃ, સર્વદૈવ મનસ્વિના ॥

વિધિસ્તદનુમાનેન, સંપદે યતત્તે યતઃ ॥૩૯૫॥

અર્થ:—વિવેકી પુરૂષે હુમેશાં મોટા મનોરથ કરવા-
કારણકે, દેવ (નશીળ), જેના જેવા મનોરથ તેને તેવી ફલ
સંપદા આપવાનો પ્રયત્ન કરે છે. (૩૯૫)

કુર્યાન્ન કર્કશ કર્મ, ક્ષમાશાલિનિ સજ્જનૈ ॥

પ્રાદુર્ભવતિ સપ્તાર્ચિ-મયિતાચ્ચન્દનાદપિ ॥૩૯૬॥

અર્થ — સત્પુરુષો ક્ષમાશીલ (ઉપદ્રવ થાય તે મૂળે મોટે ખમી શકે એવા) છે, એમ બાણી તેમની આથે કૂરપાણુ ન કર્યુ કારણકે, સુગંધી ચદનનુ મથન કરે તે તેમથી પણ અગ્નિ નીકળે છે (૩૯૬)

દદ્મા ચન્દનતા યાતાન, શાન્નોદાદીનપિ દ્રુમાન્ ॥

મલાયાદ્રો તતઃ કાર્યા, મહદ્ભિઃ સહ સંગતિઃ ॥૩૯૭॥

અર્થ — કાદ્યા માણુને મલય પર્વત ઉપરના માગના તથા ખીન્ત વૃક્ષ પાપુ ચદન મરણા થએલા બેઠને મોટા પુરુષોની મોળત કરવી (૩૯૭)

શુભોપદેશદાતાનો, વયોદ્ધા વહુશ્રુતાઃ ॥

કુશલા ધર્મશાસ્ત્રેષુ, પર્યુપાસ્યા મુહુર્મુહુઃ ॥૩૯૮॥

અર્થ — મોટા પડિન, ધર્મ શાસ્ત્રમા નિપુણ, સાચે ઉપદેશ દેનાગ અને પાછી ઉમરના એવા લોકોની વારવાર એવા કરવી (૩૯૮)

ઙ્ઙામુત્ર વિન્દ્ય ય-તન્કુર્વાણ નર ત્યજેત્ ॥

આત્માન યઃ સ્વયં હતિ, ગાયતે સ કથ પરમ ॥૩૯૯॥

અર્થ — આ લોકમા તથા પરલોકમા વિવેક એવુ કાર્ય કરનાર માણુમથી દર રહેવુ કા પુકે જે માણુસ પોતાનો ઘાત કરે છે, તે ખીન્તનુ રક્ષાપુ ગી ગીને કરે ? (૩૯૯)

શૌર્યેણ વા તપોભિર્વા, વિદ્યાયા વા ધનન વા ॥

અત્યન્તમકુલીનોઽપિ, કુલીનો મવતિ ક્ષણાત્ ॥૪૦૦॥

અર્થ:—માણસ ઘણા હીન કુળમાં થયો હોય તોપણ પરાક્રમથી, તપસ્યાથી, વિદ્યાર્થી અથવા ધનથી ક્ષણ માત્રમાં મારા કુલીન લોકોમાં ગણાય છે. (૪૦૦)

કુર્યાન્નાત્માનમત્યુચ્ચ-માયાસેન ગરીયસા ॥

નતશ્ચેદવપાતઃ સ્ય-દુઃકાય મહતે તદા ॥૪૦૧॥

અર્થ:—હાથા માણસે પોતાને ઘણી મહેનતથી ઘણે મોટે દરજે ન ચઢાવવો. કારણ કે, જો તે, તે દરજાથી આછો નીચે પડે તો પાર વિનાનું દુખ થાય. (૪૦૧)

દૈવિકૈર્માનુષૈર્દોષૈઃ, પ્રાયઃ કાર્યં ન સિદ્ધ્યતિ ॥

દૈવિકં વારયેચ્છાન્ત્યા, માનુષં સ્વધિયાં પુનઃ ॥૪૦૨॥

અર્થ:—કોઈપણ કાર્ય પ્રાયે દેવતાના અથવા મનુષ્યોના કરેલા ઉપદ્રવથી સિદ્ધ થતું નથી. મોટે દૈવિક ઉપદ્રવ શાસ્ત્રોક્ત શાંતિકર્મ કરીને તથા માનુષ ઉપદ્રવ પોતાની ખુદ્ધિથી દૂર કરવો. (૪૦૨)

પ્રતિપક્ષસ્ય ન ત્યાગઃ, શૌકશ્ચ ગતવસ્તુનઃ ॥

નિદ્રાચ્છેદશ્ચ કસ્યાપિ, ન વિધેયઃ કદાચન ॥૪૦૩॥

અર્થ:—કબૂલ કરેલા વચનનો ભંગ, ગઈ વસ્તુનો શોક અને કોઈનો નિદ્રાભંગ એ ત્રણ વાનાં કોઈકાળે પણ ન કરવાં, (૪૦૩)

અર્કુર્વન્ વદ્ધુર્મિવૈર, દગ્ધાદ્દદ્ધુમતે મતમ્ ॥

ગતાસ્વાદાનિ કૃત્યાનિ, ન કુર્યાદ્દહુભિઃ સમમ્ ॥૪૦૪॥

અર્થ — ઘણાની સાથે વૈર ન કરતા બહુમત વાતને

પોતાની સમતિ આપવી તથા સ્વાદ વિનાના કાર્યો ઘણા
હોઢોની સાથે ન કરવા (૪૦૪)

શુભક્રિયાસુ સર્ગામ્, મુર્ગર્ભાવ્ય મર્નાપિભિઃ ॥

નરાણાં કપટેનાપિ, નિઃસ્પૃહત્વ ફલપ્રદમ્ ॥૪૦૫॥

અર્થ — ડાહ્યા પુરૂષોએ મર્વ શુભ કાર્યોમા આગેવાન

થયુ માણુમ ઢપટથી નિરિચ્છ થયુ દેખાડે તોપણ તે તેને
ફળદાયિ થાય છે (૪૦૫)

દ્રોહપ્રયોજને નૈવ, માવ્યમત્યુત્સુર્નરૈઃ ॥

કદાચિદપિ કર્તવ્યઃ, સુપાત્રેષુ ન મત્સરઃ ॥૪૦૬॥

અર્થ — સારા પુરૂષોએ મત્સરથી બની શકે એવુ કાર્ય

કરવા અતિશય ઉત્સુક ન થયુ તથા સુપાત્ર મનુષ્યની
સાથે કોઈ કાળે પણ મત્સર ન કરવો (૪૦૬)

સ્વજાતિકૃષ્ટ નોપેક્ષ્યં, તદૈમ્ય કાર્યમાદરાત્ ॥

માનિનાં માનહાનિઃ સ્યા-ત્તદ્વૌપાદ્યશોઽપિ ચ ॥૪૦૭॥

અર્થ — માન પામેલા પુરૂષે પોતાની જાતિના હુ બ

તન્દ આંખમીચામણી ન કરવી પણ જાતિનુ ખતથી ઐક્ય
કરવુ કારણ કે, તેમ ન કરે તો તેની માન ખડના અને
અપયશ પણ થાય (૪૦૭)

નશ્યન્તિ જ્ઞાતયઃ પ્રાયઃ, કલહાદિતરેતરમ્ ॥

મિલિતા એવ વર્ધન્તે, કમાલિન્ય દ્વામ્ભસિ ॥૪૦૮॥

અર્થ:—જ્ઞાતીઓ એક બીજાની સાથે કલહ કરવાથી પ્રાપ્ત પાપમાલ થાય છે. અને તેજ ને એક બીજાની સાથે સંપર્કમાં રહે તો જેમ જળમાં કમલિની વધે છે, તેમ વૃદ્ધિ પામે છે. (૪૦૮)

દારિદ્ર્યોપદ્રુતં મિત્રં, નરં સાધર્મિકં મૃત્યુઃ ॥

જ્યેષ્ઠં જાતિગુણૈર્જામિ-મનપત્યાં ચ પૂજયેત્ ॥૪૦૯॥

અર્થ:—કાલ્યા માણસે દરિદ્રી અવસ્થામાં આવેલા પોતાના મિત્રની તથા સાધર્મિકની, પોતાની અપેક્ષાએ બલિતથી અને ગુણથી શ્રેષ્ઠ એવા માણસની અને પોતાની વાંઝણી યેનની આસનાવાસના કરવી, (૪૦૯)

સારાધિશ્યાન્યવસ્તૂનાં, વિક્રયાય ક્રયાય ચ ॥

કુલાનુચિતકાર્યાય, નોદ્યચ્છેઙ્ગૌરવપ્રિયઃ ॥૪૧૦॥

અર્થ:—મોટાઇ જેને ગમતી હોય એવા પુરૂષે પારકી સારી નરસી વસ્તુ વેચવા અથવા ખરીદવા તથા પોતાના કુળને અનુચિત કાર્ય કરવા તૈયાર ન થવું. (૪૧૦)

સ્વાઙ્ગવાદ્યં તૃણચ્છેદં, વ્યર્થં ભૂમિવિલેખનમ્ ॥

નૈવ કુર્યાન્નર્થવૈદન્ત-નસ્વરાણાં ચ ઘર્ષણમ્ ॥૪૧૧॥

અર્થ:—કાળ ન વગાડવી, શીસોટી ન મારવી, તથા બીજા કોઈપણ રીતે પોતાનું શરીર વાહનની પેઠે ન વગાડવું, કારણવિના તૃણના કટકા ન કરવા, વ્યર્થ પોતાના નખથી ભૂમિ ન ખોતરવી, અને નખથી નખ અથવા દાંત ન ઘસવા. (૪૧૧)

પ્રવર્તમાનમુન્માગે, સ્વં સ્વેનૈવ નિમાસ્યેત્ ॥

કિમ્બોનિધિસ્ત્વેલ્, સ્વસ્માદન્યેન વાર્યતે ॥૪૧૨॥

અર્થ — પોતાનો આત્મા કુમાગે જતો હોય તો તેને પોતેજ અટકાવવો અમુદ્રની વેલા મર્યાદા ઉપરાત ચઢતા તેને સમુદ્રજ અટકાવે છે, તે જીને કોઈ અટકાવે છે ? (૪૧૨)

સમાનમહિત દાન-મૌચિત્યેનાશ્ચિત રચઃ ॥

નયેન વ્યં શૌર્યં ચ, ત્રિગદ્વ્યકૃતયમ્ ॥૪૧૩॥

અર્થ — આદ્યમાન પૂર્વક દાન, અવમય યોગ્ય કુલ વચન અને ન્યાયમહિત ગૌરવ એ ત્રણ વાના ત્રણે જગત્તે વશ કરે એવા છે (૪૧૩)

અર્થાદધિર્લપ્તર્ષો, વેપરીનોઽધિક ધર્મી ॥

અશક્તો વૈરકૃત્ત-મહદ્વિરુપદસતે ॥૪૧૪॥

અર્થ — પોતાની પાને દ્રવ્ય જેટલું હોય તે કરતા અધિક ઉજવણ વેપ પહેન્નાગે, મોટો ધનવાન છતાં હલકો વેપ પહેન્નારો અને પોતે અમમ્ય છતાં નમમ લોકોની માથે વેર કરનારો એ ત્રણ પુરુષોનો મોટો લોકોમા ઉપહાસ (નન્કરી) થાય છે (૪૧૪)

સૌર્યર્થિર્વિદ્ધવિત્તાગ્, મદુપાયેનુ મનર્થી ॥

મત્યા તર્ત્તા નિરુગ્ગો, નન્ મામ્નોતિ ન ત્રિયમ્ ॥૪૧૫॥

અર્થ — સૌરી પ્રુષ કન્વા હી દ્રવ્ય મેજવવાની આશા રાખનારો, ધન મેજવવાના નાચ ઉપાયથી ધન મળે કે નહીં એવો માં રાખનારો અને શુનિ છતાં ધન ન કરનારો અણુમ સર્મી ન પાને (૪૧૫)

અર્થ:—જે પોતાની બુદ્ધિની ચોટાઇથી અહંકાર લાવે, લાટ ચારણોના વખાણથી ગર્વ કરે, તથા લોખી એવા ધણી પાસેથી લાભની ઇચ્છા રાખે, તે ત્રણે પુરૂષો દુર્બુદ્ધિ બાણવા. (૪૨૩)

દુષ્ટ મગ્નિણિ નિર્મીકાઃ, કૃતપ્રાદુષકારથીઃ ॥

દુર્ન્યાયાન્યાયમાકાઙ્ક્ષ-દૃષ્ટદિં લભેત સઃ ॥ ૪૨૪ ॥

અર્થ:—જે દુષ્ટ મગ્નિથી નિર્ધારત રહે, કૃતધ્ન બાણસ તરફથી ઇંછ ઉપકારની આશા રાખે, અને દુષ્ટ રાજા પાસેથી ન્યાય મળવાની ઇચ્છા કરે, તેની ચઢતી ન થાય. (૪૨૪)

અપચયમેવકો રોગી, મદ્રેપો દિત્તવાદિષુ ॥

નીરોગોઽપ્યૌપધપ્રાગી, મુમૂર્ષુર્નાત્ર મંશયઃ ॥ ૪૨૫ ॥

અર્થ:—જે રોગી છતાં પરહેજ ન રાખે, શીખામણ દેનારનો દ્વેષ કરે, તથા રોગી નહીં છતાં વહેમથી ઔપધ ખાય, તેનું મરણ સમીપ આવ્યું એમાં શક નથી. (૪૨૫)

શુલ્કદોઽપથગામી ચ, મુક્તિકાલે પ્રકોપવાન્ ॥

અસેવાકૃત્કુલપ્રદા-ત્રયોઽધીમન્દ્રશુદ્ધયઃ ॥ ૪૨૬ ॥

અર્થ:—જે દાણ ટાળવાને અર્થે ચોર માર્ગે જાય, જે લોજનને અવસરે કોધ કરે, અને જે પોતાના કુળના મદથી આકરી ન કરે, તે ત્રણે પુરૂષો મંદબુદ્ધિ હોય. (૪૨૬)

મિત્રોદ્દેગકરો નિત્યં, ધૃતૈર્વિશ્વાસ્ય વજ્જ્યતે ॥

શુણી ચ મત્સરગ્રસ્તો, યસ્તસ્ય વિફલાઃ કલાઃ ॥ ૪૨૭ ॥

અર્થ — જે હુમેશા પોતાના મિત્રને ઉદ્દેગ ઉપજાવે, જેને ઠગ લોકો ભરોસો દઈ ઠગે, જે પોતે ગુણી છતાં બીજા ગુણી લોકોની અદેખાઈ કરે, તે ત્રણે પુરૂષોની ઢળા નિષ્ફલ હોય. (૪૨૭)

ચારુપ્રિયોઽન્યદારાર્થી, સિદ્ધેઽન્ને ગમનાદિકૃત્ ॥

નિઃસ્વો મૌઘીગ્તોઽત્યન્ત, નિર્નુદ્ધીના શિગેમણિઃ ॥૪૨૮॥

અર્થ — જે પોતાની મી મુદ્દગ છતાં પરસ્ત્રીને વાછે ખસોઈ તૈયાર થયા પછી બહાર નીકળી જાય, અથવા બીજા ઢોધ કામના રોકાય, તથા પોતે દરિદ્રી છતાં વાતો કરવામાં બહુ રુચિ રાખે, તે પુરૂષ મુર્ખ લોકોનો ચરદાર હોય (૪૨૮)

ધાતુવાદે ધનપ્લેષી, રસિકશ્ચ રમાયને ॥

વિપમક્ષી પરીક્ષાર્થ, ત્રયોઽનર્થસ્ય ભાજનમ્ ॥૪૨૯॥

અર્થ — જે કિશિયામા ધન ખોવે, જે રમાયણ ઉપર પ્રીતિ રાખે, તથા જે પરીક્ષાને અર્થે વિષ ખાય, તે ત્રણે પુરૂષો અનર્થને પાત્ર હોય (૪૨૯)

પરવચ્ચઃ સ્વગુણોક્તાદ્, મૃત્યુર્મીરઃ કુકર્મણા ॥

ત્રાતકઃ સ્વસ્ય કોપેન, પદ્મ દુર્યગસામર્મી ॥૪૩૦॥

અર્થ — જે પોતાની ધાની વાત કહીને પરપર થાય, જે કુકર્મ કરી પોતાના ચાકરની ડર રાખે, તથા જે કોપથી પોતાનું નુકસાન કરે, તે ત્રણે પુરૂષો અપજસના સ્વાનક જાણવા (૪૩૦)

ક્ષણરાગી ગુણાભ્યાસે, દોષેષુ રસિકોઽધિકમ્ ॥

વહુહન્તાન્પરણી ચ; મંદાવાસ્પદં નહિ ॥૪૩૧॥

અર્થ:—જે માણસ ગુણનો અભ્યાસ કરવામાં લાગુ માત્ર રૂચિ કરે, જે દોષ કાઢવામાં ઘણી રૂચિ રાખે, તથા જે ઘણું જોઈને થોડાની રક્ષા કરે, તે લક્ષ્મી ન પામે. (૪૩૧)

નઝેષુ નૃપવર્મણી, સોત્સાહો દુર્વિલદિતે ॥

સ્તવ્યશ્ચ વહુમાનેન, ન ભવેજ્જનવલ્લભઃ ॥૪૩૨॥

અર્થ:—જે માણસ નમ્ર માણસની સાથે રાજાની પેઠે મોત ધારણ કરે, જે દુષણા લોકોને ઉપદ્રવ કરવાના કામમાં ઘણો ઉત્સાહ ધારણ કરે, અને જે બહુ માન મળવાથી અહંકાર કરે, તે ત્રણે લોકપ્રિય ન થાય. (૪૩૨)

દુઃખે દીનમુખોઽત્યન્તં, સુખે દુર્ગતિનિર્ભયઃ ॥

કુર્કર્મણ્યપિ નિર્લજ્જો, ચાલકરપિ હસ્યતે - ૪૩૩ ॥

અર્થ:—જે માણસ દુઃખ આવે દીન મુખ કરી બેસે, જે સુખી અવસ્થામાં દુર્ગતિની ખીંક ન રાખે, તથા જે કુર્કર્મ કરવામાં શરમ ન રાખે, તે ત્રણે પુરૂષોની બાળકો પણ મસ્કરી કરે છે. (૪૩૩)

વૃત્તસ્તુત્યાત્માનિ અન્તઃ, કીર્ત્યૈ ચ પાત્રપોષકઃ ॥

સ્વહિતેન્નવિમર્શી ચ, કથં યાત્યેવ વાલિશઃ ॥૪૩૪॥

અર્થ:—જે ઠગ લોકોના વખાણથી પોતે ભૂલ ખાય, કીર્તિને અર્થે કુપાત્રનું પોષણ કરે, અને પોતાના હિતનો વિચાર ન કરે, તે મૂર્ખ માણસ કથં જ પામે. (૪૩૪)

વિદ્વાનસ્મીતિ વાચાલઃ, સાત્રમોઽસ્મીતિ દન્ધલઃ ॥

શૂરોઽસ્મીતિ ચ નિઃશઙ્કઃ, સમજ્યાયા ન રાજતે ॥૪૩૫॥

અર્થ—તે “ હું વિદ્વાન છું ” એમ સમજી બહુ બકબકાટ કરે, હું “ મોટો ધર્મી છું ” એમ સમજી બહુ ચાલાકી દેખાડે, તેથી “ હું શૂરો છું ” એમ મમજી ડોઢ-નો ડર ન રાખે, તે પુરૂષ સલામી ગોખ ન પામે (૪૩૫)

ધર્મત્રોહેણ સૌર્યેન્દુ-રન્યાયેન વિવર્દિતુઃ ॥

ત્રેયઃપાત્રેયમુક્તોઽન્તે, નાર્તિથિઃ સુગતેર્નરઃ ॥

અર્થ—જે માણસ ધર્મનો ટોહ કરીને ‘સુખની’ ધૂંધા કરે, પોતે અન્યાય કરી વધવાની વાછા ગણે, તથા અતઙ્ગ આવે પુણ્યરૂપ ભાતુ પાને ન રાખે, તે પુરૂષ સુગતિએ ન જાય (૪૩૬)

વિકૃતઃ સપદા પ્રાપ્ત્યા, જ્ઞમન્યો મુશ્વરતત્ત. ॥

દૈવજ્ઞોક્તયા નૃપત્વેન્દુ-ર્ધીમર્દ્ધિન મદ્રસ્યતે ॥૪૩૭॥

અર્થ—તે માણસ લક્ષ્મીની ધીસિ વવાથી વિગર પામે, વાચાળતાથી પોતાને પડિત માને, ‘અને જેગીના કહેવાથી પોતે રાજપદ પામવાની વાછા કરે, તેને રાધ્યા માણસો વળાપૂતા નથી (૪૩૭)

લિષ્ટોક્ત્યાપિ કવિમન્યઃ, સ્વસ્થાગ્રી પ્રાકર્ષદિ ॥

જાવદ્રે ચાશ્રુત શાસ્ત્ર, યસ્તસ્ય મતયે નમઃ ॥૪૩૮॥

અર્થ—તે માણસ દોષ ન રુમતે એવા દિલદ વચન બોલી પોતાને પડિ માને, પડિન પુરૂષોની સલામી પોતાના

પોતેજ વખાણુ કરે, તથા અણુસાંભળેલા શાસ્ત્રની વ્યાખ્યા કરે, તે પુરુષની બુદ્ધિને નમસ્કાર થાઓ. (૪૩૮)

ઉદ્વેજકોઽતિચાતૂતયા, મર્મસ્પર્શી હમન્નપિ ॥

નિર્ગુણો ગુણિનિન્દાક્રન્ત્રકચપ્રતિમઃ પુમાન્ ॥૪૩૯॥

અર્થ:—જે ઘણાં મીઠા વચન બોલીને ત્રાસ ઉપજાવે, હસતાં હસતાં પારકાં મર્મ બોલે, અને પોતે નિર્ગુણી છતાં ગુણી પુરુષોની નિન્દા કરે, તે પુરુષ કરવત સરખો હોય. (૪૩૯)

પ્રસમં પાઠકોઽવિદ્વા-નદાતુરભિભાષુકઃ ॥

ગાતાનવસરજઞ્ચ, કપિકંચ્છૂસમા ઇમે ॥૪૪૦॥

અર્થ:—જે પોતે અવિદ્વાન છતાં મોટા સ્વરથી ભણે, જે કૃપણ પુરુષ પાસેથી ધનની અભિલાષા રાખે તથા જે અવસર જાણ્યા વિના જાય, તે ત્રણે પુરુષો કેંચ સરખા હોય. (૪૪૦)

દૂતો વાચિકં વિસ્મારી, ગીતકારી સ્વરસ્વરઃ ॥

ગૃહાશ્રમરતો યોગી, મહોદ્દેગંકરાશ્ચયઃ ॥૪૪૧॥

અર્થ:—જે દૂત થઈ સંદેશો ભૂલી જાય, જે ગવૈયો થઈ કંઠાર સ્વરે ગાય, તથા જે યોગી થઈ ગૃહસ્થાશ્રમમાં રહે, તે ત્રણે પુરુષો ઘણા ઉદ્દેગના કરનાર જાણવા. (૪૪૧)

જ્ઞાતદોષજનશ્ચાઘી, ગુણિનાં ગુણનિન્દકઃ ॥

રાજાદ્યવર્ણવાદી ચ, સંઘોઽનર્થસ્ય ભાજનમ્ ॥૪૪૨॥

અર્થ:—જેના દોષ પ્રગટ દેખાય તેનાં પણ જે વખાણુ

કરે, શુણી પુરૂષની નિદા કરે, અને રાત્ર વિગેરેનો અવર્ણવાદ
બોલે, તે તુરત મકટગા પડે (૪૪૨)

મૃદદુશ્વરિત મન્ત્રં, વિત્તાયુર્મર્મવચ્ચનમ્ ॥

અપમાન સ્વધર્મ ચ, ગોપયેદ્દૃષ્ટ સર્વદા ॥૪૪૩॥

અર્થ — ૧ ઘરના છિદ્ર, ૨ મત્ર, ૩ ધન, ૪ આયુષ્ય,
૫ મર્મ વચન ૬ ઠગાઈ, ૭ અપમાન અને ૮ પોતાનો ધર્મ
એ આઠ વાના હુમેશા ગોપવવા (૪૪૩)

इत्येव कथितमशेषजन्मभाजा—

माजन्म प्रतिपदमत्र यद्विरेयम् ॥

कुर्वन्तः सततमिदं च केऽपि धन्याः,

साफल्यं विदधाति जन्मनो निजस्य ॥૪૪૪॥

इति धीजितदत्तसूरिविरचिते विवेकविलासे जन्मचर्चाया

विशेषोપદેશો नामाष्टम उद्ધास ॥ ૪॥

અર્થ — મનુષ્યોને આખા જન્મમા પગે પગે જે કૃત્ય
કરવું પડે છે, તે મે આ રીતે કાતુ કોઈ ધન્ય પુરૂષો ઉપર
કદ્યા પ્રમાણે જે આચરશે, તો તે પોતાનો મનુષ્ય ભવ મફત
કરશે (૪૪૪)

इति श्री छनदत्तसूरि विरचित विवेकविलासिनी गृह्य
भाषानो आठमो उद्धास संपूर्ण. (૮)



અથ નવમ ઉલ્લાસઃ ।

પ્રત્યક્ષમપ્યમી લોકાઃ, પ્રેક્ષ્ય પાપવિજૃમ્ભિતમ્ ॥

મૂઢાઃ કિં ન વિરજ્યન્તે, ગ્રહિલા ઇવ દુર્ગ્રહાન્ ॥૧॥

અર્થઃ—આ મૂઢ લોકો પાપનું ફળ પ્રત્યક્ષ જુએ છે, તોપણ કદાચહુથી ઘેલા જેવા થાય છે, પણ સંસાર ઉપર વૈરાગ્ય કેમ નથી પામતા ? (૧)

વથેન પ્રાણિનાં મદ્ય-પાનેનાનૃતજલ્પનૈઃ ॥

ચૌર્યૈઃ પિશુનભાષૈઃ સ્યા-ત્પાતકં શ્વશ્વપાતકમ્ ॥૨॥

અર્થઃ—જીવહિંસા, મદ્યપાન, અસત્ય ભાષણ, ચોરી અને ચાકી એ પાંચ મનુષ્યને નરકમાં પોતાકનાઈ અશુભ કર્મ આપે છે. (૨)

પરવશ્વમહારમ્ભ-પરિગ્રહકદાગ્રહૈઃ ॥

પરદારાભિષદ્ગૈશ્ચ, પાપં સ્યાત્પાપવર્દનમ્ ॥૩॥

અર્થઃ—પારકાને ઠગવાથી, મોટો આરભ કરવાથી, પરિગ્રહ રાખવાથી, કદાચહુથી અને પરસ્ત્રીના સંગથી સંતાપને ઘઘારનાઈ પાપ કર્મ બંધાય છે. (૩)

અમર્યૈર્વિકથાલાપૈ-રસન્માર્ગપ્રરૂપગૈઃ ॥

અનાત્મયત્રણૈશ્ચાપિ, સ્યાદેનસ્તેન તત્ત્યજેત્ ॥૪॥

અર્થઃ—અલદ્ય વસ્તુનું લક્ષણ, વિકથા અને ખોટી પ્રફુલ્લા કરવાથી તથા પોતાના આત્માને વશ ન રાખવાથી પાપ બંધાય છે, મારે તેનો ત્યાગ કરવો. (૪)

ચેશ્યાભિઃ કૃણકાપોત-નીલામિદુષ્ટચિન્તનઃ ॥

ધ્યાનાધ્યાપાર્તર્ગદાધ્યા, દુઃશ્ચકૃત્કલુપં મયેન્ ॥૧॥

અર્થ — દુષ્ટ, કાપોત અને નીલ એ ત્રણ લેશ્યાથી,

આદ્ય અધ્યવસાયથી તથા આર્ત ગેદ્ર ધ્યાનથી દુ ખને ઉપબ-
વનાડ પાપ બધાય છે (૫)

ક્રોયો વિજિતદાવાગ્નિઃ, સ્વસ્યાન્યસ્ય ચ યાતકઃ ॥

દુર્ગતેઃ કાર્ણ ક્રોય-સ્તસ્માદ્વર્જ્યો વિગ્રેકિભિઃ ॥૬॥

અર્થ — ક્રોધ દાવાનળ કરતા ચઢિયાતો છે કાર્ણ કે,

તે પોતનો તથા પરનો નાશ કરે છે, અને દુર્ગતિનું કારણ
છે, માટે વિવેકી પુરૂષોએ તે વર્જ્યો (૬)

કુન્નજાતિતપોરૂપ-ચન્નગ્રભશ્રુતશ્રિયામ્ ॥

મદાન્પ્રાપ્નોતિ નાન્યેય, પ્રાણી ફીનાનિ મદયીઃ ॥૭॥

અર્થ — આગ્રભશ્રુ માણસ, ૧ કુલ, ૨ જાતિ, ૩ તપશ્ચા,

૪ રૂપ, ૫ બળ, ૬ લાભ, ૭ શાન્ત અને ૮ લક્ષ્મી એ
આઠ વસ્તુનો મદ કરે, તો તેજ વસ્તુ પરભવે ધારી હલકી
પામે (૭)

દૌર્ભાગ્યજનની માયા, માયા દુર્ગતિર્નની ॥

નૃણા સ્ત્રીત્વપ્રત્યા માયા, જ્ઞાનેભિસ્ત્યજ્યતે તત્ત. ॥ ૮ ॥

અર્થ — માયા (કષ્ટ) દૌર્ભાગ્યને ઉત્પન્ન કરનારી,

દુર્ગતિને પદે પ્રગટનારી તથા પુરૂષને ચીનો જન્મ આપનારી
છે, માટે જ્ઞાની પુરૂષો તેનો ત્યાગ કરે છે (૮)

ક્ષન્ત્યેન મિત્ર વાગો, દુઃખ મૃક્તેન યાદયમ્ ॥

ત્રિયતે ગુણમગ્ન, પુમા જ્યેષ્ઠેન તાદયઃ ॥ ૯ ॥

અર્થ:—સદ્દેહ વસ કાળજમાં બોળવાથી જેમ મલિન થાય છે. તથા દૂધ આછણથી જેમ બગડે છે, તેમ પુરુષના સર્વે ગુણ લોભથી મલિન થાય છે, તથા બગડે છે. (૯)

भव कारागृहनिभे, कपाया यामिका इव ॥

जीविः किं तेषु जाग्रत्सु, मोक्षमामोति वालिशः ॥ १० ॥

અર્થ:—સંસાર બંદીખાના સરખો છે, અને કોધાદિક ચાર કપાય પોળિયા સરખા છે. માટે ત્યાં સુધી કપાયરૂપ પોળિયા જાગતા હોય, ત્યાંસુધી જીવ સંસારરૂપ બંદીખાનામાંથી શી રીતે છૂટે ? (૧૦)

शौर्यं, गाम्भीर्यमौदार्यं, ध्यानमध्ययनं तपः ॥

सकलं सफलं पुंसां, यदि चेन्द्रियनिग्रहः ॥ ११ ॥

અર્થ:—જો માણસે પોતાની ઇન્દ્રિયો જીતી હોય, તો તેની શૂરવીરતા, ગંભીરતા, ઉદારતા, શુભ ધ્યાન, ભણવું ગણવું અને તપસ્યા એ સર્વે સફળ છે. (૧૧)

पापात्पङ्गुः कुणिः पापा-त्पापाद्विषयलोलुपः ॥

दुर्भगः पुरुषः पापा-त्पापात्पण्डश्च दृश्यते ॥ ૧૨ ॥

અર્થ:—માણસ પૂર્વ ભવે કરેલા પાપથી પાંગળો, હુઠો, ઘણો વિષયી, દુર્ભાગી અને નપુંસક થાય છે. (૧૨):

प्रेष्यः पापान्मली पापा-त्कुष्टी पापाज्जनो भवेत् ॥

पापादस्फुटवाक्पापा-न्मूकः पापाच्च निर्धनः ॥ ૧૩ ॥

અર્થ:—માણસ પાપથીજ પારકો દાસ, માલિન, કો-દિયો, બોબડો, મૂગો અને દરિદ્રી થાય છે. (૧૩)

જાયતે નારકસ્તિર્ય-ગકુલીનો વિમુઢધીઃ ॥

ચતુર્વર્ગફલર્થયો, રોગગ્રસ્તશ્ચ પાપતઃ ॥૧૪॥

અર્થ — માણસ પાપથીજ નારકી, તિર્યચ, હીનકુલનો, મતિમદ તથા ધર્મ, અર્થ, કામ મોક્ષ એ ચારે પુરુષાર્થથી વ્રહ્મ અને શેગી વાચ છે (૧૪)

યદ્યપ્યદપિ સસારે, જીવિઃ પ્રાપ્નોત્યસુન્દરમ્ ॥

તત્સમસ્ત મનોદુઃખ-હેનુઃ પાપવિનૃમ્બિતમ્ ॥૧૫॥

અર્થ — આ મસાગ્રા બીજુ પણ જીવને જે માફ તથા મનને દુઃખ દેનાર થાય છે, તે મન પાપનુ ફલ બાણુ (૧૫)

इति गदितमग्रेष कारण पातकस्य,

प्रतिफलमपि तस्य श्वभ्रपातादि दुष्टम् ॥

सकलपुण्यममृदोहासकार्मभर्मनुष्य-

न स्वदु मनसि धार्यः पापहेनूपदेनः ॥૧૬॥

इति धीमिनदक्षमृतिविरचिने धीविनेकाग्रलासे पापોत्पत्तिकारण
नाम नवमो ઉત્તર ॥ ૬ ॥

અર્થ — આ રીતે પાપનુ સર્વ કારણુ અને તેનુ નશ્ક-પાતાદિ દુષ્ટ ફળ પણ કદુ જે પુરુષો મર્ષે યુગના મમુનાય-નો ઉદય પમાડાની વાદા રાખના હોય, તેમણે પાપનો હેનુ એના ઉપદેશ મનમાં ન રાખવો (૧૬)

ઈતિ શ્રીનિવલ્લભનિરગચિત વિવેકવિલાસની ગુરુ
બાણનો નવમો ઉત્તર સપ્તમો (૮)

અથ દશમ ઉલ્લાસઃ ।

પ્રત્યક્ષવન્તરં દૃષ્ટ્વા, શ્રુત્વા વા પાપપુણ્યયોઃ ॥

સદૈવ શુદ્ધ્યતે કર્તુ, ધર્મ એવ વિપશ્ચિન્તા ॥ ૧ ॥

અર્થઃ—પાપ પુણ્યમાં રહેલો તદ્વાવન પ્રત્યક્ષ જોઈને અથવા શુદ્ધતા ઉપદેશથી સાંભળીને ડાહ્યા માણસે હંમેશાં ધર્મજી આચરવો જોઈએ. (૧)

ધિગ્મૂઢાન્ જન્મિનો જન્મ, ગમયન્તિ નિર્ઠકમ્ ॥

ધર્માનુષ્ઠાનાવિકલં, મુખા ઇવ નિશીથિનીમ્ ॥ ૨ ॥

અર્થઃ—મુતેલા માણસો રાત્રિ ફોગટ શુભાવે છે, તેમ જો ધર્મનું આચરણ ન કરતાં માનવ ભવને વ્યર્થ શુભાવે છે તે મૂઢ લોકોને ધિક્કાર થાઓ. (૨)

નૃપચિત્તધનસ્નેહ-દેહદુષ્ટજનાયુષામ્ ॥

વિવ્રો વિવટમાનાનાં, નાસ્ત્યતો ધર્મમાચરેત્ ॥ ૩ ॥

અર્થઃ—રાજાનું ચિત્ત, ધન, પ્રીતિ, દેહ, દુર્જન અને આયુષ્ય એટલી વસ્તુ વિવટતાં કાંઈ હરકત આવેતેમ નથી; માટે ધર્મ આચરવો. (૩)

ધર્મોઽસ્ત્યેવ જગજ્જૈત્રઃ, પરલોકોઽસ્તિ નિશ્ચિતમ્ ॥

દેવોઽસ્તિ તત્ત્વમસ્ત્યેવ, સત્ત્વં નાસ્તિ તુ કેવલમ્ ॥૪॥

અર્થઃ—જગતમાં જયવંતો ધર્મ, પરલોક, દેવ અને તત્ત્વ એ ચારે છેજી. એમાં ખીલકુલ સંશય નથી. પણ મનુષ્યમાં સત્ત્વ માત્ર નથી. (૪)

કુરુતોઃ કુક્રિયાતશ્ચ, પ્રત્યુહાત્કાલદોષતઃ ॥

ન મિદ્ધવન્ત્યાપ્તવાર્ચશ્ચ-ચત્તાસાં કિમ્ વાચ્યતે ॥૫॥

અર્થ — કુરુત કુક્રિયાથી, કુક્રિયાથી, પૂર્વભવના અતરાયથી તથા કાળદોષથી દેવળીના વચન પ્રમાણે રૂપ ન આવે તો તેમા દેવળીના વચનનો ગુ દોષ ? (૫)

અનસ્યકુવિકલ્પસ્ય, યનમઃ સ્થિરતા નૃણામ્ ॥

ન જાયતે તતો દેવાઃ, કુતઃ સ્યુસ્તદ્ગવદાઃ ॥૬॥

અર્થ — અનેક પ્રકારના માઠા અધ્યવભાયથી માણસો ના મનની સ્થિરતા રહેતી નથી તેથી દેવતાઓ તેમને વશ કયાથી થાય ? (૬)

આગતાપ્યન્તિક સિદ્ધિ-ત્રિકલ્પેર્નીયતેઽન્યતઃ ॥

અનાદરવતા પાર્શ્વે, કથં કા યાવતિષ્ઠતે ॥ ૭ ॥

અર્થ — સમીપ આવેલી મિદ્ધિપણ માઠા અધ્યવભાયથી બીજી તરફ જતી નહે છે કાળુ દે, આદર ન કરનારા માણસ પાને ટોણુ ટકે, અને શી રીતે ટકે ? (૭)

ત્રિશ્વશ્યામ્ય કુલં ધર્મા-દ્ધર્માજ્ઞાતિર્મનોરમા ॥

ક્રામ્ય સ્પ મનેદ્ધર્મા-દ્ધર્માત્સોમાગ્યમદ્ભુતમ્ ॥ ૮ ॥

અર્થ — ધર્મથી જગતમા પ્રગતિ કરવા ચોખ્ખા કુળ, ઉત્તમ નાતિ, મનોહર રૂપ અને આશ્ચર્યકારી ગાભાગ્ય મળે છે (૮)

નૌરોગત્વં મયેદ્ધર્મા-દ્ધર્માદ્દિર્નિત્વમાયુષઃ ॥

ધર્માદર્યો મયેદ્દોમ્યો, ધર્માજ્ઞાનં ત્રપુષ્મનામ્ ॥ ૦ ॥

અર્થ:—ધર્મથી મનુષ્યોને નીરોગીપણું, લાંબું આયુષ્ય, ભોગવવા યોગ્ય ધન અને જ્ઞાન મળે છે. (૯)

મેઘવૃષ્ટિર્ભવેદ્ધર્મા—દ્ધર્માદિવ્યેષુ શુદ્ધયઃ ॥

ધર્માન્મુદ્રાં સમુદ્રથ, નોઙ્ગત્યેવ કદાચન ॥ ૧૦ ॥

અર્થ:—ધર્મથી વૃષ્ટિ થાય છે, ધર્મથી દિવ્યને વિષે શુદ્ધિ થાય છે; અને ધર્મથીજ સંમુદ્ર પોતાની મર્યાદા કોઈ કાળેપણ છોડતો નથી. (૧૦)

ધર્મપ્રભાવતો યાતિ, ન રસાપિ રસાતલમ્ ॥

ધર્માર્થકામમોક્ષાણાં, સિદ્ધિર્ધર્માચ્છરીરિણામ્ ॥ ૧૧ ॥

અર્થ:—ધર્મના પ્રભાવથી પૃથ્વી રસાતળે (પાતાળે) જતી નથી. તથા ધર્મથીજ મનુષ્યોને ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ એ ચારેનાં ફળ પામ થાય છે. (૧૧)

યદન્યદપિ સદ્વસ્તુ, પ્રાપ્નોતિ હૃદયોપ્સિતમ્ ॥

જીવઃ સ્વર્ગાપવર્ગાદિ, તત્સર્વં ધર્મચોદિતમ્ ॥ ૧૨ ॥

અર્થ:—સ્વર્ગ, મોક્ષ વિગેરે બીજી જે કોઈ મનગમતી ચીજ હવને મળે છે, તે સર્વ ધર્મના પ્રભાવથીજ એમ જાણવું (૧૨)

દાનશીલતપોભાવૈર્—ર્થેદૈર્ભિન્નઃ સ દૃશ્યતે ॥

કાર્યસ્તતઃ સ એવેહ, મુક્તેર્યઃ કારણં પરમ્ ॥ ૧૩ ॥

અર્થ:—તે ધર્મના દાન, શીળ, તપસ્યા અને લાવના એ ચાર પ્રકાર છે, અને તેથી મુક્તિ થાય છે. માટે વિવેકી પુરૂષે ધર્મજ આચારવો. (૧૩)

શ્રેષ્ઠો મે ધર્મ ઇત્યુચ્ચૈ, વ્રૃત્તે કાઃ કોઽન્ત્ર નોદ્ધતઃ ॥

ભેદો ન જ્ઞાયતે તસ્ય, દૂરસ્થૈરાન્ત્રનિમ્નવત્ ॥૧૮॥

અર્થ — “મારો ધર્મ શ્રેષ્ઠ છે ” એમ કોણુ ધીઠો માણસ કહેતો નથી ? પણુ જેમ દૂર ઉભા રહેલા માણસથી આગાનો અથવા લીળડાનો લેહ જાણી શકાતો નથી, તેમ ધર્મનો લેહ તે માણસથી જાણી શકાતો નથી (૧૮)

માયાહકારલજ્ઞાભિઃ—પ્રત્યુપક્રિયયાથા ॥

યત્કિચિદ્ધીયતે દાન, ન તદ્ધર્મસ્ય સાધકમ્ ॥૧૯॥

અર્થ — જે દાન કપટથી, આહુકાગ્યી, શગ્મથી અથવા ઉપકારનો ખદલો વાળવાને અર્થે દેવાય છે તેથી ધર્મ થતો નથી (૧૯)

અસદ્વ્યોઽપિ ચં યદ્દાન, તન્ન શ્રેયસ્કર વિદુઃ ॥

દુઃસ્વપાન મુજગાના, જાયતે વિપવૃદ્ધયે ॥૨૦॥

અર્થ — કુપાત્રે દાન આપવુ તે પણુ કલ્યાણકારિ નથી કારણુ કે, સુર્પને દૂધ પાવાથી કેવળ વિપનીજ વૃદ્ધિ થાય છે (૨૦)

પ્રસિદ્ધિર્જાયતં ધર્માન્ન દાનાન્ન પ્રસિદ્ધયે ॥

કૈન્થિદ્વિતીર્યતે દાન, તજ્ઞેય વ્યસન બુધૈઃ ॥૨૧॥

અર્થ — ધર્મથીજ પ્રસિદ્ધિ થાય છે, કેવળ દાનથીજ થતી નથી કેટલાક લોકો પ્રસિદ્ધિને અર્થે દાન આપે છે, તે તેમનુ એક વ્યસન ગમજવુ (૨૧)

યજ્ઞાનાભયયોર્યચ્ચ, ધર્મોપાદ્યમ્ભવસ્તુનઃ ॥

યચ્ચાનુકમ્પયા દાન, તદેવ શ્રેયસે ભવેત્ ॥૨૨॥

અર્થ:—જ્ઞાનદાન, અભયદાન, ધર્મોપદેશ (વસ્ત્રાન્નપ્ર-
મુખ) વસ્તુનું દાન અને અનુકંપાદન એ ચારે દાનથી
કલ્યાણ થાય છે. (૧૮)

સ વિવેકધુરોદ્ધાર-ધૈર્યો યઃ સ્વમાનસે ॥

વિરક્તહૃદયો વેત્તિ, લલનાં ગૃહ્ણલોપમામ્ ॥૧૯॥

અર્થ:—જે હૃદયમાં વેદાગ્ર્ય હોવાથી સ્ત્રીને ગૃહ્ણતા
સમાન ગણે, તે પુરૂષ મોટો વિવેકી બન્યો. (૧૯)

આસ્તાં સર્વપરિન્યાગા-લંકૃતસ્ય મહામુનેઃ ॥

ગૃહ્ણિણોઽપિ હિતં વ્રત્ય, લોકદ્વયમુલ્લેપિણઃ ॥૨૦॥

અર્થ:—સર્વથા ત્યાગી મહામુનિની વાત દૂર રહી. પણ
આ લોકમાં તથા પરલોકમાં મુખની વાંછા કરનાર ગૃહસ્થોને
પણ વ્રત્યન પાળવું હિતકારી છે. (૨૦)

નિર્યદેવામુરશ્ચીઞ્ચ, પરમ્શ્ચિપિ યસ્ત્યજેત્ ॥

સોઽપિ ધીમાન્ સ તુ સ્તુત્યો, યઃ સ્વદારરતિઃ મદા ॥૨૧॥

અર્થ:—જે માણસ પોતાની સ્ત્રી ઉપર ધુરુણ રાખી
નિર્યંચની, દેવતાની અને ભવનપતિની સ્ત્રીઓનો તથા મનુ-
ષ્યમાં પર સ્ત્રીનો ત્યાગ કરે, તેજ બુદ્ધિમાન્ અને તેજ
પ્રશંસા કરવા યોગ્ય સમજ્યો. (૨૧)

તનોૈં યદિ નિતમ્બિન્યાઃ, પ્રયાદાદક્ષપતત્યહો ॥

ચિન્તનીયા તદ્વાત્ર, મલમૃત્રાદિસંસ્થિતિઃ ॥૨૨॥

અર્થ:—જે પ્રમાદથી કોઈ સમયે સ્ત્રીના શરીર ઉપર
દ્રષ્ટિ બાય, તો તેજ વળતે તેના (સ્ત્રીના) શરીરમાં મળ, મૂત્ર
વિગેરે ખરાબ વસ્તુ રહેલી છે, તે ધ્યાનમાં લેવી. (૨૨)

અજ્ઞાતપરમાનન્દો, લોકોઽય ત્રિપથોન્મુખઃ ॥

અદ્વૈતગૌરર્થમઃ, પાઠૌર્વપર્યયે ॥૨૩॥

અર્થ — પરમાનંદ સ્વરૂપને ન બાણનાગ લોકો વિષય
મુખમાં તલ્લીન થાય છે ગણેશને ન જોનાર જામડિયા લોકો
જામડાનાજ વચ્ચાણ કરે છે (૨૩)

પરાનન્દમુસારાદી, ત્રિપથૈર્નાભિમુખે ॥

જાદુલીજયનિષ્કમ્પઃ, ઈ સંપરેષસર્વે ॥૨૪॥

અર્થ — ત્રિપથો પરમાનંદ મુખને આખના ન માણસને
વશ કરી ન શકે, ગાડી વિદ્યામાં નિપુણ એવા સાધુ
આગળ સર્વ પોતાની મેળે આવે તે સુ ? (૨૪)

રસત્યાગમ્તનુકેશ, ઔનેદર્યમમોજનમ્ ॥

લૌનતા દૃત્તિસંપન્નપઃ પોદ વર્તિર્મમ ॥ ૨૫ ॥

અર્થ — ૧ રસને ત્યાગ કરવાના, ૨ કાયાનાં કલેશ, ૩ ઉણા
દગી (પ્રમાણ કરતાં જોણે આકાશ), ૪ ઉપવાસ, ૫ અગો
પામ ગદોશીને એમણે અનંત દૃત્તિનો ગદાપ એ દ પ્રમાણ
બાહ્ય તપના છે (૨૫)

પ્રાયશ્ચિત્ત શુભચિન્ત, રૂપચિન્તો વિનયમ્ભવા ॥

વૈયાકચ્યમયોત્સર્ગ-સ્નપઃ પોદાન્તર મેવ ॥૨૬॥

અર્થ — ૧ પ્રાયશ્ચિત્ત, ૨ શુભચિન્ત, ૩ સ્વાધ્યાય, ૪
વિનય, ૫ વૈયાકચ્ય અને ૬ કૃતિગ્રંથ એ ૭ પ્રકાર અતન
તપના છે (૨૬)

દુઃખવૃક્ષસાગર, મર્ત્યદ્રવ્યમાત્રિના ॥

આગમ્ય મિત્રેણ, નદસ્તપ્તેન દુદ્ધે ॥૨૭॥

અર્થ:—યોતાનાં સનનાં પરિણામ શુદ્ધ રાખનારો માણસ સર્વ ઇન્દ્રિયોને સમાધિમાં રાખી સર્વે આરંભ છોડી દુઃખનો સમુદાય ટાળવાને અર્થે તપસ્યા કરે છે. (૨૭)

પૂજાલાભપ્રસિદ્ધયર્થે, તપસ્તપ્યેત યોડ્વપ્તીઃ ॥

જોષ એવ શરીરસ્ય, ન તસ્ય તપસઃ ફલમ્ ॥૨૮॥

અર્થ:—જે અલ્પ બુદ્ધિવાળો માણસ પૂજનીક થવાને અર્થે, લાલને અર્થે, અથવા પ્રસિદ્ધિને અર્થે તપસ્યા કરે, તે કેવળ શરીરનેજ સુંકાવે છે, પણ તેને તપસ્યાનું ફળ મળતું નથી. (૨૮)

વિવેકેન વિના યચ્ચ, તત્તપસ્તનુતાપકન્ ॥

અજ્ઞાનકષ્ટમેવેદં, ન ભૂરિફલદાયકમ્ ॥૨૯॥

અર્થ:—વિવેક વગર તપસ્યા કરવાથી માત્ર શરીરને તાપ ઉપજે છે. તે કેવળ અજ્ઞાન-કષ્ટજ છે. તેથી બહુ ફળ પ્રાપ્ત થતું નથી. (૨૯)

દૃષ્ટિહીનસ્ય પદ્મોશ્ચ, સંયોગે ગમનાદિકમ્ ॥

યથા પ્રવર્તતે જ્ઞાન-ક્રિયાયોગે શિવં તથા ॥૩૦॥

અર્થ:—આંધળાના અને પાંડળાના મેળાપથી જેમ (બંનેનું) જલું, આવડું વિગેરે થાય છે, તેમ જ્ઞાનનો અને ક્રિયાનો યોગ મળવાથી મોક્ષ થાય છે (૩૦).

શરીરં યૌવનં વિત્તં, સંયોગં ચ સ્વભાવતઃ ॥

ઇદં નિત્યમાનિત્યતા-પ્રાતં જાનીહિ સર્વતઃ ॥૩૧॥

અર્થ — હે જીવ! શરીર, યુવાવસ્થા, ધન અને મર્વ પ્રકારના સંયોગ એ મર્વ સ્વભાવથી જ મદાકાળ અનિત્ય છે એમ તુ સર્વથા જાણ (૩૧)

શકચત્રયાદયોઽપ્યેતે, મ્રિયન્તે કાલયોગતઃ ॥

તદ્વત્ર શરણ યાતુ, કઃ કસ્ય મરણાગમે ॥૩૨॥

અર્થ — ઇંદ્ર તથા ચક્રવર્તી વિગેરે પણ કાળમર્યાદા પૂરી થઈએ મરણ પામે છે માટે આ જનતમા મરણ સમય આવે છે તેને શરણ જાય ? (૩૨)

સસાગ્નાટ્કો જન્નુ-રત્તમો મધ્યમોઽધમઃ ॥

નટયત્કર્મસયોગા-જ્ઞાનારૂપો મરત્યદ્યો ॥૩૩॥

અર્થ — જીવ મમાન રૂપ નાટકમા નાટકીની જેટલું કર્મને યોગે ઉત્તમ, મધ્યમ તથા અધમ એવા નાનાવિધ વેપ ધારણ કરે છે, એ ઘણી જોડની વાત છે! (૩૩)

एक एव तुव जन्तु-र्जायते म्रियतेऽपि च ॥

एक एव मृत्वं दुग्धं, भुङ्क्ते चाप्योऽस्ति नो सत्त्वा ॥૩૪॥

અર્થ — જીવ એકલો જ જન્મે છે, મરણ પામે છે, અને શુદ્ધ દુધ લોખંડે છે બીજાં ઢોઢપણ તેનો સગો નથી (૩૪)

देहार्पकं नृमित्रादि, सर्वमन्यन्मनस्विनः ॥

गुज्यते नैव कुत्रापि, शोकः कर्तुं विवेकिना ॥૩૫॥

અર્થ — જાણુ પુરૂષો દેહ, ધન, જામવ, મિત્ર વિગેરે સર્વ પારકું સમજે છે, માટે વિવેકી પુરૂષે દેહાદિકને અર્થ શોક કરવો યોગ્ય નથી. (૩૫)

રસામૃદ્ધ્યાંસમેદોઽસ્થિ-મજ્જશુક્રમયે પુરે ॥

નવસ્રોતઃપરીતે ચ, શૌચં નાસ્તિ કદાચન ॥ ૩૬ ॥

અર્થઃ—રસ, લોહી, માંસ, મેદ, હાડકાં, મજ્જા અને વીર્ય એ સાત ધાતુથી બનેલું અને નવદ્વારથી વીંટાયલું એવા શરીરમાં પવિત્રતા કોઈ પ્રાણે નજ હોય. (૩૬)

કષાયૈવિપયૈર્યોગૈઃ, પ્રમાદૈરદ્ધિર્ભિર્નવમ્ ॥

રૌદ્રાર્તાનિયમાજ્ઞત્વૈ-આત્ર કર્મ પ્રવદ્ધયતે ॥ ૩૭ ॥

અર્થઃ—જીવો આ લોકમાં કષાયથી, વિપયથી, યોગ પ્રમાદથી, રૌદ્ર ધ્યાનથી, આર્તધ્યાનથી, વિરતિના અભાવથી અને અજ્ઞાનથી નવું કર્મ બાંધે છે. (૩૭)

કર્મોત્પત્તિવિચાતાય, સંવરાય નતોઽસ્મ્યહમ્ ॥

યાચ્છિનત્તિ શમાત્ત્રેણ, શુભાશુભમયં દુષ્મમ્ ॥ ૩૮ ॥

અર્થઃ—નવા કર્મની ઉત્પત્તિને અટકાવનાર સંવરને હું નમસ્કાર કરું છું કારણ કે, તે સંવર સમતારૂપ શસ્ત્રથી શુભાશુભ કર્મને તોડી નાંખે છે. (૩૮)

સુસંયમૈર્વિવેકઘ્નૈ-સ્કામોઽપોઽન્નિના ॥

સંસારકારણં કર્મ, જરણીયં મહાત્માયિઃ ॥ ૩૯ ॥

અર્થ—મહાત્મા પુરૂષોએ સારા સંયમથી અને નિષ્કામ તપસ્યા રૂપ અગ્નિથી સંસારને વધારનારા કર્મની નિર્જરા કરવી. (૩૯)

શરાવસંપુટાધસ્યા-ધૌમુસ્વૈકશરાવત્ ॥

પૂર્ણં ચિન્ત્યં જગદ્ભયં; સ્થિત્યુત્પત્તિભયોભિઃ ॥ ૪૦ ॥

અર્થ — સીધો સરાવળો નીચે અને ઉંધો સરાવળો ઉપર રાખ્યો હોય તો તે શરાવસ પુટ કહેવાય છે, તે શરાવમ પુટની નીચે એક ઉંધો સરાવલો રાખ્યો હોય તેવા આકારમા રહેલુ આ જગત્, ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને લય પામના । જીવ, અજીવ પ્રમુખ દ્રવ્યથી પરિપૂર્ણ ભરેલુ છે, એમ માધકે ચિંતાવવુ (૪૦)

સર્પૂર્ણેઽપિ મનુષ્યત્વે, પ્રાપ્તે જીવઃ શ્રુતાદિભિઃ ॥

આસન્નસિદ્ધિકઃ કથિ-દુદ્ધયતે તત્ત્વનિશ્ચયાત્ ॥૪૧॥

અર્થ — કોઈક જ આસન્નસિદ્ધિયો જીવ પરિપૂર્ણ ઇંદ્રિય-વાળો મનુષ્ય ભવ પામી શ્રુત, શુદ્ધ વિગેરે મામત્રીનો યોગ મળવાથી તત્ત્વનિશ્ચય કરી બોધ પામે છે (૪૧)

શ્રેષ્ઠો ધર્મસ્તપઃશાન્તિ-માર્દવાર્જવમુનૃતૈઃ ॥

શૌચાકિચન્યકર્મણા-બ્રહ્મત્યાગૈશ્ચ સમતઃ ॥૪૨॥

અર્થ — ૧ તપશ્ચા, ૨ ક્ષમા, ૩ ડોમળપણુ, ૪ સરળતા, ૫ સત્યભાષણુ, ૬ પવિત્રતા, ૭ પરિશુદ્ધનો ત્યાગ, ૮ દયા, ૯ પ્રદક્ષ્યર્થ અને ૧૦ દાન એ દસ વસ્તુ જેમા હોય તે ધર્મ શ્રેષ્ઠ કહેવાય છે (૪૨)

ભાવનીયાઃ શુભૈર્ચાનૈર્-ર્થવ્યૈર્દ્વાદશ ભાવનાઃ ॥

एता हि भवनागिन्यो, भवन्ति भविना किञ्च ॥૪૩॥

અર્થ — ભવ્ય જીવોએ શુભ ધ્યાનથી બાર ભાવનાઓ લાવવી દારપુ દે, તેઓ ભવ્ય જીવોના અસાગનો નાન કર નારી છે (૪૩)

ગોદુગ્ધસ્યાર્કદુગ્ધસ્ય; યદ્વત્સ્વાદાન્તરં મહત્ ॥

ધર્મસ્યાપ્યન્તરં તદ્-ત્ફલેઽમુખ્યાપરસ્ય ચ ॥૪૪॥

અર્થ:—ગાયના દૂધના અને આકાશના દૂધના સ્વાદમાં જેમ ઘણો તફાવત છે, તેમ ઉપર કહેલા ધર્મના અને જીજ્ઞાધર્મના ફળમાં ઘણોજ તફાવત છે. (૪૪)

इत्यनेन विधिना करोति यः, कर्म धर्ममयमिद्विवासनः ॥

तस्य सूत्रयति मुक्तिकामिनी—कण्ठकन्दलहटप्रहक्रियाम् ॥૪૫॥

इति श्रीजिनदत्तसूरीविरचिते विवेकविलासे धर्मोत्पत्तिप्रकरणं

नाम दशम उल्लासः ॥૧०॥

અર્થ—શુદ્ધ પરિણામવાળો જે માણસ ઉપર કહેલી રીતે ધર્મકૃત્ય કરે છે. તેના કંઠને મુક્તિરૂપ સ્ત્રી યાજ્ઞાત્કારથી આલિંગન કરે છે. અર્થાત્ તે મુક્તિ પામે છે. (૪૫)

इति श्रीजिनदत्तसूरीविरचित विवेकविलासनी शूर्णर

लापानो दशमो उद्विास संपूर्ण. (૧૦)

अथैकादश उल्लासः ।

पूर्वोक्तयत्नसंदोहैः, पालितं देहपञ्जरम् ॥

श्लाघ्यं स्याद्ब्रह्महंसस्य, यद्व्याधारો दृथान्यथा ॥૧॥

અર્થ:—જીવરૂપ હંસનું દેહરૂપ પાંજરું ઉપર કહેલા સંપૂર્ણ યત્નથી પાળવું, એજ પ્રશંસા કરવા યોગ્ય છે. તે વિના લાકડીનો આધાર લેવો નકામો છે. (૧)

મુગ્ધાના વર્દતે ક્ષેત્ર-પાત્રાદ્યૈર્ભવવારિધિઃ ॥

વીમતામપિ શાસ્ત્રૌઘૈ-રખ્યાત્મવિકલૈર્ભ્રશમ્ ॥૨॥

અર્થ —અરુ લોકોનો સસાર ક્ષેત્ર (ખેતર) પાત્ર (વાસણ) વિગેરે વસ્તુથી વધે છે, અને પડિત લોકોનો તો અધ્યાત્મજ્ઞાન વગરના ખીજા નકામા ઘણા શાસ્ત્રોથી વધે છે (૨)

કિ રોમન્યનિભૈઃ કાર્ય, વહુભિર્ગ્રન્યગુમ્ફનૈઃ ॥

વિદ્વાદિસ્તત્ત્વમાલોકય-મન્તજ્યોતિમય મહત્ ॥૩॥

અર્થ —ઓગાળ મરખા ઘણા અથો અથવાથી શું લાભ છે? પડિત લોકોએ તો શરીરની અદર રહેલા દિવ્ય જ્યોતિ રૂપ મોટા જીવતત્ત્વનો નિયાગ કરવો (૩)

જન્માન્તરસુસસ્કારા-ત્પ્રસાદાદયવા ગુરોઃ ॥

કૈપા ચિજ્જાયતે તત્ત્વ-વાસના વિશદાત્મનામ્ ॥૪॥

અર્થ —પૂર્વજીવના ગુણ સસ્કારોથી અથવા સદ્ગુણના પ્રમાદથી કેટલાક શુદ્ધ મનવાળા જીવોને તત્ત્વ જાણવાની વાસના ઉત્પન્ન થાય છે (૪)

અહ વત સુખી દુઃખી, ગૌરઃ શ્યામો દુઃખોઽદુઃખઃ ॥

દુઃસ્વો દીર્ઘો યુવા દુઃખો, દુઃસ્ત્યજેયં કુવાસના ॥

અર્થ —હું સુખી અથવા દુઃખી, ગોરો અથવા કાળો, મજબૂત અથવા નબળો, દુઃકો અથવા લાજો, તરૂણ અથવા ઘરડો એવી જોટી વાસના (અધ્યવસાય) પ્રત્યેક મનુષ્યમાં રહી છે તે ઊડવી કઠણ છે (૫)

જાતિપાશ્વળ્ડયોર્યેષાં, વિકલ્પાઃ સન્તિ ચેતસિ
વાર્તામિસ્તૈઃ શ્રુતં તત્ત્વં, ન પુનઃ પરમાર્થતઃ ॥૬॥

અર્થઃ—જાતિના અને પાશ્વળ્ડના વિચાર જેમના ચિત્ત.
માં વસતા હોય, તેમણે તત્ત્વ સાંભળ્યું હોય તો કદાચ
વાર્તારૂપે સાંભળ્યું હશે, પણ પરમાર્થથી નહીં. (૬)

તાવત્તત્ત્વં કુતો યાવ-દ્વેદઃ સ્વપરયોર્ભવેત્ ॥

નગરારણ્યયોર્ભેદે, કથમેકત્વવાસના ॥૭॥

અર્થઃ—જ્યાં સુધી પોતીકું અને પારકું એવો ભેદ.
રહ્યો છે, ત્યાં સુધી તત્ત્વની વાત કયાંથી ? જ્યાં સુધી નગ
રમાં અને ગામડામાં તફાવત દેખાય, ત્યાં સુધી એકચ
બુદ્ધિ કયાંથી થાય ? (૭)

વર્મઃ પિતા ક્ષમા માતા, કૃપા માર્યા ગુણાઃ સુતાઃ ॥

કુટુમ્બં સુધિયાં સત્ય-મેતદન્યે તુ વિન્નમાઃ ॥૮॥

અર્થઃ—સત્પુરુષોનો ધર્મ તેજ પિતા, ક્ષમા તેજ માતા,
દયા તેજ ભાર્યા, અને સદ્ગુણ તેજ પુત્ર છે. સત્પુરુષોનું
એજ કુટુંબ છે. બાકી સર્વે ભ્રમ છે. (૮)

પાદવન્ધવદં સ્થૂલ-કદીમાગં મુંજાર્ગલમ્ ॥

યાતુમિત્તિ નવદ્વારં, દેહં ગેહં સુયોગિનઃ ॥૯॥

અર્થઃ—પગરૂપ મજબૂત પાયાવાળું, કેરૂંપ મધ્યભાગ
વાળું, ભુજરૂપ ભૂંગળવાળું, સાત ધાતુરૂપ ભીંતવાળું, અને
નવ દ્વારવાળું એવું શરીર તેજ ભલા યોગીનું ઘર છે. (૯)

કાન્ત પ્રશાન્તમેકાન્તં, પવિત્રં વિપુલ સમમ્ ॥

સમાધિસ્થાનમન્વેષ્ય, સદ્ધિઃ સામ્યસ્ય સાધકમ્ ॥૧૦॥

અર્થ — મનોહર, શાંત, એકાતવાળું, પવિત્ર, વિરાગ તથા મીઠું એણે સમતાને સાધનારૂં સ્થાનક મતપુરૂષોએ અમાધિને અર્થે શોધી કાઢ્યું (૧૦)

સમાધિઃ સપદોપશ્ચ, સમગ્રાતુમલઃ પુમાન્ ॥

સુપસન્નેન્દ્રિયમનાઃ, સ્વસ્થ इत्यभिधीयते ॥૧૧॥

અર્થ — જેનો જઠરાગ્નિ, કફાદિ દોષ, રસાદિ ધાતુ અને મલ સમાન હોય, અર્થાત્ વૈદ્યશાસ્ત્રમા જેતું જેટલું પ્રમાણુ કહ્યું છે તે તેટલાજ પ્રમાણુમા હોય, તથા જેના ઇન્દ્રિય અને મન સુપસન્ન હોય, તે પુરૂષ સ્વસ્થ (માણે) કહેવાય છે (૧૧)

સ્વસ્થઃ પદ્માસનાસીનઃ, સંયમૈકમૂરધરઃ ॥

ક્રોધાદિભિરનાક્રાન્તઃ, ગીતોષ્ણાદ્યૈરનિર્જિતઃ ॥૧૨॥

ભોગેભ્યો વિરતઃ કામ-માત્મદેહેऽપિ નિઃસ્પૃહઃ ॥

ભૂષતૌ દુર્ગતે વાપિ, સમમાનસગ્રાસનઃ ॥૧૩॥

સમીરણ ઇચ્છદ્રઃ, સાનુમાનિવ નિશ્ચલઃ ॥

ઇન્દુવજ્જગદાનન્દી, શિશુવત્સગ્લાશયઃ ॥૧૪॥

સર્વક્રિયાસુ નિર્લેપઃ, સ્વસ્મિન્નાત્માવબોધકૃત્ ॥

જગપ્યાત્મવજ્જાનન્, કુર્વન્નાત્મમય મનઃ ॥૧૫॥

મુક્તિમાર્ગરતો નિત્ય, સસારાશ્ચ વિરક્તિભાક્ ॥

ગીયતે ધર્મતત્ત્વૈર્-ર્ષિમાન્ ધ્યાનક્રિયોચિતઃ ॥૧૬॥

અર્થ:—ધર્મ તત્ત્વના જાણુ પુરૂષો ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સ્વસ્થ, પદ્માસન વાળીને બેઠેલો, ઇન્દ્રિયોને વશ રાખવામાં નિપુણ, ક્રોધ વિગેરે કપાયોને વશ ન થએલો, શીત, ઉષ્ણ પ્રમુખ પરિપહથી ન જિતાયલો, વિષય ભોગથી વેરાગ્ય પામેલો, પોતાના દેહ ઉપર પણ જિલકુલ ઇચ્છા ન રાખનારો, રાજાને તથા રાંકને સરખી દૃષ્ટિથી જોનારો, પવનની જેઠે કોઇ ઠેકાણે પ્રતિબંધ ન રાખનારો, પર્વતની જેઠે નિશ્ચળ, ચંદ્રમાની જેઠે જગતને આનંદ ઉપજાવનારો, બાળકની જેઠે સરળ સ્વભાવનો, સર્વ ક્રિયાઓમાં નિર્લેપ રહેનારો, પોતાને વિષે પોતાને જાણુનારો, જગતને આત્મ-સુલ્ય જાણુનારો, મોક્ષ માર્ગને વિષે આસક્ત થએલો તથા સંસારથી વેરાગ્ય પામેલો એવો બુદ્ધિશાળી પુરૂષ ધ્યાન-ક્રિયા કરવાને યોગ્ય કહેવાય છે. (૧૨)(૧૩)(૧૪)(૧૫)(૧૬)

विश्वं पश्यति शुद्धात्मा, यद्यन्युन्मत्तसंनिभम् ॥

तथापि वचनैर्धीरो, मर्यादां नैव लङ्घयेत् ॥ १७ ॥

અર્થ:—ધ્યાનમાં તટ્લીન થએલો શુદ્ધ જીવ જો પણ જગતને ઘેલા માફક જાણુ છે, તો પણ તે ગંભીર હોવાથી વચનવડે મર્યાદાનો ભંગ ન કરે. (૧૭)

कुलीनाः सुलभाः प्रायः, सुलभा, शास्त्रशालिनः ॥

सुशीलाश्चापि सुलभा, दुर्लभा भुवि तात्त्विकाः ॥ १८ ॥

અર્થ:—કુલીન, પંડિત તથા સુશીળ પુરૂષો પ્રાયે સુખે મળી શકે એવા છે. પણ તત્ત્વના જાણુ પુરૂષો જગતમાં દુર્લભ છે. (૧૮)

અપમાનાદિકાન્ દોષાન્, મન્યતે સ પુમાન્ કિલ ॥

સત્રિકલ્પં મનો યસ્ય, નિત્રિકલ્પસ્ય તે કુતઃ ॥૧૯॥

અર્થ — જેના મનમાં વિકલ્પ હોય તે પુરુષ અપમાન વિગેરે દોષોને ગણે છે પણ જેણે વિકલ્પ છોડ્યા તેને અપમાન વિગેરે ક્યાથી હોય ? (૧૯)

મયિ મક્તો જનઃ સર્વ, ઇતિ હૃપ્યેન્ન સાધકઃ ॥

મગ્યમક્તો જનઃ સર્વ, ઇતિ કુપ્યેન્ન વા પુનઃ ॥

અર્થ — માધક પુરુષ “ મારા સર્વ લોકો ભક્ત છે ” એમ જાણી હુર્ષ ન પામે તથા “ મારો કોઈ ભક્ત નથી ” એમ જાણી રોષ પણ ન કરે (૨૦)

અન્તાશ્રિતં ન ચેચ્છુદ્ધં, રહિઃ શૌચે ન શૌચમાઝ્ ॥

સુપક્વપિ નિમ્બસ્ય, ફલં વીજે કટુ સ્ફુટમ્ ॥૨૧॥

અર્થ — અદરથી મન શુદ્ધ ન હોય તો દેવળ ઉપરની ચોખ્ખાઈ તા કામની ? કારણકે, પાકેલી લીંબોળીનું પણ ખીજ કડવું જ હોય છે (૨૧)

યસ્યાત્મમનસોર્થિન્ન-રચ્યોમત્રી વિરત્તે ॥

યોગવિત્રં સમ મિત્રં-સ્તસ્યેન્ન કૌતુકસ્ય કા ॥૨૨॥

અર્થ — જે માણુમને જુદી જુદી રૂચિવાળા આત્માની અને મનની સાથે મિત્રાઈ જઘાઈ હોય, તે માણુમને યોગમાં વિધ્ન કરનાર મિત્રોની રાથે કૌતુક કરવાની ઇચ્છાજ ક્યાથી થાય ? (૨૨)

કાલેન ભદ્યતે સર્વ, સ કેનાપિ ન ભદ્યતે ॥

અભદ્યમક્તો યોગી, યેનાસાપિ ભદ્યતે ॥૨૩॥

અર્થ:—કાળ સર્વે વસ્તુઓનું લક્ષણ કરે છે, પણ કાળનું કોઈ લક્ષણ કરતો નથી. પણ યોગી તો તેનું (કાળનું) પણ લક્ષણ કરે છે, માટે તેજ (યોગી) અલક્ષ્ય વસ્તુનો લક્ષક છે. (૨૩)

યા શક્યતે ન કેનાપિ, પાતું કિલ પરા કલા ॥

યસ્તાં પિવત્યવિશ્રાન્તં, સ એવાપેયવાયકઃ ॥૨૪॥

અર્થ:—જે કોઈથી પી શકાય નહીં, એવી પરમ કળાને (પ્રહ્લામૃતને) યોગી હમેશાં પીએ છે. માટે તે (યોગી) અપેય વસ્તુનો પીનાર છે. (૨૪)

અગમ્યં પરમં સ્થાનં, યત્ર ગન્તું ન પાર્યતે ॥

તત્રાપિ લાઘવાદ્ગચ્છ-ન્નગમ્યગમકો મતઃ ॥૨૫॥

અર્થ:—જ્યાં કોઈથી જઈ શકાય નહીં, એવા પરમ પદરૂપ અગમ્ય સ્થાનકે યોગી તુરત જાય છે, માટે તે (યોગી) અગમ્યગામી કહેવાય છે. (૨૫)

બ્રહ્માત્મા તદ્વિચારી યો, બ્રહ્મચારી સ ડચ્યતે ॥

અમૈથુનઃ પુનઃ સ્થૂલ-સ્તાદૃક્ પૃથ્વોઽપિ યદ્ભવેત્ ॥૨૬॥

અર્થ:—આત્મા પ્રહ્મ કહેવાય છે. તથા પ્રહ્મનો વિચાર કરનાર તેજ ખરો પ્રહ્મચારી કહેવાય છે. પણ કામભોગને વર્જનારો માણસ માત્ર સ્થૂલ પ્રહ્મચારી કહેવાય. કારણ કે, તેવો તો નપુંસક પણ હોય છે. (૨૬)

અનેકાકારતાં ધત્તે પ્રાણી કર્મવશં ગતઃ ॥

કર્મમુક્તસ્તુ નો ધત્તે, તમેકાકારમદિશેત્ ॥૨૭॥

અર્થ — જીવ કર્મના વગથી અનેક આકાર ધારણ કરે છે પણ કર્મથી છુટાયલો જીવ તેમ કરતો નથી માટે તે મુક્ત જીવને ‘એકાકાર’ કહેવો (૨૭)

દુઃસ્વી કિમપિ કોઽપ્યત્ર, પાપ કોઽપિ કરોતિ કિમ્ ॥
મુક્તિર્મરુતુ મિશ્વસ્ય, મતિમત્રીતિ કલ્પ્યતે ॥ ૨૮ ॥

અર્થ — “આ જગત્મા કોઈપણ જીવ દુઃખી કેમ છે ? તથા કોઈપણ જીવ પાપ કેમ કરે છે ? સંપૂર્ણ જગત્ને મોક્ષ પ્રાપ્તિ થાય તો માફ ” એવી જે મતિ તે “ મેત્રી ભાવના ” કહેવાય છે (૨૮)

દોષનિર્મુક્તત્ત્વાના, ધર્મસર્વસ્વદ્રશિનામ્ ॥

યોઽનુગમો ગુણેષુચ્ચ, સ પ્રમોદઃ પ્રકીર્તિતઃ ॥૨૯॥

અર્થ — દોષવર્જિત આત્મવત્ કવના અને ધર્મના અર્થ સ્વરૂપના જાણ એવા અત્યુદ્ધેનો જે શુભ ઉપર ગમ તે “ પ્રમોદ ભાવના ” કહેવાય છે (૨૯)

મીતાત્તર્દીનરીનેષુ, જીમિતાર્થિષુ વાઙ્મિત્તમ્ ॥

શત્તયા ચત્પ્રયતે નિન્યં, કરુણા સાત્ર વિશ્રુતા ॥૩૦॥

અર્થ — દરી ગર્જના, રાગથી પીડાએલા, દીન અને દીન નએલા એવા પોતાના હવિતના અર્થી લોકોની વાહા શબ્દો માફક પૂર્વ કરવી, તે “ કષ્ટના ભારના ” આત્રના પ્રસિદ્ધ છે (૩૦)

મોગમદ્રિશ્નાં ધર્મ, નિર્મય દુઃખનામમ્ ॥

સરશ્વગ્રમિના ચ ચોષેભા, માધ્યમ્યં નદુદીનિત્તમ્ ॥૩૧॥

અર્થ:—મોહથી કર્મનો લેપ કરનારા, બીક ન રાખતાં પાપ કરનારા અને પોતાના પોતેજ વખાણુ કરનારા એવા લોકોની ઉપેક્ષા કરવી, એટલે તેમની તરફ ધ્યાન ન આપવું, તે “માધ્યસ્થ ભાવના” કહેવાય છે. (૩૧)

વિમલશ્ચ શરીરં ચ, વહિરાત્મા નિગદ્યતે ॥

તદધિષ્ઠાયકો જીવ-સ્ત્વન્નરાત્મા સકર્મકઃ ॥૩૨॥

અર્થ:—લક્ષ્મી અને શરીર તે “બહિરાત્મા” કહેવાય છે. અને શરીરનો અધિષ્ઠાયક જીવ “અંતરાત્મા” કહેવાય છે. તે જીવજ કર્મ વડે બંધાયેલો છે. (૩૨)

નિરાતઙ્ગો નિરાકાઙ્ગો, નિર્વિકલ્પો નિરજ્જનઃ ॥

પરમાત્માશયોઽત્યક્તો, જ્ઞયોઽનન્તગુણોઽવ્યયઃ ॥૩૩॥

અર્થ:—ભય, આકાંક્ષા, વિકલ્પ અને કર્મનો લેપ એ ચાર વાનાં જેનાં જતાં રહ્યાં, તથા અનંત જેના ગુણ, અને જેનો નાશ અથવા ક્ષય ન થાય, એવો જીવ “પરમાત્મા” કહેવાય છે. (૩૩)

યથા લોહં સુવર્ણત્વં, પ્રાપ્નોત્યૌષધયોગતઃ ॥

આત્મધ્યાનાત્તર્થેવાત્મા, પરમાત્મત્વમશ્રુતે ॥૩૪॥

અર્થ:—જેમ વનસ્પતિના યોગથી લોહાનું સોનું થાય છે, તેમ જીવ પરમાત્માના ધ્યાનથી પોતેજ પરમાત્મા બને છે. (૩૪)

અધ્યાત્મવર્જિતૈર્ધ્યાનૈઃ, શાસ્ત્રસ્થૈઃ ફલમાસ્તિ ન ॥

ભવેન્નહિ ફલૈસ્તૃપ્તિઃ, પાનીયપ્રતિવિમ્બિતૈઃ ॥૩૫॥

અર્થ —આત્મવિચાર વિના કેવળ શાસ્ત્રેમા રહેલા ધ્યાન-
થી કાઈપણ કૃત્ર નીપજતુ નથી કારણ કે પાણીમા પ્રતિ-
બિંબિત થએલા (પડછાયામા પડેલા) કૃત્રોથી કાઈ કાળે
તૃપ્તિ ન થાય (૩૫)

રૂપમ્થ ચ પદસ્થં ચ, પિંડસ્થં રૂપવર્જિતમ્ ॥

ધ્યાન ચતુર્વિધં પ્રોક્તઃ સંસારર્ણવતારકમ્ ॥૩૬॥

અર્થ:—૩૫સ્થ, પદસ્થ, પિંડસ્થ અને રૂપાતીત એ
ચીતે ચાર પ્રકારનુ ધ્યાન સમારૂપ મમ્દ્રથી પાઠ ઉતરનાર
કહેવાય છે (૩૬)

પદયાતિ પ્રથમ રૂપ, સ્તાંતિ ધ્યેય તતઃ પદૈઃ ॥

તન્મયઃ સ્યાત્તતઃ પિંડે, રૂપાતીતઃ ક્રમાન્નવેત્ ॥૩૭॥

અર્થ —સાધક પ્રથમ ધ્યેય વસ્તુનુ રૂપ જુવે છે,
પછી પદે કડી તેની (ધ્યેય વસ્તુની) સ્તવના કરે છે, તે
પછી પિંડને વિષે તન્મય થાય, અને પછી અતુકમે રૂપા-
તીત થાય (૩૭)

યથાવસ્થિતમાલમ્બ્ય, રૂપ ત્રિજગદીશિતુઃ ॥

ત્રિયતે યન્મુદા ધ્યાન, તદ્રૂપસ્થ નિગત્તે ॥૩૮॥

અર્થ —તીર્થંકર લગવાનનુ જેવુ રૂપ છે તેવા રૂપનુ
આલમ્બન લઈને જે લગવાનનુ હૃદયથી ધ્યાન કરવુ તે રૂપસ્થ
કહેવાય છે (૩૮)

રિત્રાયાં યદિ વા મન્ત્રે, ગુરુદેવસ્તુતાવપિ ॥

પદસ્થ કથ્યતે ધ્યાન, પત્રિત્રાન્યસ્તુતાવપિ ॥૩૯॥

અર્થ:—વિદ્યામાં, મંત્રમાં, શુરૂની દેવની સ્તુતિમાં અને બીજી પણ પવિત્ર વસ્તુની સ્તુતિમાં “પદ્મસ્થ” ધ્યાન કહેવાય છે. (૩૬)

સ્તમ્ભે મુર્ધ્નવર્ણાનિ, વચ્ચે રક્તાનિ તાનિ ચ ॥

શ્લોભે વિદ્રુમવર્ણાનિ, કૃષ્ણવર્ણાનિ મારણે ॥૪૦॥

દ્વેષણે શૂભ્રવર્ણાનિ, શશિવર્ણાનિ જ્ઞાન્તિકે ॥

આકર્ષેઽરુણવર્ણાનિ, સ્મરેન્મચ્છાલરાણિ તુ ॥૪૧॥

અર્થ:—સ્તંભન (અટકાવ) કરવું હોય તો સોના સરખા ખીળા, વશીકરણ કરવું હોય તો રાતા, કોઈને દ્રોહ પમાડવો હોય તો પરવાળા સરખા શુલાળી રંગના, મારણ કરવું હોય તો કાળા, દ્વેષ ઉપજાવવો હોય તો ધુમાડા જેવા રંગના, જ્ઞાન્તિ કરવી હોય તો ચંદ્રમા સરખા સફેદ, આકર્ષણ (ખેંચવું) કરવું હોય તો રાતા એવા મંત્રાક્ષર ચિંતવવા. (૪૦) (૪૧)

યત્કિંચન શરીરસ્થં, ધ્યાયતે દેવતાદિકમ્ ॥

તન્મયીભાવશુદ્ધં તત્, પિન્ડસ્થં ધ્યાનમુચ્યતે ॥૪૨॥

અર્થ:—તન્મય ભાવથી શુદ્ધ એવું જે કાંઈ શરીરમાં દેવતાદિકનું ધ્યાન કરાય છે, તે “પિન્ડસ્થ” ધ્યાન કહેવાય છે. (૪૨)

આપૂર્ય વામમાર્ગેણ, શરીરં પ્રાણવાયુના ॥

તૈનૈવ રેચયિત્વા ચ, નયેદ્રહ્મપદં મનઃ ॥૪૩॥

અર્થ:—ડાબી બાજુથી પ્રાણવાયુને શરીરમાં ભરી

તેજઃ પાણુધી પાછો તેને (વાયુને) બહાર કાઢવો એમ કરી
મનને પ્રદાપદે લઈ જવું (૪૩)

અભ્યસાદ્રેચકાર્દાના, વિનાપીઠ સ્યમ મરત્ ॥

સ્થિરીભરેન્મયઃસ્થૈર્યા-યુક્તિર્નોક્તા તતઃ પૃથક્ ॥૮૪॥

અર્થ — મનની સ્થિતિ હોય તો એકાદિકના અભ્યાસ
વિના પણ વાયુ પોનાની મેળેજ સ્થિર રહે છે માટે વાયુ
સ્થિર કરવાની યુક્તિ જુદી કહી નથી (૪૪)

નિમેષાર્થોર્માત્રેણ, મૃવનેષુ ભ્રમત્યહો ॥

મનશ્ચક્ષ્ણસદ્ગત, યુક્ત્યા ભગતિ નિશ્ચલ ॥૮૫॥

અર્થ — સચળ રતભાવનું મન પ્રત્યેક અર્થ નિમેષમાત્ર
ત્રણે લોકમાં ફરી વળે છે, તોપણ તે યુક્તિથી સ્થિર થાય
છે, એ આશ્ચર્ય છે! (૪૫)

લીયતે યત્ર કુત્રાપિ, સ્વેચ્છ્યા ચપલ મનઃ ॥

નિરાશયં તર્થગણ, જ્યાલ્પનુલ્પ હિ વાલ્મિતમ્ ॥ ૪૬ ॥

અર્થ — સચળ મન કાંઈ બાધા ન હોય તો સર્પની
પેઠે પોતાની ઇચ્છા માફક જમે ત્યાં ભટકાઈ જાય છે અને
વાળિયે તો સર્પની પેઠે દોભ પામે છે (૪૬)

મનશ્ચુચિદ્ર યાત્ર-દમાનતિમિરાદતમ્ ॥

તત્ત્વં ન રીક્ષ્યતે તાત્ર-દ્વિષયેષ્વેત મુગ્ધતે ॥ ૮૭ ॥

અર્થ — મનઉપ નેત્ર ન્યાં યુધી અજ્ઞાનરૂપ અધકારવી
ચીટાયણુ છે, ત્યાં યુધી તત્ત્વ દેખે નહીં, વિષયમાત્ર
ચુગાય (૪૭)

જન્મ મૃત્યુર્થનં દૌસ્થ્યં, સ્વે સ્વે કાલે પ્રવર્ત્તેતે ॥

તદસ્મિન્ ક્રિયેતે હન્ત, ચેતાશ્ચિન્તા કથં ત્વયા ॥ ૪૮ ॥

અર્થ:—જન્મ, મરણ, ધન અને દારિદ્ર્ય એ પોતપોતાને
અવસરે એની મેળે થાય છે. માટે હે મન ! તું ફેગટ આ
વાતમાં ચિંતા શું કરવા કરે છે ? (૪૮)

યથા તિષ્ઠતિ નિષ્કમ્પો, દાપો નિર્વાતવેઝ્મગઃ ॥

તથેહાપિ પુમાન્નિત્યં, ક્ષીણાધિઃ સિદ્ધવત્સુધીઃ ॥ ૪૯ ॥

અર્થ:—જેમ પવન વિનાના ઘરમાં દીપ સ્થિર રહે
છે, તેમ પંડિત પુરૂષો મનની સર્વ વાસનાઓનો લય કરી
આ જગતમાં સિદ્ધની પેઠે નિરંતર સ્થિર રહે છે. (૪૯)

વિકલ્પવિરહાદાત્મ-જ્યોતિરુન્મેષવદ્ભવેત્ ॥

તરન્ગવિગમાદૂરં, સ્ફુટરત્ન ઇવામ્બુધિઃ ॥ ૫૦ ॥

અર્થ:—જેમ ઉછળતા મોળા બિલકુલ ખંધ થયાથી
સમુદ્રની અંદર રહેલાં રત્નો પ્રગટ દેખાય છે, તેમ વિકલ્પનો
સર્વથા અભાવ થવાથી ચૈતન્ય જ્યોતિ પ્રગટ થાય છે. (૫૦)

વિષયેષુ ન યુક્તીત, તેભ્યો નાપિ નિવારયેત્ ॥

ઇન્દ્રિયાણિ મનઃસામ્યા-ચ્છામ્યન્તિ સ્વયમેવ હિ ॥ ૫૧ ॥

અર્થ:—ઇન્દ્રિયોને વિષયને વિષે જોડવી નહીં, અને
વિષયથી વારવી પણ નહીં. કારણકે, મનમાં સમતા ઉપજે
છતે ઇન્દ્રિયો પોતાની મેળેજ શાંત થાય છે. (૫૧)

ઇન્દ્રિયાણિ નિજાર્થેષુ, ગચ્છન્ત્યેવ સ્વભાવતઃ ॥

સ્વાન્તે રાગો વિરાગો વા, નિવાર્યસ્તત્ર ધીમતા ॥ ૫૨ ॥

અર્થ — ઇદ્રિયો સ્વભાવથીજ પોત પોતાના વિષયને વિષે જાય છે પણ વિગ્રહી પુરૂષે વિષયના સબધથી મનમાં રાગ અથવા દ્વેષ ન રાખવો (૫૨)

યાતુ નામેન્દ્રિયગ્રામઃ, સ્વાન્તાદિષ્ટો યતસ્તતઃ ॥

ન વાલનીયઃ પદ્માસ્ય-સનિમો વાલિતો ભવેત્ ॥૭૩॥

અર્થ — મનના આદેશમાં રહેલો ઇદ્રિયનો સમૂહ પોતાની ઇચ્છા માફક ભલે ગમે તે વિષયને વિષે જાય પણ તેને વાળવો નહીં કાઠણડે, ળળાતકારથી વાળિયે તો તે મિહ મરજો દોષ પામે છે (૫૩)

નિરોપસ્ય નિરૂપસ્ય, સિદ્ધસ્ય પરમાત્મનઃ ॥

ચિદાનન્દમયસ્ય સ્યા-દ્ધ્યાન રૂપમિર્નિર્જિતમ્ ॥૫૪॥

અર્થ — કર્મલેપ વિનાના, નિરાકાર અને ચિદાનન્દમય એવા મિદ્ધ પરમાત્માનું ધ્યાન કરવું, તે “રૂપાતીત” ધ્યાન કહેવાય છે (૫૪)

સ્વર્ણાદિવિમ્બનિષ્પત્તૌ, કૃતે નિર્મદનેઽન્તરા ॥

જ્યોતિઃપ્રર્ણે ચ સસ્થાને, રૂપાતીતસ્ય કલ્પના ॥૫૫॥

અર્થ — સુવર્ણ વિગેરેનું જિળ બનાવ્યું હોય, તેના દ્વારની પોલાણ કાઢી નાખી હોય, તથા જિળનું સંસ્થાન તેજેમય હોય, એવા સ્વરૂપને વિષે રૂપાતીતની કલ્પના થાય છે (૫૫)

યદ્દ્યેત ન તત્તત્ત્વ, યત્તત્ત્વ તન્ન દૃશ્યતે ॥

દેહાત્માન્તર્દ્યોર્મધ્ય-ભાવસ્તચં વિધીયતે ॥૫૬॥

અર્થ:—જે દેખાય છે તે તત્ત્વ નહીં, અને જે તત્ત્વ છે તે દેખાય નહીં. દેહ અને આત્મા એ બન્નેનો મધ્ય સ્થલાવ તેજ તત્ત્વ કહેવાય છે. (૫૬)

અલક્ષ્યઃ પञ્ચમિસ્તાવ-દિન્દ્રિયૈર્નિકટૈરપિ ॥

સ તુ લક્ષ્યતે તાનિ, ક્ષેત્રજ્ઞોઽલક્ષ્ય ઇત્યસૌ ॥ ૫૭ ॥

અર્થ:—નિકટ રહેલી ઇન્દ્રિયો પણ આત્માને દેખતી નથી. પણ આત્મા ઇન્દ્રિયોને દેખે છે. માટેજ ક્ષેત્રજ્ઞ (આત્મા) અલક્ષ્ય (ન જણાય એવો) કહેવાય છે. (૫૭)

આગતં વીજમન્યસ્ય, ક્ષેત્રેઽન્યસ્ય નિર્ધીયતે ॥

ચિત્રં ક્ષેત્રજ્ઞ એવાત્ર, પ્રરોહતિ યદા તદા ॥ ૫૮ ॥

અર્થ:—અન્યક્ષેત્રનું વાવેલું બીજ અન્યના ક્ષેત્રમાં વધાય છે. અને તે ક્ષેત્રમાં ક્ષેત્રજ્ઞ (ક્ષેત્રનો જાણુ આત્મા) ઉગે છે, એ મોટું આશ્ચર્ય છે! (૫૮)

પરમાણુરતિસ્વલ્પઃ, સ્વમાતિવ્યાપકં કિલ ॥

તૌ જિતૌ યેન બ્રાહ્મત્મ્યા-ન્નમસ્તસ્મૈ પરાત્મને ॥ ૫૯ ॥

અર્થ:—અતિ સૂક્ષ્મ પરમાણુ અને સર્વવ્યાપી બ્રાહ્મણ એ બન્ને વસ્તુને પોતાના બ્રાહ્મત્મ્યથી જીતનારા પરમાત્માને નમસ્કાર થાઓ. (૫૯)

આત્મદ્રવ્યે સમીપસ્થે, યોઽપરદ્રવ્યસંનુસ્રઃ ॥

આન્ત્યા વિલોક્યત્યજ્ઞઃ, કસ્તસ્મદ્બ્રાહ્મણોઽપરઃ ॥ ૬૦ ॥

અર્થ:—જે અજ્ઞ જીવ આત્મારૂપ દ્રવ્ય સમીપ છતાં બીજા દ્રવ્ય (ધન) તરફ બ્રાંતિથી જુવે છે, તેના કરતાં બીજો કોણ મૂર્ખ હશે ? (૬૦)

પરમાત્માગત્યસ્મૃત્યા, ચિત્રં સંસારસાગરઃ ॥

અસક્ષયં ભવત્યેવ, પ્રાણિના ચુલુકોપમઃ ॥૬૧॥

અર્થ — લબ્યજીવોને પરમાત્મારૂપ અગત્ય અપિના

સ્મરણથી સંસારરૂપ સમુદ્ર નિશ્ચયથી કોગળા સરખો થાય

એ મોટું આશ્ચર્ય છે । (૬૧)

આત્માનમેવ સસાર-માદુઃ કર્માભિવેષ્ટિતમ્ ॥

તમેવ કર્મનિર્મુક્ત, સાક્ષાન્મોક્ષ મનસ્વિનઃ ॥૬૨॥

અર્થ — પડિત પુરૂષો કર્મથી વીટાયલા જીવનેજ સંસાર

અને કર્મથી મૂકાયએલા જીવનેજ સાક્ષાત્ મોક્ષ કહે છે (૬૨)

અયમાત્મૈવ નિઃકર્મા, કેવલજ્ઞાનભાસ્કરઃ ॥

લોકાલોક યદા વેત્તિ, પ્રોચ્યતે સર્વગમ્તદા ॥૬૩॥

અર્થ — એ જીવજ કર્મે કરીને રહિત અને કેવળ

જ્ઞાનથી સૂર્યસમાન થઈ લોકને તથા અલોકને જ્યારે જાણે છે, ત્યારે તે કેવળી જીવજ “સર્વગામી” કહેવાય છે (૬૩)

શુભાશુભૈઃ પરિણામૈઃ, કર્મભિઃ કેવલો યદા ॥

एकाकी जायते शून्यः, स एवात्मा प्रकीर्तितः ॥૬૪॥

અર્થ — જીવ શુભાશુભ કર્મોના અત્યંત ક્ષય થવાથી

જ્યારે કેવળ એકાકી થાય છે, ત્યારે તેજ જીવ “શૂન્ય” કહેવાય છે (૬૪)

लिङ्गत्रयविनिर्मुक्त, सिद्धमेकं निरञ्जनम् ॥

निराश्रयं निराहार-मात्मान चिन्तयेद्बुधः ॥૬૫॥

અર્થ — શાસ્ત્રા પુરૂષે ત્રણે લિંગથી મૂકાયેલા, સિદ્ધ,

એક, નિરંજન, અશ્રયવિનાના એવા આત્માનુ ધ્યાન કરુ (૬૫)

૩૨૨ વિવેકવિદ્યાસ, અગ્યામ્બો ઉદ્ધાર.

જિતેન્દ્રિયત્વમારોગ્યં, ગાત્રલ્લાઘવમાર્દવે ॥

મનોવચનચત્કાય-પ્રસન્નિશ્વેતનોદયઃ ॥૬૬॥

બુદ્ધુક્ષામત્સરાનન્ન-માનમાયાભયક્રુધામ્ ॥

નિદ્રાલોભાદિકાનાં ચ, નાશઃ સ્યાદાત્મચિન્તનાત્ ॥૬૭॥

અર્થઃ—આત્માના ધ્યાનથી ઇન્દ્રિયો વશ થાય, શરીર હળવું થાય, કોમળતા ઉત્પન્ન થાય, મન, વચન અને ક્રાયા પ્રસન્ન થાય, ચેતના ઉદય આવે, તથા ક્રુધા, મત્સર, કામવિકાર, આહુંકાર, કપટ, ભય, ક્રોધ, નિદ્રા અને લોભ ઇત્યાદિક વિકારનો નાશ થાય. (૬૬) (૬૭)

લયસ્યો દૃઢ્યતેઽભ્યાસા-જ્ઞાગરુકોઽપિ નિશ્ચલઃ ॥

પ્રમુક્ત ઇવ સાનન્દો, દર્શનાત્પરમાત્મનઃ ॥૬૮॥

અર્થઃ—અભ્યાસથી ધ્યાનમાં લયલીન થએલો અને પરમાત્માના દર્શનથી આનંદ પામેલો જીવ જાગૃત હોય તે પણ ચુતેલાની પેઠે નિશ્ચળ દેખાય છે. (૬૮)

મનોવચનકાયાના-મારમ્બો નૈવ સર્વથા ॥

કર્તવ્યો નિશ્ચલૈર્માવ્ય-મૌદાસીન્યપરાયણૈઃ ॥૬૯॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષોએ મન-વચન ક્રાયાથી સર્વથા આરંભ વર્જવો અને સર્વત્ર ઉદાસીનપણું રાખી નિશ્ચળ રહેવું. (૬૯)

પુણ્યાર્થયપિ નારમ્ભં, કુર્યાન્મુક્તિપરાયણઃ ॥

પુણ્યપાપક્ષયાન્મુક્તિઃ, સ્યાદતઃ સમતાપરઃ ॥૭૦॥

અર્થઃ—મુક્તિને અર્થે યતન કરનાર પુરૂષે પુણ્યને

અર્થે પણ આરણ ન કરવો કારણ, પુણ્યનો તથા પાપનો
સમૂળ નાશ થાય ત્યારેજ મુક્તિ થાય છે માટે બન્નેને
વિષે ચમત્તા રાખવી (૭૦)

સંસારં યાનિ સૌખ્યાનિ, તાનિ સર્વાણિ યત્પુનઃ ॥

ન કિંચિદિદમ્ દૃશ્યન્તે, તદૌદાસીન્યમાશ્રયેત્ ॥૭૧॥

અર્થ — સંસારમા જે કાંઈ સુખ છે તે નહીં જેણે
દેખાજ છે, માટે ઉદાસીનપણુ સ્વીકારવું (૭૧)

વેદા યજ્ઞાશ્ચ શાસ્ત્રાણિ, તપસ્તર્થાનિ સયમઃ ॥

સમતાયાસ્તુલા નૈવ, યાન્તિ સર્વેઽપિ મેલિતાઃ ॥૭૨॥

અર્થ — વેદ, યજ્ઞ, શાસ્ત્રો, તપસ્યા, સયમ એ સર્વેને
એકઠા કરીએ તોપણુ તે સર્વે સમતાની બરાબરી કરી ન શકે.
(૭૨)

एकवर्णं यथा दुग्ध, बहुवर्णास्तु धेनुषु ॥

तथा वर्मस्य वैचित्र्य, तत्त्वमेक पर पुनः ॥૭૩॥

અર્થ — જેમ બુદ્ધા બુદ્ધા રંગની સર્વે બાથોને વિષે દૂધ
એકજ રંગનું હોય છે, તેમ ધર્મનું બાહ્ય સ્વરૂપ બુદ્ધા બુદ્ધા
પ્રકારનું છે, પણ તે સર્વેને વિષે પરમ તત્ત્વતો એકજ છે (૭૩)

(જાડુા ।)

आत्मानं मन्यते नैकश्चाविस्तस्य वागियम् ॥

જનુનીરન્દિતે માણ્ડે, મિત્તશ્ચોરો નૃત્તોઽથ સઃ ॥૭૪॥

निर्जगाम क्व तस्य, जीवः प्रविशुः क्वम् ॥

અપરે કૃમિરૂપાશ્ચ, નિશ્ચિદ્રે તત્ર વર્તુનિ ॥૭૫॥

અર્થ:—એક આવાક (નાસ્તિક) માત્ર જીવ માનતો નથી..
તે એમ કહે છે કે—“મોઢે લાખ ચોટાડી મજબૂત પાંધ કરેલી
કોડીમાં ચોર રાખ્યો હતો, તે મરણ પામ્યો. હવે છિદ્ર વિનાની
તે વસ્તુમાંથી ચોરનો જીવ બહાર શી રીતે નીકળ્યો ? તથા
તેને શરીરે બીજા કૃમિકૃપ જીવ પડ્યા હતા તે શી રીતે અંદર
પેદા?” (૭૪) (૭૫)

(ઉત્તરમ્ ।)

તથૈવ તુદ્રિતે માણ્ડે, ક્ષિપ્તઃ શઙ્ખયુતો નરઃ ॥

શઙ્ખાત્તદ્વાદિતાનાદો, નિષ્ક્રામતિ કયં વહિઃ ॥૭૬॥

અર્થ:—(ઉપરલી શંકાનો ઉત્તર.) જેવી કોડીમાં ચોર
રાખ્યો હતો. તેણે વગાડેલા શંખનો ધ્વનિ (સાદ) બહાર શી
રીતે નીકળ્યો ? (૭૬)

અમૃતમૂર્તઃ કથં ઘ્રાતે, લોહગોલે વિશત્યહો ॥

અમૃતસ્યાત્મનસ્તર્લ્કિ, વિહન્યેતાં ગમાગમૌ ॥૭૭॥

અર્થ:—તેમજ આશ્ચર્ય છે કે, તપાયલા લોહના ગોળા-
માં સાકાર અગ્નિ શી રીતે પેસે છે ? એમ સાકાર વસ્તુના
અવેશ, નિર્ગમ (પેસવું, નીકળવું) થાય છે, તો પછી નિરાકાર
જીવના થવાને શી હરકત ? (૭૭)

(શઙ્ખા ।)

દસ્યોરન્યસ્ય કાર્યે ચ, શતશઃ શકલીકૃતે ॥

ન દૃષ્ટઃ ક્વચિદ્ધ્યાત્મા, સોઽસ્તિ ચેત્કિં ન દૃશ્યતે ॥૭૮॥

અર્થ:—(શંકા.) બીજા એક ચોરના શેંકડો “કટકા કરી

નાખ્યા, તોપણ હવ દેખાયો નહીં જો હવ છે, તો તે દેખા-
તો કેમ નથી ? (૭૮)

(ઉત્તરમ્ ।)

સ્પૃહિતેષ્વરણેઃ કાષ્ઠે, મૂર્તો વદ્ધિર્વસન્નપિ ॥

ન દૃષ્ટો દૃશ્યતે કિં વા જીવો મૂર્તિવિવર્જિતઃ ॥૭૯॥

અર્થ — (ઉત્તર) અગ્નિ વૃક્ષના કાષ્ઠના કટકા કટકા
કરીએ તો પણ તેની અદર રહેલો સાકાર અગ્નિ દેખાતો
નથી તો પછી શરીરમા રહેલો નિશકાર હવ ક્યાથી દેખાય ?
(૭૯)

(ગદ્ગદા ।)

જીવન્નન્યતરથોર-સ્તોલિતો મારિતોઽથ ચ ॥

શ્વાસરોપેન કિં તસ્ય, તોલ્મે ન ઘનોનતા ॥૮૦॥

અર્થ — (શ કા) એક હવતો ચાર તોલ્મે અને તેને
શ્વાસ રૂધીને માગ્યા પછી તોલ્મે પણ તોલમા કેમ વધ્યો
ઘટ્યો નહીં ? (૮૦)

(ઉત્તરમ્ ।)

દત્તેઃ પૂર્ણસ્ય વાતેન, રિક્તસ્યાપિ ચ તોલ્ને ॥

તુલ્યા સમા તથાદ્વસ્ય, સાત્ત્વનોઽનાત્મનોઽપિ ચ ॥૮૧॥

અર્થ — (ઉત્તર) પાણીની મથક પવનથી ભરેલી અથવા
ખાલી તોળીએ તોએ તે તોલમા સરખીજ ઉતરે છે તેમ
શરીર હવ હોય અથવા ન હોય તોએ તોલમા સરખીજ
ઉતરે છે (૮૧)

(શક્તિ ।)

જલપિષ્ઠાદિયોગસ્ય, મદ્યસ્ય મદશક્તિવત્ ॥

અચેતનેભ્યશ્ચૈતન્યં, ભૂતેભ્યસ્તદ્દેવ દિ ॥૮૨॥

અર્થ:—(શંકા.) જેમ જળ, લોટ (આટો) વિગેરે વસ્તુના મિશ્રણથી મધમાં માદક શક્તિ (કેફ ઉપજાવવાની સત્તા) આવે છે, તેમ અચેતન પદ્ય મહાબુતોનું મિશ્રણ થવાથી ચૈતન્ય ઉત્પન્ન થાય છે. (૮૨)

(ઉત્તરમ્ ।)

શક્તિર્નવિદ્યતે યેષાં, મિન્નામિન્નસ્થિતિસ્પૃશામ્ ॥

સમુદાયેઽપિ નો તેષાં, શક્તિર્મીરુષ્ઠ શૌર્યવત્ ॥૮૩॥

અર્થ:—(ઉત્તર.) વસ્તુઓ બુદ્ધી બુદ્ધી છતાં જે તેમાં શક્તિ નથી, તે શક્તિ તેજ વસ્તુઓના સમુદાયમાં નજ હોય. જેમ બુદ્ધા બુદ્ધા બીકણ લોકોમાં શૂરવીરપણું નથી, તેથી તે તેઓના સમુદાયમાં પણ હોતું નથી. (૮૩)

પ્રત્યક્ષકપ્રમાણસ્ય; નાસ્તિકસ્ય ન ગોચરઃ ॥

આત્મા જ્ઞેયોઽનુમાનાદ્યૈર્વાયુઃ કમ્પ્રૈઃ પદૈરિવ ॥૮૪॥

અર્થ:—એક પ્રત્યક્ષ પ્રમાણનેજ માનનારા નાસ્તિકને જીવ જણાય નહીં. કારણ કે જેમ હાલનારાં લુગડાં ઉપરથી વાયુનું અનુમાન (કલ્પના) કરી શકાય છે, તેમ જીવ પણ અનુમાન વિગેરેથીજ જણાય છે. (૮૪)

અઙ્કુરઃ સુન્દરે વીજે, સૂર્યકાન્તે ચ પાવકઃ ॥

સાલિલં ચન્દ્રકાન્તે ચ, યુત્તયાત્માઙ્ગેઽપિ સાધ્યતે ॥૮૫॥

અર્થ — જેમ સુદર ણીજમા અકુર, સૂર્યકાત મણિમા અગ્નિ, અને ચદ્રકાત મણિમા જળ છે, એમ યુક્તિથી સિદ્ધ કરાય છે, તેમ શરીરમા હવ છે તે પણ યુક્તિથીજ મિદ્ધ કરાય છે (૮૫)

પ્રત્યક્ષેણ પ્રમાણેન, લક્ષ્યતે ન જનૈર્યાદિ ॥

તન્નાસ્તિક તવાદ્ધે કિ, નાસ્તિ બુદ્ધિઃ કુરુત્તરમ્ ॥૮૬॥

અર્થ — “લોકોને પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી હવ જણાતો નથી ” એમ તુ કહીશ તો અમે પૂછિયે કે, “હે નાસ્તિક ! તારા શરીરમા બુદ્ધિ છે કે નહીં, તે કહે ” (૮૬)

અપ્રત્યક્ષા તવામ્ના ચે-દૂરદેશાન્તરં ગતા ॥

જીવન્ત્યપિ મૃતા હન્ત, નાસ્તિ નાસ્તિક સા કથમ્ ॥૮૭॥

અર્થ — હે નાસ્તિક ! દૂર દેશાતરે ગયેલી તારી માતા પ્રત્યક્ષ દેખાતી નથી, ત્યારે તારા મત પ્રમાણે તે હવતી મરી ગઈ નહીં કે શુ ? (૮૭)

તિલકાષ્ટપયઃપુષ્પે-પ્લાસતે ક્રમગો યથા ॥

તૈલાગ્નિઘૃતસૌરમ્યા-ન્યેનમાત્માપિ ત્રિગ્રહે ॥૮૮॥

અર્થ — જેમ તિલમા તેલ, લાકડામા અગ્નિ, ફળમા ધી અને ફૂલમા સુગંધી રહે છે, તેમ હવ પણ શરીરમા રહે છે (૮૮)

અસ્ત્યેવ નિયતો જીવો, લક્ષણેર્જાયતે પુનઃ ॥

સંજ્ઞાવિજ્ઞાનચૈતન્ય-વિત્તપ્રમૃતિભિર્મૃગમ્ ॥૮૯॥

અર્થ — હવડા શરીરમા હવ નિયમથી છેજ તે

૩૨૮ વિવેકવિલાસ, અચાર્યો ઉદ્ધાર.

સંજ્ઞા, વિજ્ઞાન, ચૈતન્ય, ચિત્ત વિગેરે લક્ષણથી જણાય છે.
(૮૯)

પયઃપાનં શિશોર્ભીતિઃ, સંકોચિન્યાં ચ મૈથુનમ્ ॥

અશોકેર્ધ્યગ્રહો વિલ્લે, જીવે સંજ્ઞાચતુષ્ટયમ્ ॥૯૦॥

અર્થ:—ખાળકને વિષે ધાવવાની, સંકોચિની (સંકોર-
ણી) વનસ્પતિને વિષે ભય, અશોક વૃક્ષને વિષે મૈથુન
તથા ખિલ્લ વૃક્ષને વિષે ધનનો સંગ્રહ એ ચારે સંજ્ઞાઓ
જીવને વિષે જાણવી. (૯૦)

इन्द्रियापेक्षया प्रायः, सतेकमस्तोकमेव च ॥

चराचरेषु जीवेषु, चैतन्यमपि निश्चितम् ॥९१॥

અર્થ:—સ્થાવર જંગમ જીવોમાં :ઈન્દ્રિયોની અપેક્ષાએ
થોડું તથા ઘણું ચૈતન્ય પ્રાપ્ત નિશ્ચયે છે. (૯૧)

अन्तरायतुष्टेर्ज्ञानं, कियत्कापि प्रवर्तते ॥

मतिश्रुतप्रभृतिकं, निर्मलं केवलावधि ॥९२॥

અર્થ:—મતિ, શ્રુત, અવધિ, મનઃપર્યવ તથા કેવળ એ
પાંચ નિર્મળ જ્ઞાનોમાં કેટલુંક કોઈ ઠેકાણે જ્ઞાનાંતરાયના
તુટવાથી થાય છે. (૯૨)

त्रिकालविषयव्यक्ति-चिन्तासंतानधारकम् ॥

नानाविकल्पसंकल्प-रूपं चित्तं प्रवर्तते ॥९३॥

અર્થ:—અતીત, અનાગત અને વર્તમાન ત્રણે કાળના
વિષયની ચિંતાને હમેશાં ધારણ કરનારું તથા નાનાવિધ
સંકલ્પવિકલ્પરૂપ ચિત્ત હોય છે. (૯૩)

નાસ્તિકસ્યાપિ નાસ્ત્યેવ, પ્રસરઃ પ્રશ્નકર્મણિ ॥

નાસ્તિકત્વાભિમાનસ્તુ, કેવલ વલ્લભત્તરઃ ॥૧૪॥

અર્થ — નાસ્તિકને પણ પ્રશ્ન કરવાનો આવકાશ નથી-
જ પણ તેને કેવળ નાસ્તિક પણાનો ઘણોજ અહ કાર છે.
(૬૪)

ધ્યાનુર્ન પ્રભવન્તિ દુઃસ્વવિષમવ્યાધ્યાદયઃ સાધયઃ,

• સિદ્ધિઃ પાણિતલે સ્થિતેવ પુરતઃ શ્રેયાસિ સર્વાણ્યપિ ॥

જુલ્યન્તે ચ મૃણાલનાલમિત્ર વા મર્માણિ દુષ્કર્મણા,

તેન ધ્યાનસમ ન કિંચન જને કર્તવ્યમસ્ત્યદ્ભુતમ્ ॥૧૫॥

इति श्रीजिनदत्तसूरीप्ररचिते विवेकविलासे ध्यानस्वरूपनिरूपणं
नामत्रादश उद्भास ॥११॥

અર્થ — ધ્યાન કરનાર માણુમ ઉપર દુઃખ, કઠણ રોગ
તથા મનના વિકાર પોતાનો જોગ ચલાવી શકતા નથી,
સિદ્ધિ તેના હાથમા રહેલી જેવી હોય છે, સર્વ કલ્યાણે
મુખ આગળ આકરની પેઠે રહેલા જેવા હોય છે, અને
માઠા કર્મના મર્મો કમલતણુની પેઠે સહજમા તૂટી જાય છે
માટે જગતમા ધ્યાન સરણુ આર્થયકારિ મોઢપણુ કર્તવ્ય
નથી (૬૫)

इति श्रीजिनदत्तसुरिप्रियञ्चिन विवेकविलासनी गूर्तर
लापानो अन्यामो उद्भास सप्तमः (११)



અથ દ્વાદશ ઉદ્ધારઃ ।

દુઃસ્વપ્નેઃ પ્રકૃતિત્યાગો-ર્દુનિમિત્તૈશ્ચ દુર્ગ્રહેઃ ॥

હેસપ્રચારાન્યત્વૈશ્ચ, જ્ઞેયો મૃત્યુઃ સમીપગઃ ॥૧॥

અર્થઃ—માઠાં સ્વપ્નથી, પોતાની પ્રકૃતિના બદલાવાથી, માઠાં નિમિત્તથી, માઠાં ગ્રહથી તથા હંસચારના (સ્વરના) ફેરફારથી મરણ સમીપ આવેલું બાણવું. (૧)

પ્રાયશ્ચિત્તં વ્રતોચ્ચારં, સંન્યાસં જન્તુમોચનમ્ ॥

ગુરુદેવસ્મૃતિં મૃત્યૌ, સ્પૃહ્યન્તિ વિવેકિનઃ ॥૨॥

અર્થઃ—વિવેકી પુરૂષો મરણ નજીક આવે પ્રાયશ્ચિત્ત (આલોચણા), વ્રતનું ઉચ્ચરવું, ત્યાગ કરવો, જીવ છોડાવવા તથા દેવગુરૂનાં સ્મરણ કરવાં એટલાં વાનાં વાંછે છે. (૨)

અનાર્તઃ શાન્તિમાન્ મૃત્યૌ, ન તિર્યક્ નાપિ નારકઃ ॥

ધર્મધ્યાની મુરો મત્યાં—અનશની ત્વમરેશ્વરઃ ॥૩॥

અર્થઃ—જે માણસ મરણ સમયે આર્તધ્યાન ન કરે, તથા શાંતિમાં રહે, તે માણસ તિર્યચ અથવા નરક ગતિમાં જતો નથી. જે ધર્મધ્યાન કરે તે દેવતા થાય છે, અને અનશન કરે તે દેવતાનો સ્વામી થાય છે. (૩)

તપ્તસ્ય તપસઃ સમ્યક્, પઠિતસ્ય શ્રુતસ્ય ચ ॥

પાલિતસ્ય વ્રતસ્યાપિ, ફલં મૃત્યુઃ સમાધિના ॥૪॥

અર્થઃ—આચરેલી તપસ્યા, સમ્યક્ પ્રકારે ભણેલું શાસ્ત્ર, અને સારી પેઠે પાળેલું વ્રત એ ત્રણેનું ફળ સમાધિમરણ છે. (૪)

અજડેનાપિ મર્તવ્ય, જડેનાપિ હિ સર્વથા ॥

અવશ્યમેવ મર્તવ્યં, કિ મિશ્યતિ વિવેકિનઃ ॥૫॥

અર્થ —વિદ્વાન્ હોય કે જડ હોય, સર્વે જીવોને અવશ્ય
મરણુ તો છેજ માટે વિવેકી પુરૂષોએ જા માટે ધીધુ નોઈયે
(૫)

ઢિત્સા સ્વલ્પધનસ્યાથા—વઢ્ઢમ્મઃ કઢ્ઢિતસ્ય ચ ॥

•ગતાયુષોઽપિ ધીરત્વં, સ્વભાવોઽયં મહાત્મનામ્ ॥ ૬ ॥

અર્થ —અલ્પ ધન છતા દાન દેવાની ઇચ્છા, દુઃખ
આવે મનની સ્થિરતા તથા મરણુ સમીપ આવે ધીરતા એ
સતપુરૂષોનો સ્વભાવ છે (૬)

નાસ્તિ મૃત્યુસમ દુઃખ, સસારેઽઞ્ચ શરીરિણામ્ ॥

તતઃ કિમપિ તત્કાર્ય, યેનૈતન્ન મરેત્પુનઃ ॥ ૭ ॥

અર્થ —જીવોને આ મમારમા મરણુ મમાન દુઃખ
નથી માટે જેથી ફરીવાર મરણુ ન આવે, એણુ કાઈપણ કૃત્ય
અવશ્ય કરણુ (૭)

શુભં સર્વ સમાગચ્છ—ચ્છન્નાઘર્નીય પુનઃ પુનઃ ॥

ક્રિયાસમભિહારેણ, મરણ તુ ત્રપાકરમ્ ॥ ૮ ॥

અર્થઃ—અર્થે શુભ ભાવ વારવાર આવતા હોય તે
વખાણવા લાયક છે, પણ અવિરત જીવને વારવાર મરણુ આવે
છે તે શરમ ભરેણુ છે (૮)

સર્વવસ્તુમપાવૃજૈઃ, સપન્નાતિલ્લવસ્તુમિઃ ॥

આયુઃ મર્વર્વનોપાયો, જિર્ણર્ણજ્ઞાયિ તૈરપિ ॥ ૯ ॥

અર્થ:—સર્વે વસ્તુઓની શક્તિ જાણનારા તથા સર્વે વસ્તુઓ પામેલા એવા શ્રી જિનમહારાજની જાણમાં પણ આયુષ્ય વધારવાનો ઉપાય આવ્યો નહીં. (૯)

સર્વેષાં પૂર્વજાઃ સર્વે, નૃણાં તિષ્ઠન્તુ દૂરતઃ ॥

एकैकोऽपि स्थिरश्चेत्स्या-लोकः पृथेक तैरपि ॥ १० ॥

અર્થ:—સર્વે જીવોના સર્વે પૂર્વજ તો દૂર રહે, પણ દરેક જીવ જો જગતમાં સ્થિર રહે તો પણ આજો લોક તેથી ભરાઈ જાય. (૧૦)

आवाल्यात्मुकृतैः स्वजन्म सकलं कृत्वा कृतार्थं चिरं,

धर्मध्यानविद्यानलीनमनसो मोहव्यपोहोद्यताः ॥

पर्यन्तं प्रतिभाविशेषवशतो ज्ञात्वा निजस्यायુषः,

कायत्यागमुपासते मुकृतिनः पूर्वोक्तया शिक्षया ॥ ११ ॥

અર્થ:—જાલ્યાવસ્થાથી માંડી ચિરકાળ સુધી કરેલા સુકૃતવડે પોતાનો જન્મ સફલ કરીને ધર્મધ્યાનને વિષે પોતાનું મન તદ્દલીન રાખનારા અને મોહનો નાશ કરવાને અર્થે પ્રયત્ન કરનારા એવા પુણ્યશાળી લોકો અવસર આવે પોતાના આયુષ્યનો છેલ્લો વિશેષ જ્ઞાનથી જાણીને ઉપર કહેલી રીત પ્રમાણે દેહનો ત્યાગ કરે છે. (૧૧)

स श्रेष्ठः पुरुषाग्रणीः स सुभटोत्तंसः प्रशंसास्पदं,

स प्राज्ञः स कलानिधिः स च मुनिः स क्षमातले योगवित् ॥

स ज्ञानी स गुणिव्रजस्य तिलकं जानाति यः स्वां मूर्तिं,

निर्मोहः समुपार्जयत्यथ પદં લોકોત્તરં શાશ્વતમ્ ॥ ૧૨ ॥

અર્થ:—શ્રીજિનદત્તસૂરિવિરચિતે શ્રીવિવેકાવલાસે પરમપદનિરૂપણં નામ દ્વાદશ ઉદ્ધાસઃ ॥ ૧૨ ॥

અર્થ — જે પુરૂષ પોતાનું મગ્ધુ બાણે, અને મોહિની કર્મનો અત્યંત ક્ષય કરી લોકને અતે રહેલા સામ્યત પદને (મુક્તિપદને) પામે, તેજ પુરૂષ જગત્મા શ્રેષ્ઠ, મનુષ્યોમા શિરોમણી, સુભદ્રોનો અગ્રેમર, વખાણવા લાયક, પરિત, કળામા દુગળ, મુનિરાજ, યોગી, જ્ઞાની તથા ગુણી લોકોમા શ્રેષ્ઠ હોય (૧૨)

મૃતિ શ્રી જિનદત્તસુરિવિચિત્ર વિવેકવિલાસની ગુર્જા ભાપત્તિ પદ્યમપદનિરૂપણ નામે દ્વાદશ ઉલ્લાસ સ પૂર્ણ. (૧૨)

(અય પ્રશસ્તિઃ ।)

આસ્તિ પ્રીતિપદ ગચ્છો, જગતઃ સદ્ગુણવત્ ॥

જનપુસ્કોક્તિલાકીર્ણો, રાગદરથાનકરિચતિઃ ॥૧॥

અર્થ — આખાના વૃક્ષની પેઠે જગતને પ્રીતિ ઉપ-
જાવનાર અને શ્રેષ્ઠ પુરૂષરૂપ મહિલપક્ષીવી વ્યાસ એવે
“ વાયડ ” નામે ગરુડ છે (૧)

અદૈન્મતપુરીયમ-સ્તત્ર શ્રીરાશિલઃ પ્રભુઃ ॥

અનુલ્લહ્યઃ પરિવાદિ-ચીર્ણ સ્થિર્યગુણૈરુભુઃ ॥૨॥

અર્થ — ને ગરુડમા, લેનમત રૂપ નગરીનું નક્ષત્ર
કરનારો એક મહત્ત્વ હોય ની ? એવા, વાદિરૂપ ગૂરવિરોધી
હાર ન પામે એવા અને સ્થિરતા વિગેરે મહુલ્લેખનું વ્યભિ-
ચારન એવા શ્રીગણેશ પ્રભુ થયા (૨)

ગુણાઃ શ્રીજીવદેવમ્, પ્રભોઃ સુત્રોક્ત્યઃ ॥

વિદ્જન્નશિરોદોગ્ધા, યદ્યેઽશ્નન્તિ વદાચન ॥૩॥

અર્થ—શ્રી જિવદેવ ગુરુ મહારાજના ગુણોની લીલા કાંઈ અદ્ભુત છે. કારણ કે, તે [ગુણો] વિદ્વન્નનોના મસ્તકરૂપ હોવાને (હિંદોળાને) દોઢ કાળે મૂકતા નથી. અર્થાત્ વિદ્વાન લોકો હમેશાં માથું ધુણાવીને શ્રી જિવદેવ ગુરુ મહારાજના ગુણોની પ્રશંસા કરે છે. (૩)

અસ્તિ તચ્ચરણોપાસ્તિ—સંજાતસ્વસ્તિવિસ્તરઃ ॥

સૂરિઃ શ્રીજિનદત્તાચ્યઃ, રુદ્યાતઃ સૂરિષુ મૂરિષુ ॥૪॥

અર્થ— તે જિવદેવ ગુરુ મહારાજની ચરણ સેવાથી કલ્યાણની પરંપરા પામેલા શ્રી જનદત્ત સૂરિ નામે આચાર્ય સર્વ આચાર્યોમાં પ્રસિદ્ધ છે. (૪)

વાહુમાન્વયપાથોધિ—સંવર્ધનવિદ્યો વિદ્યુઃ ॥

શ્રીમાનુદયસિંહોઽસ્તિ, શ્રીજાવાલિપુરાધિપઃ ॥૫॥

અર્થ—“બાહુમાં” વંશરૂપ સમુદ્રને ઉદ્ધાસ પમાડવાને ચંદ્રમા સમાન એવો શ્રી ઉદયસિંહનામે જાવાલિપુરનો રાજા છે. (૫)

તસ્ય વિશ્વાસસદનં, કોશરક્ષાવિચક્ષણઃ ॥

દેવપાલો મહામાત્યઃ પ્રજ્ઞાનન્દનચન્દનઃ ॥૬॥

અર્થ—તે ઉદયસિંહ રાજાનો ઘણો વિશ્વાસુ અને તેના ભાંડાગારની રક્ષા કરવામાં નિપુણ એવો દેવપાલ નામે મોટો મંત્રી, બુદ્ધિરૂપ નંદન વનમાં ચંદન સરખો અર્થાત મોટો બુદ્ધિશાળી છે. (૬)

આધારઃ સર્વધર્માણા—મવધિર્જ્ઞાનશાલિનામ્ ॥

આસ્થાનં સર્વપુણ્યાના—માકરઃ સર્વસંપદામ્ ॥૭॥

પ્રતિપન્નાત્મજસ્તસ્ય, વાયઢાન્વયસંભવઃ ॥

ધનપાલઃ શુચિર્ધામાન્, ત્રિવેકોત્તમસિમાનસઃ ॥૮॥

અર્થ — મર્વે ધર્મોના આધાર, જ્ઞાનગાળી લોકોમાં
અગ્રેસર, સર્વ પુરુષોનું વસ્તી સ્થાન, મર્વે સ પદ્મઓની બાજુ
ખાણુજ હોયની । એવો, પવિત્ર, શુદ્ધિગાળી, વિવેકથી વિકાસ
પામતા મનને ધારણ કરનારો અને વાયક વશમાં ઉત્તમ
થયેલો “ ધનપાલ ” નામે દેવપાલનો માનેલો પુત્ર છે
(૭) (૮)

તન્મનસ્તોષપોષાય, જિનાર્ચદત્તમૂરિભિઃ ॥

શ્રીત્રિવેકાવિગમાયો, ગ્રન્થોઽય નિર્મમેજ્જનઃ ॥૯॥

અર્થ — શ્રી છનદત્ત સુરિછએ તે ધનપાળનું મન
મહુદ કરવાને અર્થે આ “ વિવેકવિલાસ ” નામે પવિત્ર ગ્રંથ
રચ્યો (૯)

દેવઃ શ્રીગ્ળો મુજગપગુર્યાવશુગાદિપ્રભોઃ

શ્રીમદ્વિશ્વત્રિદઃ પ્રવિસ્ફુરકલાલકારગૃહ્ધારિણઃ

મક્તિવ્યક્તિવિગેષમેષ કુસ્તે તાતર્ચિર નન્દતાત્

ગ્રન્થોઽય મૃદામશ્વયાદર્પરં પાપટામાનો હુર્ધઃ ॥૧૦॥

અર્થ — નાગ કુમારનો સ્વામી શ્રીધરછેદ દેવ, મુકુરણ
પામતી મર્વે કલાઓને ગોલાવનાર અને મર્વેજી એવા શ્રી
ગુગાદિનાથ ઝગબ ભગવાનની અનિશય ભક્તિ લ્યા મુખી
મગદ કર છે, ત્યામુખી પડિત પુરુષોએ આદરથી અને
વારવાર પડન કરાતો એવો એ (વિવેકવિલાસ) ગ્રંથ ચિત્રકાળ
આબાદ રહ્યો (૧૦)

